सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय, संगरिया, राजस्थान का विवरण-ग्रंथ तथा उसकी कला-निधि का अध्ययन

कला के पक्ष

प्रथम खण्ड

भारतीय कला

जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी
पूर्व अध्यक्ष—सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय

ग्रामोत्थान विद्यापीठ
संगरिया : राजस्थान

प्रकाशक
स्वामी केशवानन्द एम पी.
ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
संगरिया, राजस्थान.

मूल्य प्रथम खण्ड : सात रुपये
दोनो खण्डो का मूल्य बारह रुपये

मुद्रक
पाठ्य सामग्री—नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली.
रंगीन चित्र—घूमीमल रामचन्द्र,
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली
सादे चित्र—एशिया प्रेस,
दरियागंज, दिल्ली

दो शब्द

ग्रामोत्थान विद्यापीठ की ओर से, यह एक नया पुष्प अर्पित करते हुए मै बडे आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। सग्रहालय रूपी कला के सरोवर का यह पद्म अपनी सुरभि से जन-जनार्दन को भाव-मुग्ध करेगा, यह मुझे आशा है।

पद्म, जो पवित्रता, निर्मलता और सौन्दर्य का प्रतीक है, सदैव प्रकाश की ओर उन्मुख रहता है। ज्ञान ही वह प्रकाश है। सग्रहालय का मूल उद्देश्य जनता का मनोरजन ही नही वरन् उसके माध्यम से उसकी ज्ञान-वृद्धि करना, देश की प्राचीन सस्कृति व सभ्यता के प्रति एक अभिरुचि जागृत करना और उसके फल-स्वरूप कला के प्रति एक समादर उत्पन्न करना है। विद्यापीठ के उपवन का यह ज्ञान तरु, सग्रहालय, अभी पूर्ण-रूपेण पुष्पित नही है। इसका अभी और भी विकास होना शेष है इसलिये यह आवश्यक है कि इलाके की जनता इसके महत्व को समझे और इसके पुष्पित और पल्लवित होने के लिये पर्याप्त साधन और सहयोग प्रदान करे। यह कर्मयोगी स्वामी केशवानन्द एम० पी० की जीवन-व्यापी साधना तो है ही, इलाके की जनता की भी अपनी कलानिधि है, जिसकी रक्षा और अभिवृद्धि उसका एक पवित्र कर्त्तव्य है। सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय का यह विवरण-ग्रन्थ, सग्रहालय को जानने-पहचानने का साधन है।

इस विवरण-ग्रन्थ की रूप-रेखा तैयार करते समय यद्यपि यह आवश्यक नही था कि कक्षो की वस्तुओ के विवरणादि के साथ उनकी विषय-वस्तु से सम्बन्धित लेखो का भी समावेश किया जावे किन्तु पाठको की सामान्य जानकारी के लिये यह परिचयात्मक लेख दे देना उचित समझा गया। आशा है कि इन लेखो के प्रकाश मे दर्शक इन वस्तुओ को स्पष्ट रूप से देख सकेंगे।

भौगोलिक दृष्टि से यह सग्रहालय ऐसे प्रान्त मे स्थित है जिसे 'राजस्थान की मरु-भूमि' कहा जाता है। सास्कृतिक चेतना की दृष्टि से अभी यह इलाका इतना सम्पन्न नही है फिर भी यह वह स्थान है जहाँ पुरातन युग मे पुण्य सरिता सरस्वती की धारा प्रवाहित हो रही थी। सरस्वती की घाटी मे एक भव्य सस्कृति पनप रही थी। स्वाधीनता के इस प्रभात-काल मे ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती की उसी लुप्त धारा का पुर्नप्रभाव इस क्षेत्र मे फिर हो रहा है, जिसके चिन्ह काली बगा की खुदाई मे दृष्टिगोचर हो रहे है। कौन कह सकता है कि मोहे जोदडो और हडप्पा की सिन्धु-घाटी सस्कृति के समान काली बगा से उपलब्ध वस्तुये भी भारतीय कला के इतिहास मे एक परिच्छेद न जोड देगी? हमे विश्वास है कि केन्द्रीय शासन का पुरातत्व विभाग उस समय इस क्षेत्रीय सग्रहालय को विस्मृत न करेगा और लाभान्वित होने का अवसर भी देगा।

यो तो राजस्थान मे अनेक सग्रहालय है और उनमे से अनेक हमारे इस सग्रहालय से अधिक सम्पन्न और आकर्षक भी है किन्तु इस सग्रहालय की एक विशेषता है। वह यह है कि राजस्थान के अन्य सग्रहालयो को राजा-महाराजाओ का प्रश्रय प्राप्त रहा है। बाद मे उन्हे पुरातत्व विभाग का सरक्षण मिल गया। उनके आगे आर्थिक अभाव का प्रश्न नही रहा। दूसरी ओर यह सग्रहालय अपने बल और स्वामी केशवानन्द जी के प्रयत्नो पर ही खडा रहा है।

इस सग्रहालय की एक बडी विशेषता यह भी है कि इसमे एशिया के अनेक देशो की कला-कृत्तियो का समावेश हुआ है जिससे दर्शक को सम्बन्धित देश की कला की एक झलक मिल जाती है।

हमारे देश मे शायद ही कोई ऐसा सग्रहालय हो जो ग्रामीण क्षेत्र मे कला-सस्कृति की प्रकाश रश्मियाँ बिखेर रहा हो । सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय इस दृष्टि से अनूठा है ।

यदि हमे सस्कृति व वैज्ञानिक गवेषणा मत्री हुमायूँ कबीर द्वारा सरक्षण न मिलता तो इस सग्रहालय के विवरण-ग्रन्थ को प्रकाशित करने का विचार कार्य-रूप न ले पाता । उनके प्रति मै सस्था की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ । उनके विभागीय अधिकारी श्री डी के हिंगोरानी व उनके सहकारी श्री एच एल. अग्रवाल के भी हम इस दिशा मे कृतज्ञ है ।

हम राष्ट्रीय सग्रहालय दिल्ली के विभागीय अध्यक्ष सर्वश्री सी शिवराम मूर्ति, ए के. भट्टाचार्य तथा यु के बुखारी के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते है, जिन्होने सग्रहालय की विशेष वस्तुओ की जानकारी देने मे हमारी सहायता की है । श्री स्वराज प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, नेशनल म्युजियम ने सँग्रहालयो पर एक उपयोगी लेख देकर ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है । श्री राय कृष्णदास के एक सुन्दर लेख का उपयोग भी हमने किया है ।

सग्रहालय के इस विबरण-ग्रन्थ को तैयार करने का पूरा भार विद्यापीठ के आग्रह करने पर श्री जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी ने स्वीकार किया और इस कार्य को मनोयोग पूर्वक सम्पन्न किया । सस्था और उनका सम्बन्ध गत् कई वर्षो से घनिष्ठ रहा है और उन्होने इस सँग्रहालय के अध्यक्ष पद भी कार्य किया है ।

मैं अपने उन साथियो को कदापि नही भूल सकता जिनका सक्रिय सहयोग हमे इस योजना मे मिला है । कैटलॉग को तैयार करने के लिये श्री वृजनारायण कौशिक, प्रधान अध्यापक, बेसिक ट्रेनिंग स्कूल ने अपने विचारो और सुझावो से हमे लाभान्वित किया है । श्री हनुमान प्रसाद, अध्यक्ष काष्ठ-कला विभाग ने सारी योजना मे पूरी दिलचस्पी ली है । उन्होने तथा श्री पी. अवतारसिंह, प्राध्यापक विद्यापीठ ने इस कैटलॉग सम्बन्धी फोटोग्राफ लेकर विद्यापीठ को अपना सहयोग दिया है । श्री प्रीतमसिंह पछी, वर्तमान अध्यक्ष, सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय ने इस सम्पूर्ण योजना को कार्यान्वित करने मे प्रयत्न किया है । उसके लिये हम उनके कृतज्ञ है ।

हम नया हिन्दुस्तान प्रेम, एशिया प्रेस तथा धूमीमल रामचन्द्र, नई दिल्ली के व्यवस्थापको तथा कर्मचारियो के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करते है जिन्होने इतने अल्प समय मे, कठिनाई उठाकर भी इतनी रुचि के साथ इस कार्य को पूरा किया ।

२०-३-६१

राम गोपाल गुप्त
डायरेक्टर, ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
सगरिया, राजस्थान.

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय

"It is one of the top-most museums of the country India is proud of such rural museums. May Swamiji succeed"

—Acharya Vinoba Bhave

× × ×

"I came to Sangaria as Swamiji had invited me The cities avail themselves of big colleges, universities, museums etc., and the like, nothing of the kind in our villages. Some of these exist in small towns, but are not of a satisfactory standard. Therfore I was specially desirous of visiting this place and seeing what it had to offer Whatver I saw, I saw closely and found it quite satisfactory, but I could not see all that Swamiji has accomplished here. I could not visit all his institutions. The Museum and the Library, however, are excellent."

—Pt. Jawaharlal Nehru

× × ×

"विद्यापीठ का सग्रहालय और पुस्तकालय तो इतना बढिया है कि वह किसी भी राज्य या प्रान्त की राजधानी के लिये गौरवप्रद हो सकता है। नि सन्देह सौभाग्यशाली है वे छात्र, जिन्हे अपने प्रारम्भिक शिक्षा-काल मे ही ऐसे सग्रहालय और पुस्तकालय का सहयोग मिले।"

—पं० बनारसी दास चतुर्वेदी

ससद-सदस्य

× × ×

"Even though the exhibits are of a mixed nature, the number of items which could be regarded as first-rate is truly surprising. I was particularly impressed by the Statuary and Portrait Section. The entire collection is a glowing tribute to the zeal and energy of Swamiji."

—Shri R. K. Kapoor
Deputy Educational Adviser
Ministy of Education, India

× × ×

"अपनी कितनी ही दुर्लभ, श्रेष्ठ कला-कृतियो पर यह सग्रहालय गर्व कर सकता है।"

—डा० सत्यप्रकाश श्रीवास्तव

अध्यक्ष, पुरातत्व-विभाग, राजस्थान

THE FOREIGN SERVICE
OF THE
UNITED STATES OF AMERICA

BAHAWALPUR HOUSE
SIKANDRA ROAD
NEW DELHI-1

September 14, 1959

Director
Museum and Library
Gramotthan Vidyapeeth
Sangaria

My dear sir,

One of the most interesting sidelights of my brief visit to Sangaria was the interesting and educational tour of your Museum and Library I was greatly impressed not only with the quantity but also the quality of the items which are displayed there My only regret was that the brevity of my stay did not permit me to spend more time there and benefit from your deep knowledge of their history. Such treasures as these mean so much more to the visitor when he is conversant with the relative facts concerning their origin.

You are to be congratulated on the attractive manner in which they are displayed With regard to the precious manuscripts, I sincerely hope that something will be done to bring them to the attention of research scholars and other interested persons

With best wishes for the continued progress of the Museum and Library, I remain.

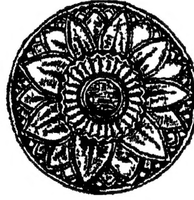
Most appreciatively Yours,

Thomas G. Allen
Cultural Affairs Officer

(श्री थामस एलेन, अधिकारी-सास्कृतिक गतिविधियाँ, राजदूतावास, अमेरिका का श्री जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी को लिखा गया पत्र)

: अनुक्रम :

रंगीन चित्र



सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय, संगरिया

उदय और विकास

स्वामी केशवानन्द, सदस्य राज्य-सभा

"सग्रहालय नाम के लिये एक छोटा शब्द है परन्तु इस शब्द के मर्म मे बहुत कुछ निहित है। इसके द्वारा प्राचीन कला-कौशल एव इतिहास सामने आ जाता है। इसमे मिट्टी तथा धातु की प्राचीन वस्तुये, मुर्तिया, दस्तावेज, पत्र, हस्तलिखित पुस्तके, सिक्के, शिला-लेख, ताम्र पत्र, शस्त्र, वस्त्र, चित्रादि, प्राचीन-नवीन वस्तुये, उनके समय, स्थान, गहराई व विवरण के साथ रक्खा जावे जिससे प्राचीन इतिहास मे सहायता एव वर्तमान कला-कौशल को उत्तेजना मिले।"

हिन्दी के पुरातत्व और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान्, वन्धुवर श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने अपने एक पत्र मे सग्रहालय तथा उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध मे उक्त भावनाये व्यक्त की थी। सग्रहालय की वस्तुओ के चयन, उसकी स्थापना तथा विकास के समय मेरे आगे रेऊ जी के उपरोक्त विचार ही रहे। परिणामस्वरूप सगरिया के इस सग्रहालय मे विविध प्रकार की वस्तुये एकत्रित होती चली गई। मेरे इस प्रयत्न के तीन हेतु रहे है, प्रथम इतिहास की जानकारी, दूसरी कला-कौशल की प्रेरणा और तीसरी सर्व-साधारण जनता का मनोरजन—

इस सग्रहालय के उदय और विकास के साथ मेरी जीवन-गाथा के कुछ पृष्ठ भी जुडे हुये हैं। उन पर भी एक विहगम दृष्टि डाल लेनी जरूरी है।

यो तो मै बचपन से ही लापरवाह रहा हूँ। जबकि मै १३-१४ वर्ष का था, शाम के समय खेत मे कुल्हाडी फैंककर अपने पहले स्थान की ओर चल दिया और अपार कष्टो का सामना करने पर भी वापस नही लौटा। उस समय मुझे एक मुट्ठी भर कच्चा अनाज बडी मुश्किल से चौबीस घण्टो मे प्राप्त होता था। एक दिन तो वह भी नही मिला। रात को गायो की खुराक मे से एक-दो छटॉक तिल की खल खाकर ही गुजारा किया। जब कभी दिल उदास होता था, मन मे एक उबाल आता था तो बिना कुछ लिये, बिना सोचे-बिचारे, बिना साधन-सामग्री के कही भी ऐसे चल देता कि जैसे मैं अपने किसी नाते-रिश्ते मे, जाने-पहचाने स्थान को जा रहा हूँ। जैसे खान-पान की सारी सामग्री की मेरे लिये किसी ने पहले ही व्यवस्था कर रक्खी हो—

"चरैवेति-चरैवेति" भारत के ऋषियो ने कहा है—'चलते रहो, चलते रहो क्योकि चलना ही जीवन है।' बारह वर्ष की उम्र से लेकर आज अठहत्तर वर्ष की आयु तक मैं चलता ही रहा हूँ। अब भी एक रात के बाद मैने दूसरी रात शायद ही उस स्थान पर गुजारी हो। मुझ जैसे घुमक्कड ने क्या देखा, क्या सुना, क्या अनुभव किवा, विचारवान पुरुष इसका सहज ही अनुमान लगा सकता है। विद्वानो का कथन है और मेरी स्वय की मान्यता भी यही है कि जिसने दुनियाँ भर की किताबे पढी हो किन्तु 'दुनियाँ की किताब' न पढी हो, प्रत्यक्षदर्शी के रूप मे विश्व न देखा हो, वह वास्तव मे पढा-लिखा होकर भी अनुभव वाला व्यक्ति नही है।

परमात्मा की कृपा या अपना सौभाग्य कहूँ कि मुझे अपने पर्यटनशील जीवन मे दिनोदिन अच्छे-अच्छे सत्पुरुषो का सम्पर्क मिला। अनेक सस्थाओ को देखा, अधिवेशनो और उत्सवो का लाभ भी लिया। बचपन और किशोरावस्था का जीवन जगली मैदानो मे, बछडे-बछडियो एव गायो को चराने मे तथा बाल-गोपालो के साथ व्यतीत हुआ। रात को हम खुले आकाश के नीचे खेल-खेलते। अपने प्रारम्भिक जीवन मे चाहे मै बडी-बडी पुस्तको के भावो को पूर्णरूप से न समझ पाता होऊँ फिर भी शकराचार्य, कुमारिल भट्ट और ऋषि दयानन्द से प्रभावित हो चुका था और 'पच महा यज्ञ विधि सध्या' तथा सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करने लगा था। मेरा अध्ययन बाद मे भी सिल-सिले से नही हुआ फिर भी मै पुस्तको और विद्वानो के ससर्ग मे अवश्य रहा। जिन्दगी मे हजारो पुस्तके पढी नही तब भी उनकी भूमिका, विषय एव लेखक किस विचार और रुचि का है, यह देखकर जरूर खरीदी है।

सस्कृत शिक्षा की इच्छा से प्रेरित होकर चाहने पर या न चाहने पर भी यह भगवा वेश धारण किया और इसी से सम्बन्ध रखने वाले कुम्भो, तीर्थो और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो के भागो और उनमे होने वाले मेलो, उत्सवो, प्रदर्शनियो, बडे-बडे नगरो, रियासतो, राज्यो और उनके पुस्तकालयो, सग्रहालयो, मठ-मन्दिरो के साथ दूसरे धर्मों के गिरजो, मन्दिरो, पीर-फकीरो के मकबरो, उजडे किलो आदि मे घूमा-भटका और उनको देखा।

उन्ही दिनो मैंने लाला लाजपतराय के धुँआधार भाषण सुने तथा अनेक आर्य उपदेशको के व्याख्यान भी सुने। सन् १९०७ ई० मे लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह जी गिरफ्तार कर लिये गये। मुझे स्मरण है कि इन्ही दिनो कोयटा मे लोगो ने मेरी धोती पर एतराज़ किया था कि मैने लकाशायर का विदेशी कपडा पहन रक्खा है। इन दिनो बग-भग का आन्दोलन या उडीसा का झगडा चल रहा था और बगाल के स्वदेशी बन्धु सत्येन्द्र प्रसन्नसिह बिहार के गवर्नर नियुक्त हुये थे। वे ही प्रथम भारतीय गवर्नर थे। जहा तक मुझे याद आ रहा है, उन्ही दिनो के आस-पास खुदीराम बोस को फाँसी पर लटकाया गया था।

मै सन् १९०९ ई० मे अपनी स्वत की प्रेरणा से फाजिलका मे प्रथम पुस्तकालय बना चुका था। वैकटेश्वर समाचार का मैं नियमित रूप से पाठक था। मै गाँव का निवासी था और नगर मे वेदान्त आदि की शिक्षा प्राप्त करने आया था। गाँवो की त्रुटियाँ क्या है? शहरो मे क्या कमियाँ है? विदेशी हुकूमत क्या है और यहाँ क्यो आई है? इसे निकालना क्यो आवश्यक है, इन्ही सब प्रश्नो को मै सोचता रहता।

आर्य समाज से सम्बन्ध होने के कारण, मुगलो की हुकूमत, भारतीय सस्कृति पर उसका प्रभाव, वीर हकीकतराय और लेखराम की शहादते आदि घटनाये भी दिमाग मे चक्कर काटती रहती। सोमनाथ का आक्रमणकारी इतना लम्बा रास्ता तय करते हुए आया, किसी मे इतना साहस न था कि उसकी गति को रोक सकता? मैं इसी प्रकार की बाते सोचा करता।

मै एक बार अजमेर गया। वहाँ ढाई दिन का झोपडा देखा जो कि केवल टूटी-फूटी पत्थर की मूर्तियो ही की बनी इमारत है, भारत का गौरव-स्थल चित्तौड देखा।

ताल सु भूपाल ताल और सब तलैया,
गढ सु गढ चित्तौड गढ और सब गढैया।

वीर प्रताप की वह भूमि देखकर मन श्रद्धामय हो उठता । फिर भारत के अनेक ऐतिहासिक स्थल देखे जिनमे प्राचीन इतिहास दबा हुआ पडा है ।

कुछ समय बाद रौलट एक्ट आया । इस काले कानून के विरोध मे देश मे जगह-जगह दिल दहला देने वाले भाषण हुये । इस विरोध के अग्रणी नेता थे, स्वनामधन्य प० मदनमोहन मालवीय जी जिनके सम्बन्ध मे मैं 'प्रताप' मे पढा करता था । इस कार्यालय से ही 'प्रभा' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी, जो मुझे बहुत अच्छी लगती थी ।

मै इन दिनो पुस्तकालयो की स्थापना मे लगा हुआ था । उसके पीछे मेरा एक अन्य ध्येय भी था, हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण स्थान दिलाना तथा नागरी वर्णमाला को सर्व मान्यता देने का प्रचार करना । पजाब उर्दू का एक गढ था और वहाँ हिन्दी का प्रचार बहुत कठिन समझा जाता था । हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग मे खपरैलो मे चल रहा था, उन्ही दिनो मै उसका सदस्य बना । नागरी प्रचारिणी सभा काशी का स्थायी सदस्य तो बहुत बाद मे बना ।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ । काँग्रेस के उस आन्दोलन मे मैने भी भाग लिया और कच्चे-पक्के मुकदमो मे एक वर्ष, चार मास की सजा भी मिली ।

भारत के राजनैतिक रगमच पर मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली आये । खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ । हम अपने मुस्लिम वन्धुओ के साथ उनकी मस्जिदो मे गये और वे भी कुछ सख्या मे हमारे साथ जेल मे गये । इसके बाद गुरुद्वारो की अकाली लहर चली । कुजियो का झगडा चला । गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के सिक्खो ने सिर पर काली पगडियाँ बाँधी । सिखो ने ४-४ इच की लम्बी कृपाण के साथ-साथ लम्बी कृपाण धारण करनी प्रारम्भ कर दी ।

'गीता रहस्य' मेरी सबसे प्रिय पुस्तक रही है । मैंने जिन दिनो झिझकते-झिझकते राजनैतिक जीवन मे प्रवेश किया उन दिनो लोकमान्य तिलक बागी बनकर माण्डले की जेल मे ६ वर्ष की सजा काट रहे थे । वहाँ उन्होने कर्मयोग शास्त्र के नाम से गीता पर भाष्य लिखा । सन् १९१७ ई० के लगभग उसका अनुवाद मैंने मगवाया । दानेवाला गाँव मे पूरे चार-पाँच मास रह कर मैंने उसका अध्ययन किया । इस ग्रन्थ का मुझ पर एक विचित्र प्रभाव पडा । मेरे मन मे एक निर्भरता आ गई । यह दृढता की भावना ऐसी आई कि "जन्मकोटि लग रगर हमारी । वरहुँ शम्भु न तु रहो कुवारी ।" स्वराज्य हमारा लक्ष्य बन गया । मैने सोचा इस जन्म मे, नही तो दूसरे जन्म मे, नही तो असख्य जीवनो मे स्वराज्य अवश्य प्राप्त करूँगा । इसी विचार के कारण एक गोरा जज मुझ पर चिढ गया। उसने १०७ दफा की बजाय १०८ दफा लगाकर मुझे सादी जेल के साथ-साथ एक वर्ष की सख्त जेल का हुक्म दे दिया । मेरे जीवन पर राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की "भारत-भारती" का भी प्रभाव पडा । स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का ससर्ग और उनका साहित्य, ठाकुर शिवनन्दनसिंह का "देश-दर्शन", गाधी जी और जेम्स एलन की पुस्तके, "आरोग्य दिग्दर्शन" 'शिव सकल्प की विजय' आदि का मन पर प्रभाव पडे बिना न रहा । फिर भिन्न-भिन्न विषयो की हजारो पुस्तके देखी और पढी ।

यात्राये मुझे सदैव प्रेरणा देती रही । मैने श्री अरविन्द का पाण्डुचेरी का आश्रम, रबि बाबू का शाति निकेतन, आगरा का दयालबाग, सिन्ध का साधुबेला, साबरमती आश्रम, पटना का सदाकत आश्रम आदि देखे और मैं वहाँ से अपने साथ एक उत्साह और कार्य की इच्छा-शक्ति

लेकर लौटा। यात्राओ का क्रम चलता रहा। अनेक ऋषि-कुल, गुरुकुल, आश्रम तीर्थ आदि देख डाले।

प्रारम्भ मे मेरा ध्यान पुस्तकालयो की ओर अधिक रहा। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झासी अधिवेशन से वापस लौटते समय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ (अध्यक्ष जोधपुर राजकीय सग्रहालय) ने मेरे द्वारा सस्थापित फाजिलका और अबोहर के पुस्तकालयो को लक्ष्य मे रख कर यह सम्मति प्रदान की कि मै पुस्तकालयो के साथ सग्रहालयो की भी स्थापना का ध्यान रखू क्योकि पुस्तकालयो और सग्रहालयो का इतिहास के नाते एक जैसा सम्बन्ध है। बाद मे उनका पत्र और कुछ महत्वपूर्ण सिक्के भी मिले।

झासी सम्मेलन से आते ही रेऊ के परामर्श के अनुसार अबोहर के पुस्तकालय भवन मे एक सग्रहालय का श्री गणेश हुआ। बाहर के लोग मनोरजन और कलादर्शन के लिए उसे भी काफी सख्या मे देखने आया करते थे। अब भी आते है। मेरे सगरिया आ जाने से स्वाभाविक रूप से यहाँ के सग्रहालय का उत्तरोत्तर विकास होता गया और अब यह एक विशाल सग्रहालय के रूप मे प्रतिदिन लगभग १५० दर्शको को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। सरस्वती मन्दिर का ऊपर का खड इसके विभिन्न कक्षो ने घेर लिया है। सगरिया जैसे स्थान मे इतना बडा सग्रहालय और पुस्तकालय देखकर बाहर से आया हुआ व्यक्ति आश्चर्य से चौक जाता है। इसका श्रेय इलाके की उस जनता को है, जिसने इन समस्त कार्यो के लिए सस्था को मुक्त-हस्त से दान दिया है। आचार्य विनोबा भावे ने इसे देखकर कहा था—'भारत ऐसे ग्रामीण सग्रहालयो पर गर्व कर सकता है।

सग्रहालय मे जो छोटी-बडी, सूक्ष्म, व नाजुक चीजे आई है, वे सब देश तथा विदेश से बडी सावधानी के साथ लाई गई है। ट्रेन, मोटर, जहाज और हवाई जहाज से लाई हुई इन वस्तुओ के लिए यदि कुली, वाहक, या किसी अन्य यात्री द्वारा तनिक सी भी लापरवाही बरती जाती तो आधी सामग्री रास्ते मे ही टूट जाती। अनेको बार कुलियो ने कई प्रकार का नाजुक सामान, कहते कहते, सावधान करते-करते तोड भी डाला है।

मुझे याद है कि एक बार मैने एक बडा शीशा लिया जिसका मूल्य एक सौ दस रुपये था। भीतर का चित्र एक हजार का था। उस चित्र को लाने मे केवल कुलियो पर ही ४२) खर्च हुये थे। ऐसा लागत वाला शीशा चाय का कप पकडते-पकडते इजन के झटके से टूट गया। शीशा चूर-चूर हो गया। एक बार मै रामगढ (जिला राची) की काग्रेस की नुमाइश से कुछ सामान लेकर आ आ रहा था। सामान अधिक था और उसमे जल्दी टूटने फूटने या नष्ट होने वाली वस्तुएँ भी थी। तीसरे दर्जे के डिब्बे मे दो बडे-बडे टोकनो मे सामान बाधकर रक्खा हुआ था। मुझे उसकी चिन्ता लगी हुई थी। दो राते और एक दिन सफर में निकल गया पर पलक भी न झपकी। तीसरे दिन अबोहर पहुँचा। ज्यो ही स्नान के बाद दूध पीकर खिडकी, अन्दर से बन्द कर सोया कि वह दिन और आने वाली सारी रात सोया पडा रहा। दूसरे दिन चार बजे आख खुली। कितनो ने दरवाजे खटखटाये, आवाजे दी पर मुझे कुछ होश ही नही था। इतने समय तक भूखा प्यासा, यो ही सोता रहा।

मै इतना सावधान होकर सोता हूँ कि सिरहाने रक्खी हुई ऐनक को कभी ठस नही लगने दी। जरा सी आहट पाकर जाग उठता हूँ। यह लम्बी यात्रा मे जागते रहने के कारण हुआ है। यात्राओ के अनुभव बडे विचित्र है। मान सरोवर की यात्रा दस हजार फुट की ऊँचाई से प्रारम्भ

होती है और गौरी कुड की ऊँचाई उन्नीस हजार छ सौ फीट है। मै मार्गो मे विभिन्न रगो व प्रकारो के पत्थर इकट्ठे करता, पडाव पर या रास्ते मे ही उनकी छटनी करता, प्रतिदिन का दो रुपये सेर के हिसाब से किराया भाडा देता, प्रकृति देवी के विविध रगो और स्थलो को देखता चलता। रास्ते मे कैसे विचित्र रगो का वातावरण फैला रहता है, यह देखते और अनुभव करते ही बनता है। मानसरोवर की इस यात्रा मे मैं अपने साथ अनेक वस्तुएँ लाया। हिमालय के सुनहले वालो के पक्षीराज की खाल, पहाडी भेड-बकरियो की खाले, जितने वर्ष की आयु उतने ही गाठो वाले सीग, अरना भैसे के सीग, शेर का जबडा, तिब्बत के सिक्के, मानव-अस्थियो के आभूषण, पहाडी जेवर, अस्त्र-शस्त्रादि इसी सामान मे आये थे। बहुत सी सामग्री श्रीलका, ब्रह्मा, तिब्बत, नेपाल, हागकाँग आदि की यात्राओ से आई है। काग्रेस के अधिवेशनो मे मै जाया करता था। सग्रहालय की बहुत सी सामग्री सौराष्ट्र, अहमदाबाद, नागपुर, रामगढ आदि के अधिवेशनो की प्रदर्शिनियो से ली गई है। कुछ महत्वपूर्ण सामग्री कलकत्ते के अलभ्य वस्तुओ के व्यवसायी श्री चन्नीलाल नौलखा से क्रय की गई है।

सग्रहालय के निर्माण मे अनेक उदारमना महानुभावो का सक्रिय सहयोग मुझे मिला है। स्व० श्री सेठ नन्दलाल जी की सहायता से यह सग्रहालय भव्य बन पडा है। स्व० चौधरी ताराचन्द जी की सिफारिश और विश्वास से मुझे महाराज भरतपुर द्वारा गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राये मिली। महाराज बीकानेर, महाराज अलवर और पेप्सू सरकार ने अस्त्र-शस्त्र प्रदान करने की कृपा की। श्री महत हरिहर गिर ने एक छोटी तोप दी, जो चल सकती है। श्री गोवर्धनसिह द्वारा अलवर महाराज के दिये मृत जीव-जन्तु प्राप्त हुए। ठाकुर जसवन्तसिह जी एस पी, बीकानेर ने एक मूल्यवान वडा शेर भेट किया जिसका उनके भाई ने शिकार किया था। यह समस्त सामग्री सग्रहालय मे सुरक्षित है। मेरे प्रिय मित्र राय कृष्ण दास जी तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मुझ पर विशेष स्नेह रहा है। राय साहब द्वारा मुझे राजघाट की पाषाण और मृण्मूर्तियाँ मिली है और डा० अग्रवाल ने मेरे अनुरोध पर सगरिया पधार कर सग्रहालय को मार्ग-दर्शन दिया। इन समस्त महानुभावो का मै कृतज्ञ हूँ।

भारत सरकार की दी हुई निधि से सग्रहालय के नये कक्ष, यह विवरण-ग्रन्थ तथा चित्रो के रगीन कार्डस तैयार हुए है। यदि हमारे सस्कृति-मन्त्री प्रो० हुमायू कबीर इस सग्रहालय मे इतनी दिलचस्पी न लेते तो यह पुस्तक इतनी सजधज के साथ आपके हाथो मे न होती। मै केन्द्रीय सरकार की इस सहायता के लिए मत्री महोदय के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस विवरण-ग्रन्थ को जगदीश जी ने तैयार किया है। वे मेरे अपने व्यक्ति है और इस सग्रहालय के अध्यक्ष पद पर कार्य कर चुके है। सग्रहालय के उत्तरोत्तर विकास व उन्नति मे उनका सहयोग सदा हमारे साथ रहेगा, ऐसा मै अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ। मेरे स्नेह-अनुरोध पर श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, नेशनल म्यूजियम ने सग्रहालयो की उपयोगिता पर एक सुन्दर लेख दिया है।

सग्रहालय के आगे अपनी समस्याये है। वर्तमान स्थान सग्रहालय के अनुकूल नही है। उसके लिए एक नये भवन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। वस्तुओ के नष्ट-भ्रष्ट होने के कारण प्रत्यक्ष है और उनमे सबसे बडा कारण धनाभाव है। रक्षा के ज्ञान का अभाव भी एक कारण है जससे बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। यह प्रकट करते हुए मुझे बहुत

दुःख हो रहा है कि राजस्थान सरकार द्वारा हमे इस संग्रहालय के लिए अब तक कुछ भी आर्थिक सहायता नही मिल सकी है जबकि सग्रहालय का मासिक व्यय पाँच सौ रुपये से कम नही बैठता। वस्तुओ की रक्षा की दृष्टि से भी कर्मचारियो की सख्या बहुत कम है। इस अर्थाभाव के कारण ही सग्रहालय अपने योग्य अध्यक्षो को अपने यहा अधिक समय तक टिका नही पाता यद्यपि सस्था इस पर यथाशक्ति व्यय करती जा रही है।

अपनी समस्त योजनाओ और कार्यों मे मुझे ग्रामोत्थान विद्यापीठ सगरिया के प्रधान चौधरी शिवकरण सिंह जी तथा कार्यकारिणी के माननीय सदस्य श्री कुम्भाराम आर्य, ससद सदस्य और श्री चौधरी रामचन्द्र (मत्री, राजस्थान शासन) आदि महानुभावो से सक्रिय सहयोग मिला है। उनकी सस्था की निःस्वार्थ सेवाओ के प्रति मेरे हृदय मे एक गहरा आदर है।

राजस्थान के मुख्य मत्री श्री मोहनलाल सुखाडिया तथा राजस्थान के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष डा० सत्यप्रकाश श्रीवास्तव ने इस सग्रहालय मे आकर अपने मूल्यवान सुझाव दिए है। हमे विश्वास है कि राजस्थान शासन अपने प्रान्त की इस कला-निधि की रक्षा के लिए निकट भविष्य मे ही कोई ठोस कदम उठाएगा।

मै राष्ट्र सत विनोबा भावे, प० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गाधी, श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल व श्री अजितप्रसाद जैन आदि महानुभावो के प्रति अपना आभार प्रकट करता हू जो मेरे आग्रह को स्वीकार कर सग्रहालय मे पधारे और जिन्होने अमूल्य सुझावो से हमे लाभान्वित किया।

लोक-जीवन में संग्रहालय का स्थान



श्री राय कृष्णदास
श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त

आज के संग्रहालयों की उपयोगिता

श्री राय कृष्णदास

शिक्षा के जो नए माध्यम प्रस्तुत हो रहे है, उनमे दृश्य वस्तुओ के द्वारा शिक्षा का बहुत महत्व है। जो बाते अनेक प्रकार से समझाने पर भी नही समझ पडती, आँखो के सामने आते ही मन उन्हे सहज ही ग्रहण कर लेता है। इसी कारण सिनेमा, टेलीविजन, चित्रित पुस्तको, स्लाइडो के साथ-साथ सग्रहालय भी आज शिक्षा प्रचार के साधन बन गए हैं।

यह नही समझना चाहिये कि इस प्रकार के दृश्यो के द्वारा शिक्षा केवल वयस्को और अशिक्षितो के लिए उपयोगी है वरन् उच्च शिक्षा के लिए भी इन माध्यमो की भारी आवश्यकता है। सग्रहालयो का इस प्रसग मे भारी महत्व है।

सग्रहालयो के भिन्न-भिन्न विषय हो सकते है। कला-सग्रहालयो मे विभिन्न शास्त्रो के आँकडे, दृश्य-वस्तुओ सम्बन्धी एव वैज्ञानिक विषयो सम्बन्धी भिन्न-भिन्न वस्तुओ के प्रदर्शन होते रहते है। वस्तुत सग्रहालयो मे जिन विषयो से सम्बन्धित वस्तुए प्रदर्शित की जाती है, उन सबका उद्देश्य विषयो की जानकारी प्रस्तुत करना होता है। मुख्य रूप से सग्रहालयो मे से चुनी वस्तुए एकत्रित की जाती है, जिनके द्वारा एक ही स्थान पर विद्यार्थी अनेक प्रकार की सामग्री अध्ययन के लिए प्राप्त कर लेता है। जो वस्तुए अलभ्य होती हे, उनके प्रतिरूप इकट्ठे किए जाते हे। जिन वस्तुओ के विपय मे जानकारी बतलानी होती है, उन्हे साथ मे अनेक प्रक्रियाओ द्वारा प्रकट किया जाता है। वस्तुओ को इस प्रकार रक्खा जाता हे कि अध्ययन करने मे असुविधा न हो, प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था करके उक्त वस्तुओ की विशेषताए स्पष्ट को जाती है। कभी-कभी उपयुक्त वातावरण उपस्थित करने के लिए पृष्ठ-भूमि मे समुचित विवरणो के द्वारा ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया जाता है कि दर्शक कुछ क्षण के लिए अपने-आपको ही बिल्कुल भूल जाता हे। न्यूयार्क ने एक सग्रहालय मे एक बहुत बडा हौज-सा बना है, जिसमे जल तो नही है परन्तु प्रकाश की किरणो की ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा उसमे उतरते हुए से अनेक जलीय पशु ऐसे प्रकट होते है मानो समुद्र मे तैर रहे हो।

सग्रहालयो की उपयोगिता बढाने के लिए विवरण पत्रो, लेबिलो, गाइडो आदि की व्यवस्था की जाती है। इन सब का एक ही उद्देश्य होता है कि सग्रहालय मे जो वस्तुए प्रदर्शित की जाती है उनका अर्थ अधिकाधिक रूप मे प्रकट हो। दूसरे शब्दो मे उनके द्वारा शिक्षा का प्रचार अधिक से अधिक हो। इस प्रकार सग्रहालयो की उपयोगिता को बढाने के लिए आधुनिक से आधुनिक प्रयोग किए जा रहे है। अमेरिका मे दर्शको को मामूली दर पर किराये पर ऐसे रेडियो रिसीवर मिलते है, जिन्हे कान मे लगाकर दर्शक कला की वस्तुओ आदि के सामने खडे हो जाते है। इन वस्तुओ के सम्बन्ध मे सारी व्याख्या उस यन्त्र मे सुनाई देती है। इतना ही नही जहा जीव-जन्तुओ के प्रदर्शन है, वहा पृष्ठ-भूमि मे प्राकृतिक दृश्य देखने के साथ-साथ ऐसी ध्वनियाँ उस यत्र के द्वारा दर्शक को सुन पडती है जो उस वातावरण मे होती रहती है। इस प्रकार उन प्रदर्शित वस्तुओ की उपयोगिता और भी बढ जाती है।

अपने देश मे 'सग्रहालय' शब्द से एक अजायबघर का अर्थ लिया जाता है अर्थात् सग्रहालय मे अजीब-अजीब चीजे होगी। इसी दृष्टिकोण के कारण अपने देश मे सग्रहालय उपयोगिता की दृष्टि से बहुत सफल नही कहे जा सकते। इनमे जिस प्रकार की वस्तुओ का चयन किया गया है, वह दर्शक के मन मे ज्ञान उत्पन्न नही करती। इसी प्रकार अनेक पुरातत्व और कला-सग्रहालय है, जिनके ठीक-ठीक रूप निर्धारण न होने से वे सचमुच 'अजायब घर' बन गए है।

सग्रहालयो द्वारा शिक्षा का प्रचार-कार्य वस्तुत बाल अवस्था से ही आरम्भ हो जाता है। दूसरे शब्दो मे बाल-शिक्षा के लिए सग्रहालय बडे ही उपयोगी सिद्ध हुए है। इनके द्वारा बालको को सहज ही अनेक मूलभूत सूचनाए दी जाती है। जिनसे एक ओर इतिहास, सस्कृति और कला का परिचय होता है तो दूसरी ओर विज्ञान के स्थूल सिद्धान्त भी समझे जा सकते है।

इसी प्रकार साक्षरता आन्दोलन मे सग्रहालयो का उपयोग किया जाता है। वयस्क लोगो के लिये कुछ सीमा तक उसी सामग्री का उपयोग किया जाता है जो बाल-शिक्षा मे उपयोगी है क्योकि उसमे कुछ मूलभूत सूचनायें दी होती है। परन्तु ऐसे सग्रहालयो की पूरी उपयोगिता तभी होती है जब उनमे वयस्को की आवश्यकता के अनुसार देश और विदेशो से सम्बन्धित सूचनाये प्रदर्शित की जावे और उनकी मूल व्याख्या भी साथ दी जावे।

सग्रहालय से अपने देश मे मुख्यत कला या पुरातत्व सग्रहालयो का ही बोध होता है क्योकि अपने देश मे अधिकाश सग्रहालय इसी कोटि के है। इनके द्वारा जन-साधारण मे कला-चेतना का प्रचार होता है। इतना ही नही, इनमे अध्ययन करने वालो को यह सुविधा भी होती है कि भिन्न २ कालो और सस्कृतियो मे देश और विदेशो मे क्या-क्या आचार विचार थे, इसकी भी खोज-पडताल की जा सके। इनमे ऐसी-ऐसी कला-कृतियाँ और पुरातत्व सामग्री सग्रहीत होती है जो दुर्लभ और बहुमूल्य होती है अतएव यह सग्रहालयो का ही काम है कि उन्हे जन-साधारण को सुलभ कर दे।

इस प्रकार वस्तुत सग्रहालयो के दो उपयोग है। एक तो जन-साधारण मे उक्त विषयो की जानकारी सुलभ करना। उदाहरण के लिये स्वास्थ्य सम्बन्धी सग्रहालयो मे स्वास्थ्य के विषयो मे जानकारी उपस्थित की जाती हे। इसी प्रकार मानव-शास्त्र, प्राचीन वनस्पति शास्त्र तथा कला-कौशल आदि सम्बन्धी सग्रहालय हो सकते है। यद्यपि सग्रहालय जन-साधारण के मन-बहलाव के भी साधन हे परन्तु उनका मूल उद्देश्य ज्ञान का प्रचार ही है। विशेष रूप से अनेक दृश्य साधनो मे सग्रहालयो का अपना महत्व माना जाता है। परन्तु सग्रहालयो की उपयोगिता यही समाप्त नही हो जाती। सग्रहालयों की उतनी ही महत्वपूर्ण योग्यता ज्ञान के विकास मे भी है क्योकि इस प्रकार सग्रहालय नई-नई शोधों के केन्द्र हो जाते है। इसी प्रकार चल-सग्रहालयो द्वारा भी सग्रहालयो की सामग्री को भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे उपलब्ध किया जाता है जिससे उनकी उपयोगिता और भी बढ जाती हे। अपने इस महान् देश मे सग्रहालयो की उपयोगिता और भी अधिक है। यहाँ हमे जन-साधारण मे कला-चेतना उद्‌बुद्ध करनी है। इतना ही नही हमे ज्ञान के प्रचार मे सग्रहालयो की प्रमुख रूप से सहायता मिल सकती है। विशेष रूप से अपने देश मे वयस्क साक्षरता आन्दोलन मे विशेष उपयोगिता सिद्ध होगी। यदि हमारे चलते-फिरते सग्रहालय दूर-दूर तक ग्रामीण क्षेत्रो मे पहुँच जाये तो हमे अपने देश-वासियो को शिक्षा के मूलभूत तत्व समझाने मे बहुत सहायता मिल सकती है क्योंकि सग्रहालयों द्वारा शिक्षा-प्रसार मे अक्षर-ज्ञान अनावश्यक है इसलिये इनकी उपयोगिता और भी बढ जाती है। अत मे हम इतना ही कह सकते है कि सग्रहालयो की जितनी उपयोगिता है उतनी अपने देश मे अभी प्रकट नही हुई।

संग्रहालय क्यों ?

श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

जैसे प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यक्तिगत व्यतीत जीवन के अनुभवो का लेखा-जोखा सदैव करना पडता है इसलिये कि वह अपनी की हुई त्रुटियो को दुहरा न पाए तथा अपने गौरवमय कार्यों से प्रेरणा और शिक्षा लेकर भविष्य के जीवन को उन्नत बना ले, ठीक उसी प्रकार देश और समाज को सामूहिक रूप मे अपने प्राचीन जीवन का लेखा-जोखा करना ही पडेगा यदि उसे उन्नतिशील होना है। यही कारण है कि ससार के हर देश मे सग्रहालयो की स्थापना का एक नया आन्दोलन खडा हो गया है। यद्यपि सग्रहालयो की स्थापना हर देश मे बहुत समय से होती रही है किन्तु इधर पिछले दशक मे इसके उद्देश्यो को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे कई सम्मेलन हुए है जिनमे इस बात पर बडा जोर दिया गया है कि सग्रहालय अब केवल अद्भुत वस्तुओ को रखने का गोदाम मात्र नही है वरन् वह एक महान् विश्वविद्यालय है जिसके द्वारा देश और समाज के एक-एक व्यक्ति का जहाँ एक ओर सुरुचिपूर्ण मनोरजन होता है वही उसकी गहरी शिक्षा भी होती है। १९५२ मे न्यूयार्क मे तथा १९५४ मे एथेन्स मे इसी विषय को लेकर अनेक देशो के प्रतिनिधियों की महत्वपूर्ण बैठके हुई और उन्होने कितने ही सुझाव इस बात को लेकर रखे कि सग्रहालयो मे वस्तुओ को इस प्रकार से सजाया जाय और समय-समय पर ऐसे कार्यक्रम वनाए जाय कि जनता के मन मे यह विश्वास उत्पन्न हो जाय कि सग्रहालयो मे समय-समय पर स्वय जाते रहना तथा अपने बच्चो को भेजते रहना उतना ही शिक्षाप्रद है जितना कि विद्यालयो मे जाना और भेजते रहना।

वस्तुत सग्रहालय एक ऐसी सस्था है जहाँ आकर बालक, युवक, वृद्ध सभी अपना ज्ञान-वर्धन स्वय, वस्तुओ को देख-देख कर करते है। कोई उन्हे स्कूलो की भाति पुस्तको को पढा-पढा कर नही बताता। इस नवीन प्रणाली से प्राप्त किया हुआ ज्ञान गहन और टिकाऊ होता है क्योकि यह नेत्रो के द्वारा मस्तिष्क मे एक तस्वीर खीच देता है जो जीवन-पर्यन्त रहता है। 'मैने स्वय सीख लिया और जान लिया' यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक सतुष्टि है जो 'मुझको पढाया गया और बताया गया' मे कभी भी नही होती। प्रथम मे 'स्व' की भावना कुठित नही होती किन्तु द्वितीय मे यह होती ही है। यही कारण है कि हर देश की शिक्षा-प्रणाली मे दृष्टिगत शिक्षा को ही वैज्ञानिक माना जाने लगा है। यह दृष्टिगत शिक्षा तो हमे सग्रहालयो से ही मिलती है जहाँ वस्तुए स्वय सग्रहीत रहती है जिन्हे देखा जा सकता है और जिनकी परीक्षा की जा सकती है।

आज का हर समझदार शिक्षक अपने विद्यार्थियो को बार-बार सग्रहालय ले जाता है। एक-एक वस्तु को उन्हे पास से दिखाता है और यदि आवश्यक समझता है तो कहता है कि उनका चित्र बनाओ ताकि उन सभी आवश्यक बातो को वह दिखा सके और समझा सके जो कि विद्यार्थी एक सरसरी दृष्टि डालने पर नही देख पाता।

विद्यालयो के बाहर भी आज जन-समुदाय मे सग्रहालयो को देखने और उनमे रखी हुई वस्तुओ के बारे मे ज्ञान प्राप्त करने का प्रचलन हो चुका है क्योकि सग्रहालयो ने अपने को अब शिक्षा का माध्यम बनाना स्वीकार कर लिया है। इस विषय की पूर्ति के लिए नये-नये उपायो को

काम मे लाया जा रहा है। सगृहीत वस्तुओ तथा सस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित चल-चित्रो को समय-समय पर दिखाना अथवा समय-समय पर किसी जानकार ज्ञानी का भाषण चित्रो या वस्तुओ को दिखा-दिखाकर कराना, रेडियो और समाचार पत्रो मे अपनी सगृहीत वस्तुओ के बारे मे जानकारी देते रहना, नवीन प्रकार से वस्तुओ को सजाना और उनके पास छोटे-छोटे परिचयात्मक लेबिल लगाना तथा दर्शको को समझाने के लिये जानकार भाषणकर्ता को रखना आदि कई उपाय काम मे लाए जाते है।

सग्रहालय अब जन-साधारण के जीवन का आवश्यक अग होता जा रहा है। 'जीवन मे एक बार सग्रहालय हो आये तो पर्याप्त है, क्योकि बार-बार एक ही वस्तु को देखने से लाभ क्या' कभी कभी ऐमा सुना जाता है, किन्तु यह बात यथार्थता से दूर है क्योकि अब तो जनता मे वह भावना आ गई है कि किसी भी प्राचीन वस्तु को फेकने की अपेक्षा सग्रहालय मे भेज देना चाहिए। यही नही, सक्रिय प्रयास मे भी वस्तुए एकत्रित की जाती है। यही कारण है हर सग्रहालय एक वट-वृक्ष की भाति सदा बढता रहता है और हर बार आपको नई वस्तुए देखने को मिलती है। समय-समय पर वस्तुओ को बदला भी जाता है जिससे हर वस्तु जनता के ज्ञान तक पहुँच सके। यही नही समय समय पर सग्रहालय मे अस्थायी रूप से प्रदर्शिनी भी की जाती है - ये अस्थायी प्रदर्शिनी किसी एक प्रकार की ही वस्तुओ को प्रदर्शित करने के लिए लगाई जाती है। इसका ध्येय यह है कि जनता का ध्यान इस ओर खीचा जाय कि उनके पास यदि वैसी ही वस्तुए रखी हो तो वे उनको सग्रहालय ले जाये ताकि गडी हुई चीजे बाहर आ जाय। इसके अलावा इसका उद्देश्य यह भी है कि एक ही दृष्टिकोण से एक प्रकार की वस्तुओ के बारे मे अधिक ज्ञान लोगो को हो। उदाहरण के लिए एक अस्थायी प्रदर्शिनी राजपूत कला की हो सकती है।

प्रदर्शिनी चाहे स्थायी हो अथवा अस्थायी सग्रहालयाध्यक्ष यह कभी नही भूलता कि सग्रहालय मे जन साधारण अपने अवकाश के समय मनोरजन करने अधिक आता है ज्ञान प्राप्त करने कम अत वह सदैव इन दोनो उद्देश्यो का समन्वय रखता है—लिखता कम है सजाता अधिक है, किन्तु तब भी इस ढग से नही सजाता जैसे कि बाजार के गहने, उसके सजाने का ढग सुरुचिपूर्ण होता हे, रगो और दोषो को चटकीला नही रखता, कारण स्पष्ट है ज्ञान-विज्ञान की वस्तुओ को दुकानदारी का सौदा उसे नही बनाना है। अत दर्शको की रुचि का परिमार्जन भी होता रहता है।

सग्रहालयाध्यक्ष अपने हर प्रकार के दर्शको को जानता है कि अमुक वस्तु के बारे मे उसे किस प्रकार और कितना ज्ञान अलग-अलग प्रकार के दर्शक को देना है। यहाँ कुतूहलता को लिए एक आरम्भिक कक्षा का विद्यार्थी भी आता है और ऊँची कक्षा का एक गवेषणा करने वाला स्नातक भी, एक अशिक्षित ग्रामीण भी आता है और एक शिक्षित जिज्ञासु भी। वह हर एक के ज्ञान-स्तर को अच्छी तरह पहिचानता है और उन्हे वस्तुओ के सामने ले जाकर उन्ही के स्तर के अनुरूप समझाता है। जहाँ सामान्य दर्शक को वह वस्तु की केवल सुन्दर अद्भुतता, प्राचीनता और सामाजिक ज्ञान की महत्ता भर ही समझा कर सन्तुष्टि पा लेता है, वही वह एक स्नातक को गवेषणात्मक परिचय की हर जानकारी भी देता है।

हमारे देश मे स्थान-स्थान पर और घर-घर मे न जाने कितनी प्राचीन वस्तुएँ दबी पडी है, अनेक वस्तुओ के मूल्य और उनकी महत्ता का ज्ञान तक नही होता। न जाने कितने सोने, चाँदी, ताँबे के सिक्के और मोहरें हम गला देते है, न जाने कितनी प्राचीन पुस्तको के पन्ने जिनमे

कभी-कभी तो अत्यन्त सुन्दर चित्र बने होते है फाड-फाड कर हम पुडिया बना डालते है, न जाने कितने कागज या ताड के पत्तो पर के चित्र हम यो ही टाँगे टाँगे धुए और धूल से बर्बाद कर डालते है, न जाने कितनी मूर्तियो को हम केवल आँगन मे या किसी पेड के नीचे रखकर यदा-कदा फूल-पत्ती चढाने लग जाते है और न जाने कितने मिट्टी के खूबसूरत खिलौने और बर्तन-भाडे हम तोड-फोड कर फेक देते है या बच्चो को खेलने के लिए दे देते है। ये सभी प्रकार की वस्तुएँ या तो हमारे घरो मे पुश्त-दर-पुश्त से रखी हुई चली आ रही है या स्त्रियो के गहनो मे जडा दी गई है, या अपने घर-मकान बनाते समय नीव वाले गड्ढो मे से अचानक निकलती है और या तो गाव के आस-पास प्राचीन कला की बस्तियो के भग्नाववेष, जो अब ऊँचे टीले या टीम्बे के रूप मे खडे दीखते है उनके सतह पर या उनमे कटी बरसाती नालियो मे पडी हुई मिलती है।

जरा सोचिए तो, इन्ही स्थानो की ऐसी ही वस्तुओ मे न केवल हमारे प्राचीनतम गौरव के इतिहास का भडार भरा पडा है, वरन् इन्ही वस्तुओ से सम्पूर्ण देश का माथा स्वाभिमान से ऊँचा होता है। कितने दु ख की बात है कि अज्ञान के कारण हम इन्हे नष्ट कर देते है। सग्रहालयो के इस नये आन्दोलन मे हम मे से हर एक का यह नैतिक कर्तव्य है कि हम ऐसी वस्तुओ की, जब और जहाँ मिले, सूचना तत्काल अपने सग्रहालय मे एक पोस्टकार्ड डालकर भेज दे ताकि उनकी उचित सुरक्षा हो जाय और आपको भी पारितोषिक मिल जाय। किसी भी ऐसी वस्तु को नष्ट कर देना या किसी व्यक्ति को बेच देना एक जुर्म है।

सग्रहालय मे या राज्य सरकार को समर्पण करने के दो लाभ है—प्रथम, तो यह कि सरकारी 'ट्रेजर ट्रोव' नियमो के अनुसार हमे वस्तु का जितना अपना मूल्य होता है, उससे एक चौथाई और अधिक धन मिल जाता है, जैसे यदि एक सोने का सिक्का पौन तोले का हुआ और बाजार मे इतने सोने का मूल्य १००) है तो आपको इसके बदले १२५) मिल जायगा जबकि गलाने पर केवल १००) का ही सोना बचेगा और उस पर भी अगर सरकारी कर्मचारी को पता चल गया तो आप दण्डनीय होगे। सुन्दर प्राचीन वस्तुओ पर जो गडी न मिली हो, और भी अधिक से अधिक दाम मिल सकता है। दूसरे, यह कि जो वस्तुए यो ही पडे-पडे नष्ट हो जायेगी या जिनसे केवल परिवार के ही कुछ व्यक्ति लाभ उठायेंगे उसकी अपेक्षा सग्रहालय मे उन्हे नए वैज्ञानिक तरीको से सुरक्षित करके आने वाले सहस्रो वर्ष तक सम्पूर्ण समाज, देश और उन पर छपने वाली पुस्तको के द्वारा ससार लाभ उठाता रहेगा—आपका और आपके वश का सदैव नाम रहेगा। सोचिए तो आप थोडे मे ही कितनी बडी सेवा कर रहे है ?

जैसे आप अपने पिता और पितामह की वस्तुओ को जान-जान कर स्वाभिमानित होते है वैसे ही आप अपने इस सग्रहालय की वस्तुओ को देख-देख कर देश और जाति के प्रति स्वाभिमान से जागरूक होगे, ऐसा हमे विश्वास है। यहा आपकी अपनी वस्तुए है, प्राचीन और नवीन वस्तुए है। इनमे ज्ञान का भडार है—एक बार मे न देखा जा सकता है न जाना। ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तो बार-बार आना होगा।

प्रथम कक्ष

मूर्ति-शिल्प

सरस्वती मन्दिर के प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर भित्ति के सहारे भगवान् बुद्ध की ध्यानस्थ मूर्ति है जो दर्शको का ध्यान बरबस ही खीच लेती है। इस शुभ्र प्रतिमा के नीचे धम्म-पद का एक वाक्य अङ्कित है। 'सारे प्रमादी जीवन की अपेक्षा जागृति का एक दिवस श्रेष्ठ है'—यह सन्देश ही वह पद देता है। निकट ही एक छोटा-सा द्वार है जिस पर सगमर्मर की शिला-पट्टिका पर सग्रहालय का नाम अङ्कित है। इस द्वार और घुमावदार जीने को पार कर दर्शक ऊपर पहुँचता है। उस समय तक उसे यह कल्पना भी नही होती कि क्षण भर मे उसकी दृष्टि के आगे कला की ऐसी सृष्टि होगी। स्वय स्वामी केशवानन्द जी को भी सम्भवत यह आभास न होगा कि उनका रोपा पौदा एक दिन वट-वृक्ष बन जावेगा और उनकी सग्रहीत वस्तुये सरस्वती मन्दिर की ऊपरी मजिल के सारे खण्ड पर अपना अधिकार जमा लेगी। कुछ समय के लिये सग्रहालय को देखने की उत्कण्ठा से आया हुआ दर्शक भले ही इस बात का अनुभव न करे किन्तु स्वामी जी तथा सग्रहाध्यक्ष इस बात को पूर्णरूपेण अनुभव करते है कि सग्रहालय की आवश्यकता और कक्षो के वर्गीकरण की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए सग्रहालय के लिये एक पृथक् भवन की आवश्यकता है।

ऊपर के खण्ड मे पहुँच कर सग्रहालय के मुख्य द्वार के एक ओर दर्शक को मिट्टी की छोटी पर्वत-आकृति दिखलाई देती है, जिस पर विविध प्रकार के, भाति-भाति के रग के पत्थरो के टुकडे लगे दिखाई देते हैं। कला और पुरातत्व की दृष्टि से भले ही इस नमूने की कोई उपयोगिता और महत्व न हो किन्तु वह स्वामी जी की लगन का एक प्रतीक अवश्य है। जिस समय उन्होने हिमालय की यात्रा की थी, उस समय वे विविध प्रकार के, अनेक रूप-रग के इन पत्थरो का सचय अपनी झोली मे लाये थे। प्रवेश-द्वार के दूसरी ओर रगमहल की एक ईट प्रस्तर-शिला पर जमा कर रख दी गई है। उसके निकट ही शीशे की, दीवाल मे लगी अलमारी मे सस्था के प्रकाशन रखे है। पाषाणो के नमूने के निकट, मानसरोवर का 'माडल' है। वही विविध आकृतियो और अलकारो से युक्त मुगलकालीन 'टाइल्स' जडे है।

मुख्य-द्वार से दर्शक एक लम्बी कला-बीथिका (गैलरी) मे प्रवेश करता है। इसमे दोनो ओर कुषाणकाल से उत्तर-मध्यकालीन शिल्प तक के अनेक नमूने काल-क्रमानुसार रखे हैं। पहले यहाँ राजघाट की मृण्मूर्तियो का सग्रह भी था जो स्वामी जी महाराज को भारत-कलाभवन के सौजन्य से प्राप्त हुआ था। उसके लिए अधिक प्रकाश की आवश्यकता का अनुभव कर पृथक् कक्ष मे स्थानान्तरित कर दिया गया।

राजकीय सग्रहालयो का अपना एक क्षेत्र होता है। उस क्षेत्र मे मिली या खुदाई से उपलब्ध प्रतिमा उस सग्रहालय का मूल्य बढाती है। सस्था के इस सग्रहालय को ऐसी कोई सुविधा नही मिली, जो जनपद का अकेला सग्रहालय होने के कारण उसे मिलनी आवश्यक थी। जो कुछ भी नमूने इस कक्ष मे दिखलाई देते है, वे स्वामी जी के व्यक्तिगत प्रयास का ही फल है। इस दिशा मे उन्हे अपने मित्र श्री राय कृष्णदास जी से बहुमूल्य सहयोग मिला है।

भारत का मूर्ति-शिल्प

भारत मे धर्म और कला का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा। साधक ने अपने आराध्य की जिस छबि को मानस-चक्षुओ के आगे देखा उसी को शिल्पी ने अपनी छैनी और हथौडे से साकार रूप दिया। भव्य समारोहो मे, इन प्रस्तर-प्रतिमाओ की देवालय मे प्राण-प्रतिष्ठा हुई। किसी व्यक्ति-विशेष के मनोरजन लिए इन प्रतिमाओ का सृजन नही हुआ, जनता के उपासना के क्षणो के निमित्त यह गढी गई। काल के प्रवाह मे अनेक राजवश बह गये, गाव मिट गये पर यह प्रतिमाये आज भी उनके युग की साक्षी दे रही है। धर्मान्ध आक्रमणकारियो ने उन्हे अग भग कर डाला, जिन मदिरो मे शख ध्वनि के साथ उनका पूजन होता था, वे धूल मे मिल गये और उन प्रतिमाओ को सग्रहालयो मे सरक्षण मिला। भिन्न-भिन्न कालो मे अनेक शिल्प-शैलियो का उदय हुआ। उन शैलियो की प्रतिमाये आज इस महादेश के भिन्न-भिन्न भागो में दृष्टिगोचर होती है। उनकी अपनी लाक्षणिकताये है, जिनके आधार पर उनकी शिल्प-शैली और काल का निर्णय किया जाता है। भारत मे सबसे पुरातन प्रतिमाये मोहेजोदडो की है, जहाँ से भारतीय इतिहास का श्री गणेश होता है। सिन्ध की घाटी के प्राचीन नगरो की खुदाई मे प्राप्त होने वाली यह प्रतिमाये किस उद्देश्य को लेकर बनाई गई, स्मृति-रक्षा या उपासना—यह आज नही कहा जा सकता। इनमे एक पुरुष-मूर्ति जो ध्यान लगाये बैठी है, अपनी ओर अधिक ध्यान खीचती है। मोहेजोदडो के प्राक्-ऐतिहासिक काल के पश्चात् इतिहास के पटल पर एक गहरा कुहासा छा जाता है जिसे पार कर देख सकने मे समीक्षक के नेत्र असमर्थ है। ईसा से पूर्व छठी-सातवी शताब्दी से भारतीय इतिहास की खोई हुई शृङ्खलाये मिलने लगती है। अनेक जातक-कथाये व उपनिषद् इसी युग के है। जातको से ज्ञात होता है कि उन दिनो शिल्प का विकास हो चुका था। चित्रकार, स्वर्णकार, दन्तकार आदि समस्त शिल्पी 'कर्मकार' कहलाते थे और अपने-अपने समाज बनाकर रहते थे।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के भव्य प्रासाद का वर्णन किया है जिसमे भाँति-भाँति की मूर्तियाँ बनी हुई थी। दुर्भाग्यवश आज वे नमूने हमे उपलब्ध नही है।

भारतीय कला के सबसे पुराने नमूने यक्ष-यक्षणियो की आदमकद मूर्तियाँ मानी जाती है। इतिहासकार इन्हे शैशुनाक काल की मानते है। यह मूर्तियाँ चुनार के पत्थर की बनी हुई है। शैशुनाक तथा नन्दकाल ७२७ ईसा पूर्व से ३२५ ईसा पूर्व तक माना जाता है। मथुरा जिले के परखम नामक स्थान पर एक विशालकाय प्रतिमा मिली है और उसके निकट ही बारोदा ग्राम में लगभग बारह फुट की एक अन्य यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है। इन प्रस्तर प्रतिमाओ मे यक्ष बडे बलिष्ठ तथा स्थूल-काय

दिखलाये गये है। वे घुटनो तक की धोती पहने है और छाती पर उत्तरीय बधा है, जिसका एक छोर बाहर लटक रहा है। उनके गले मे मोटे कठे और मालाये दिखलाई देती है। पटना के निकट इसी वर्ग की दो अन्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी, जिन्हे कुछ इतिहासकार यक्ष-मूर्ति और कुछ नन्द वश के उदयनन्द और नन्दिवर्धन की मानते है। उनके अतिरिक्त कुछ नारी-मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है। कुछ विद्वान् शैशुनाक काल की इन यक्ष-प्रतिमाओ को मौर्य-काल की भी मानते है।

मौर्य-युगीन कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने अशोकीय स्तम्भ है। यह स्तम्भ चुनार के लाल पत्थर के है और पेंतीस-छत्तीस फुट ऊँचे है। उनके ऊपर शीर्ष-भाग है जिस पर गज, सिह और वृषभ आदि की बडी ओजवती और प्राणवान मूर्तियाँ है। समूचा स्तम्भ एक ही पत्थर को काटकर बनाया गया है और उसमे गोलाई दी गई है। इसी प्रकार ऊपर का शीर्ष-स्तम्भ भी एक ही पत्थर का है। मौर्य-कला की विलक्षणता यह है कि यह स्तम्भ तथा इस काल की प्रतिमाये शीशे सी दमकती है। उन पर एक ओप है, जिससे इतनी चिकनाई आ गई है। मौर्य-युग के बाद की शिल्प-कृतियो मे यह ओप दिखलाई नही देता। अशोक-युगीन तेरह स्तम्भो का पता अब तक लग चुका है। वे सारनाथ, साँची (मध्य प्रदेश), रुम्मिन देई (नेपाल), कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट), मुजफ्फरपुर, चम्पारन (लौरिया नन्दन गढ,, रमपुरवा व रढिया ग्राम मे) तथा दिल्ली मे है। इनमे से सारनाथ के सिह शीर्ष-स्तम्भ को हमारे भारतीय गणतन्त्र ने अपनी महामुद्रा के रूप मे ग्रहण किया है। इन स्तम्भो मे गोल खम्भे पर एक पतली-सी मेखला रहती है और उसके ऊपर एक पखुड़ियोदार कमल रहता है। इस कमल की पखुडियाँ नीचे की ओर मुडी रहती है, इसीलिये इसे कुछ विद्वानो ने घटा की आकृति भी समझा है। कमल के ऊपर एक नक्काशीदार कठी रहती है, जिसके ऊपर गोल अथवा चौकोर चौकी रहती है। इस चौकी पर भी अलकरण रहता है। रमपुरवा के अशोकीय स्तम्भ की गोल चौकी पर कुछ पक्षी उत्कीर्ण किये गये है और सारनाथ के सुप्रसिद्ध सिह शीर्ष-स्तम्भ पर चौकी मे चार दिशाओ मे चार धर्म-चक्र दिखलाये गये है। उनके बीच मे भारत के चार प्रमुख पशु गज, अश्व, वृषभ और सिह है।

चौकी के ऊपर पशुओ की बडी सजीव आकृतियाँ बनाई जाती थी और उनके ऊपर एक बडा धर्म-चक्र प्रतिष्ठित किया जाता था। रमपुरवा के एक अशोकीय स्तम्भ पर वृषभ की बडी सुगढ आकृति है। उसके अग-प्रत्यग इतने सुडौल है कि सजीव से जान पडते है। इस समय यह वृषभ-युक्त शीर्ष-स्तम्भ नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय की निधि है। इस शिल्प-कृति के सम्बन्ध मे श्री राखालदास वद्योपाध्याय ने लिखा था कि समस्त भारतीय शिल्प मे वृषभ की इससे श्रेष्ठ तथा प्राणवान आकृति अन्य नही है। अशोकीय स्तम्भो को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि यह सब एक ही समय

मे नही बने क्योकि उनमे एक क्रमिक विकास की परम्परा दिखलाई देती है। सार-नाथ का नमूना इनमे सर्वश्रेष्ठ है। इसकी चौकी के ऊपर सिहो की बडी सजीव प्रतिमाये है। इस शीर्ष-स्तम्भ के सम्बन्ध मे मैने अपनी पुस्तक 'कला के प्राण : बुद्ध' मे लिखा है—

"अशोकीय स्तम्भो मे सारनाथ का सिह-शीर्षक स्तम्भ सवश्रेष्ठ है। इसकी चौकी पर हाथी, बैल, सिह और घोडा है। ये चारो दौडते हुए आके गये है। इनके बीच मे चार धर्म-चक्र है। यह चारो पशु मूलत भारतीय है और वे प्राचीन युग में चारो दिशाओ के प्रतीक के रूप मे उत्कीर्ण किये जाते थे।

सिह, शौर्य, निर्भीकता और स्फूर्ति का प्रतीक है, गज, चातुर्य, बिचारशीलता और ऐश्वर्य का। वृषभ और अश्व आर्यो के वे प्रिय पशु है, जिनमे से एक के सहारे उन्होने भूमि को उर्वरा बनाया और दूसरे को साथ लेकर राज्य का विस्तार किया। चौकी के ऊपर चार सिहो की बडी ओजवान आकृतियाँ है। वे चारो दिशाओ की ओर मुँह किये बैठे है। उनका प्रत्येक अग बडी कुशलता से बनाया गया है। पैरो की शिराये तनी है। कान खडे है। सिहो के अयाल भी बडी सफाई से काटकर बनाये गये है। ससार के शिल्प मे पशुओ का इतना प्राणवान अकन नही हुआ। इनकी पलको मे छोटे-छोटे गोल छेद है, जिनमे मणिक्य फसा दिये जाते होगे और सिहो के नेत्र दीप्तिमय हो उठते होगे।"

मौर्यकालीन कला के पश्चात् द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व मे साची के तोरणों का सृजन-कार्य दिखलाई देता है। साची भोपाल के निकट है। वहाँ एक ऊँची पहाडी पर तीन बौद्ध स्तूप बने हुए है। उनमे जो सबसे बडा स्तूप है, उसके चारो ओर वेष्ठिनी तथा चारो दिशाओ मे चार तोरण है। इन तोरणो के प्रस्तर-शिल्प के कारण ही साची इतनी अधिक प्रख्यात् हो गई है। यह तोरण अथवा द्वार चौतीस-पैंतीस ऊँचे है और उन पर अर्ध-चित्र अथवा उभारी हुई प्रतिमाओ मे भगवान् बुद्ध के जीवन प्रसग तथा जातक दिखलाई देते है। यद्यपि इनमे धार्मिक प्रसगो को लिया गया है फिर भी यह कला-जीवन के अधिक निकट है और आध्यात्मिक पक्ष की अपेक्षा यह पक्ष अधिक सबल भी है। वैसन्तर जातक, छदत जातक, बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण आदि को बडी सफलता के साथ कोरा गया है। साची की कला मानो अर्ध-मुकुलित कलिका है, जिसका खिला हुआ रूप गुप्त-कालीन कला मे दृष्टिगोचर होता है। कमलो के अलकृत रूप, जल-कुम्भ और श्री देवी के अनेक अकन बडे अनूठे है।

विध्य-प्रदेश (वर्तमान मध्य-प्रदेश) मे सतना के निकट भरहुत का भी ऐसा ही बौद्ध स्तूप था, जो भग्न हो गया है। उसकी वेष्ठिनी तथा तोरण कलकत्ता के भारतीय सग्रहालय मे सुरक्षित है।

ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रथम प्रहर मे भारतीय कला की दो शिल्प-शैलियो का अभ्युदय हुआ। उनमे से एक गन्धार प्रदेश मे पनपी जहाँ ईसा-पूर्व दूसरी तथा प्रथम शताब्दी मे बैक्टीरियन राजाओ ने शासन किया था। यह नृपति स्वय बौद्ध थे और बौद्ध धर्म, कला व सस्कृति के प्रश्रयदाता थे। मिलिन्द, जिन्होने भिक्षु नागसेन से 'मिलिन्द प्रश्न' मे अपनी शकाओ का समाधान किया, इन्ही राजाओ मे से थे। उनके पश्चात् इस प्रदेश पर शको का अधिकार हुआ। देवानाप्रिय सम्राट् अशोक के समान ही महाराज कनिष्क का नाम बौद्धधर्म के प्रश्रयदाताओ मे बडे आदर के साथ लिया जाता है। इस प्रकार गन्धार मे इस शिल्प-शैली को बडी अनुकूल भूमि प्राप्त हुई। शकाधिपति कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी, जहाँ के भव्य स्तूप का वर्णन चीनी महापर्यटक फाहियान, ह्यूआन् चुआग और सुगयुन ने किया है। पुष्कलावती, तक्षशिला आदि इस उपत्यका के प्रमुख नगर थे।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्यान्ह से गन्धार प्रदेश मे भगवान् बुद्ध, बोधिसत्वो व महायान के देव-देवियो की प्रतिमाये बननी प्रारम्भ हो गई। यही समय महायान के उदय का भी माना जाता है। गन्धार शैली मे स्वात की घाटी मे पाये जाने वाले सफेद व सिलहटी पत्थर की असख्य प्रतिमाये गढी गई। यह परम्परा चौथी शताब्दी तक चलती रही। इन मूर्तियो पर इनका रचनाकाल और अन्य कोई लेख उत्कीर्ण नही मिलता। किसी बुद्धघोष द्वारा संघ को अर्पित की हुई कलकत्ता के भारतीय सग्रहालय की बुद्ध-प्रतिमा व लाहौर सग्रहालय को हारिति की मूर्ति आदि इसके अपवाद है।

गन्धार शैली के अकन के विषय व प्रतिमा की भाव-भगी आदि पूर्णत भारतीय है किन्तु बनावट पर ग्रीक अथवा यूनान की कला का पूर्ण प्रभाव है। विषय-वस्तु की दृष्टि से गधार मूर्तिकला बडी समृद्ध थी। भगवान् बुद्ध के तो जीवन का शायद ही ऐसा कोई प्रसग हो जिसे गधार शैली के तक्षक ने न छुआ हो। पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि इसी शिल्प-शैली मे सबसे पहले तथागत की प्रतिमा गढी गई। डा० आनन्द के० कुमारस्वामी व श्री काशीप्रसाद जायसवाल आदि विद्वान् इसका श्रेय मथुरा-शैली को देते है, जिसका उदय कुषाण-सातवाहन काल मे ही मथुरा मे हुआ। गधार के मूर्तिकार के मानस-चक्षुओ के आगे आदर्श रूप मे अपोलो की मूर्ति थी, बलिष्ठ शरीर, उभरी माँस-पेशियाँ—गधार-शिल्प-शैली मे एक बहुत बडी कमी यह भी थी कि उसके कलाकारो के पास अतर की अनुभूति न थी। मैने अपनी पुस्तक 'कला के प्राण बुद्ध' मे इस सम्बन्ध मे लिखा है।

"कला का स्रोत, कलाकार के अन्तर की प्रेरणा होती है। अजता के अधेरे गुहा-गृहो को केवल अतर के प्रकाश से ही आलोकित कर उन दिव्य चित्रावलियो की रचना हो सकती थी। गधार शैली के कारीगर को यह प्रेरणा न मिल पाई थी।

उसकी कृतियाँ फरमाइशी चीजे थी। कलाकार के पास आदेश पडे थे और उन्हे उसे निबटाना था अत. वह बिना कोई अनुभूति जगाये, मशीन की भाँति मूर्तियाँ बनाता चला गया। यदि ऐसी मूर्तियाँ रसानुभूति जाग्रत करने मे समर्थ न हो तो क्या आश्चर्य ?'' गधार-शैली की मूर्तियाँ सख्या मे इतनी अधिक है कि देश या विदेश का कोई सग्रहालय ऐसा नही है जिसमे इस शैली का कोई नमूना न हो। कलकत्ता और लाहौर सग्रहालय के कक्ष इसकी प्रतिनिधि-प्रतिमाओ से सजे हुए है। यह शैली कैसे उत्पन्न हुई ? यह प्रश्न विवादास्पद है। गधार शैली के उदय और विकास के विविध सोपान दृष्टिगोचर नही होते। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो किसी राजाज्ञा से शिल्पी-समुदाय पाषाण और छैनी लेकर बैठ गया और उसने अगणित मूर्तिया कोर डाली। यद्यपि भारतीय कला पर इसका विशेष प्रभाव नही पडा फिर भी इसकी कुछ देनें हैं। बौद्ध मूर्तियो मे आराध्य के मुख के पीछे प्रभा-मडल की रचना सबसे पहले इसी शैली मे हुई। गुप्त-कालीन कला मे इस प्रभा-मडल को पुष्पो, कलिकाओ और उडते हुए गन्धर्वों आदि से अलकृत कर दिया गया।

जिस समय पेशावर, तक्ष-शिला आदि केन्द्रो मे गधार-शैली का कलाकार भगवान् बुद्ध की जीवन सम्बन्धी प्रतिमाये गढने मे लगा हुआ था, उसी समय मथुरा मे एक आदर्शोन्मुखी तथा सर्वथा भारतीय शिल्प-शैली का उद्भव हो रहा था। भारतीय कला के इतिहास मे इसे 'मथुरा-शैली' का नाम दिया गया है। पाश्चात्य कला-समीक्षको ने 'मथुरा-शैली' की मूर्तियो पर 'गन्धार-कला' का प्रभाव खोजने की निष्फल चेष्टा की है। वस्तुत. मथुरा के शिल्पियो ने अपनी पूर्व-परम्परा शैशुनाक काल की विशाल प्रस्तर-प्रतिमाओ और जैन-मूर्तियो से ग्रहण की।

मथुरा-कला की विशाल बुद्ध और बोधिसत्व-प्रतिमाये लाल पत्थर की बनाई गई है जिस पर सफेद चित्ती रहती है। यह पाषाण मथुरा के निकट ही सीकरी नामक स्थान से निकलता था। इसमे एक चमक रहती है, जिससे इस शैली की पहचान मे सहायता मिलती है। इसकी लाक्षणिक विशेषताये यह है—

"कुषाण-कालीन बौद्ध-मूर्तियो की घनपात्रता, चतुरस्रता और विशालता बहुत प्रसिद्ध है। इस युग की मूर्तिया कोरदार बनाई जाती थी। इनकी बनावट गोल होती थी और पृष्ठालम्बन न होता था। इस युग की प्रतिमाओ का मस्तक मुण्डित रहता था। गुप्त-काल की तरह कुचित केश (उष्णीष) नही पाये जाते परन्तु शिर पर ककुद् जैसा उभार रहता है जो चक्राकार होते है। माथे पर ऊर्णा रहती है परन्तु मूछो का नितान्त अभाव है। प्रतिमाओ के वस्त्र व्यावर्तित होते है अर्थात् कपडो पर तह पडी रहती है। प्राय. मथुरा-कला की मूर्तियो के दाहिने कन्धे पर वस्त्र नही रहता है। प्रतिमा का दाहिना हाथ अधिकतर अभय-मुद्रा मे पाया जाता है। खडी मूर्तियो मे बाँया हाथ संघाटी को धारण किये दिखलाया गया है। बैठी हुई मूर्तियो मे बाया हाथ

उस पर अवलम्बित है। कुषाण कालीन मथुरा-कला मे प्रतिमाओ का निर्माण पद्मासन पर नही किया था। उनमे सिहासन पाया जाता है। खडी मूर्तियो के दोनो पैरो के नीचे सिह की आकृति बनी रहती है। मूर्तियो का प्रभा-मडल अनलकृत रहता है परन्तु किनारो पर वृत्ताकार चिन्ह दिखलाई पडता है।"[1]

मथुरा शैली की प्रतिमाये सुदूर बौद्ध केन्द्रो मे प्राप्त हुई है, इससे वह ज्ञात होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे यह शिल्प-शैली बहुत प्रख्यात् रही है। कुषाणो का साम्राज्य काफी दूर तक फैला था। सारनाथ मे उनका महाक्षत्रप रहता था। सारनाथ के सग्रहालय मे बोधिसत्व की एक खडी हुई विशाल प्रतिमा है जिसको महाराज कनिष्क के राज्य-काल के तीसरे वर्ष मे भिक्षुबल ने बौद्ध बिहार मे प्रतिष्ठित कराया था।[2] "बलिष्ठ शरीर, चौडी छाती, गोल भरा हुआ चेहरा, बडी-बडी आँखे, छोटी गर्दन और मुडित मस्तक—ऐसा लगता है कि मथुरा का कोई मल्ल ही सामने आकर खडा हो गया है।" मथुरा सग्रहालय मे भी ऐसी ही एक मूर्ति है, जिसके नीचे 'बोधिसत्व' अकित है। इसमे बोधिसत्व एक चौकी पर बैठे है, जिस पर नीचे की ओर सिह की तीन आकृतियाँ है। मथुरा की कला मे बडे मनोहारी वेदिका-स्तम्भ भी मिलते है, जिन पर यक्षिणियो की विविध भावमयी मुद्राये दिखलाई देती है। कुषाण कालीन मूर्तियो मे भारत कला-भवन की प्रसाधिका मूर्ति भारतीय कला के श्रेष्ठतम नमूनो मे रक्खी जाने योग्य है। इसमे सुगन्धित जल का एक भृङ्गार-पात्र लिये एक स्त्री खडी है। कुषाणकालीन मथुरा मे लोक-जीवन का बहुत सजीव चित्रण हुआ है। बुद्ध, बोधिसत्व की प्रतिमाओ के अतिरिक्त इनमे यक्ष-यक्षिणियो के क्रीडा-दृश्य भी दिखलाई देते है।

ईसा की जिन प्रारम्भिक शताब्दियो मे गधार और मथुरा प्रदेशो मे उपरोक्त शिल्प-शैलियाँ फूल-फल रही थी, उन्ही दिनो दक्षिणापत्य मे एक मूर्ति-शैली का उदय हो रहा था। अमरावती इसका प्रमुख केन्द्र था इसीलिये इसे 'अमरावती की कला' कहा जाता है। यह स्वत मे स्वतन्त्र शैली थी। गधार और मथुरा की कला का इस पर तनिक भी प्रभाव न था। अमरावती, मद्रास के निकट वर्तमान गटूर जिले मे है। इस भू-खड मे द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व मे आध्र नृपतियो का शासन था। आध्र के राजा कला को प्रोत्साहन देना जानते थे। कन्हैरी तथा नासिक के भव्य गुहा गृहो के निर्माण का श्रेय इस वश के शासको को ही प्राप्त है।

---

१ गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ० २५६।

२, कैटलोग आफ मथुरा म्युजियम, डा० फोगेल,—भूमिका पृष्ठ १८।
मूर्ति पर दो लेख अङ्कित है—
(१) भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो (सहा)।
(२) महा क्षत्रपेन खरपल्लानेन महा क्षत्रपेन वनस्परेन।

आंध्र अथवा सातवाहन दक्षिणादत्य का एक अत्यन्त शक्तिशाली राजवश था जिसने द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी तक शासन किया। उनकी राजधानी पश्चिमी भारत का नगर प्रतिष्ठान था जहाँ अब भी उनके स्मारक उपलब्ध होते है। अमरावती उनकी पूर्वी भाग की राजधानी थी। सातवाहनो ने स्तूप के चारो ओर एक वेदिका अथवा वेष्ठिनी बनवाई। यह वेदिका छः सौ फीट की थी और उसकी ऊँचाई चौदह फीट के लगभग थी। वेदिका की रचना के अतिरिक्त उन्होने स्तूप के निचले भाग को सगमर्मर के शिला-फलको की दोहरी पक्ति से ढक दिया। यह कार्य द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व से सन् २५० तक हुआ। वेष्ठिनी तथा शिला-फलको पर भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रसग, जातक, अवदान व राजसभाओ के दृश्य आदि गहरे उभार के साथ बनाये गये है। अमरावती की कला का प्रारम्भिक अश भरहुत के समकालीन है। उसका सबसे सुन्दर, निखरा रूप द्वितीय शताब्दी का है। डा० शिवराम मूर्ति ने अमरावती के शिल्प का निर्माण-काल चार भागो मे विभाजित किया है।

स्तूप के लगभग सोलह हजार वर्ग फुट स्थान को सगमर्मर के शिला-पट्टो से आच्छादित किया गया था, जिस पर अनेक दृश्य, पशु, मानव और विविध प्रकार के शोभायुक्त अलकरण उत्कीर्ण किये गये थे। स्तूप अब भग्न हो चुका है। उसकी श्रेष्ठ-तम प्रतिमाये अंग्रेजो के शासनकाल मे ब्रिटिश सग्रहालय मे भेज दी गई। कुछ मद्रास के राजकीय सग्रहालय मे सरक्षित है।

अमरावती के शिल्प की विशेषता यह है कि वह साची व भरहुत की लोक-कला तथा गुप्तकाल की पूर्ण विकसित कला के बीच की शृङ्खला है। उसमे भक्ति-भावना की वह झलक है जिसने गुप्त-काल मे अध्यात्म-प्रधान शिल्प का रूप ले लिया। आकृतियो मे भाव-भगिमाये आने लगी है, शरीर के परिमाण का ध्यान रखा जाने लगा है, शिल्प मे लालित्य भरने लगा है।

"Never so far was the delicate and voluptuous beauty of human form so richly and luxuriously conceived and never were technical skill and efficiency more adequate for realisation of the conception."

लावण्यमयी नारियो और सुन्दर पुरुषों के चित्रण के अतिरिक्त अमरावती के शिल्पियो ने अत्यन्त सुन्दर कमल, बेले तथा मगल घट भी बनाये है जिनकी शोभा अनूठी है। अमरावती के कर-कमलो से पूर्ण घट का अलकरण कला की एक उत्कृष्ट कृति माना जाता है।

गुप्तकाल भारत का स्वर्णकाल माना जाता है। प्रतापी गुप्त सम्राटो के सरक्षण मे भारतीय मूर्ति-कला, चित्र-कला और वास्तु-कला आदि की समान रूप से

उन्नति हुई। महाराज समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य आदि सम्राटो को रण-विद्या ने मानो वरण किया था किन्तु वे कला और सस्कृति के उन्नायक भी थे। उनके समय मे भारतीय कला का शतदल पद्म खिल गया। दक्षिणापत्य को सम्राट् समुद्र-गुप्त ने अपनी दिग्विजय के समय जीत लिया था किन्तु उन्होने न केवल चेदि प्रान्त व महाराष्ट्र का भाग वाकाटक सम्राट् रुद्रसेन को दे दिया अपितु अपनी कन्या प्रभा-वती को उनके पौत्र के साथ ब्याह् दिया। इस प्रकार गुप्त और वाकाटक एक-दूसरे के निकट सम्बन्धी बन गये। इसीलिये इस युग मे पुष्पित तथा पल्लवित कला को गुप्त-वाकाटक कला का नाम दिया जाता है। इस प्रकरण मे हम केवल प्रस्तर-शिल्प की चर्चा करेगे। गुप्त-कालीन मृण्मूर्तियो के सम्बन्ध मे भी हम पृथक् अध्याय मे लिख रहे है। वास्तुकला और मूर्ति-कला का घनिष्ठ सम्बन्ध है। गुप्त सम्राट् स्वय वैष्णव थे और उनकी उपाधियो ने 'परम भागवत्' शब्द मिलता भी है किन्तु उनका दृष्टि-कोण अत्यन्त उदार था। यही कारण है कि उनके शासनकाल मे जहा अहोले का विष्णु मन्दिर बना वही बौद्धो के अजन्ता और बाघ जैसे कला-मण्डपो की रचना भी हुई। गुप्त नृपतियो ने अशोकीय स्तम्भो की परम्परा को नये स्तम्भ बनवा कर सजीव रखा। गुप्तकालीन स्तम्भो पर अशोक स्तम्भो जैसा ओप नही दिखलाई देता किन्तु उनके स्तम्भ अलकरण की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। उनमे अनेक कोण दिखलाई देते है। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का बनवाया ध्वज-स्तम्भ दिल्ली मे महरौली मे अब तक विद्यमान है। यह एक लौह-स्तम्भ है। गुप्तो के स्तम्भो के शीर्ष-भाग पर बहुधा गरुड की (जो विष्णु का वाहन था) आकृति उत्कीर्ण दिखलाई देती है। गुप्त सम्राटो के शासनकाल मे अनेक स्तूपो, बौद्ध विहारो, गुहा-गृहो और मन्दिरो का निर्माण भी हुआ। इस युग मे ही सारनाथ के प्रसिद्ध धमेख स्तूप पर स्वस्तिक, नालयुक्त कमल तथा विविध अलकरण अङ्कित किये गये। इस प्रस्तराकन के शेष अश अब भी धमेख स्तूप पर दिखलाई देते है। गुप्तकाल मे ही भेलसा के निकट उदयगिरि मे गुहा-गृह का निर्माण हुआ। इसका श्रेय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय को दिया जाता है। अजन्ता तथा बाघ की कुछ गुफाये भी इसी काल मे बनी तथा उनकी भित्तियो पर मनोहारी चित्रो का सृजन हुआ।

गुप्तकाल मे प्रतिमाओ मे नवीनता आ गई। इससे पूर्व के मौर्य, शुङ्ग और कुषाण-शिल्प मे आराध्य के मुख पर सौन्दर्य के साथ चिन्तन की ऐसी झलक नही दिखलाई देती जसी कि गुप्तकालीन प्रतिमाओ मे।

मथुरा की कला का उत्तरोत्तर विकास होता गया। वह दिनो-दिन मजती गई। मथुरा की कुषाण-कालीन मूर्तियो मे जहाँ नाक चपटी और चेहरा कुछ चौडा सा मिलता है, वहाँ गुप्त-शैली की मूर्तियो में नाक नुकीली तथा चेहरे मे कुछ गोलाई दिख-लाई देती है। आराध्य के वस्त्र हल्के और पारदर्शक रहते है। शरीर के अग उनमे

से झलकते है। संघाटी दोनो कधो को ढके हुए लटकती है और उसके छोरो से ही पता चलता है कि आराध्य के शरीर पर वस्त्र भी है। गुप्तकाल की बौद्ध-मूर्तियो की एक विशेष पहचान यह भी है कि उनके सिर के बाल दक्षिण की ओर मुडे रहते है और उष्णीष रहता है।

गुप्त कला के मथुरा और सारनाथ प्रमुख केन्द्र रहे है। इस युग की कला का मथुरा का सर्वोत्कृष्ट नमूना भगयान् बुद्ध की खडी हुई मूर्ति है। श्री राय कृष्णदास ने लिखा है·

"इस मूर्ति के मुख-मडल पर शाति, करुणा और आध्यात्मिक भाव का अपूर्व सम्मिश्रण है, साथ ही एक स्वाभाविक स्मित भी है। भगवान् निष्कप प्रदीप की भॉति खडे है, किन्तु उस ढवन मे कही भी जकडबन्दी नही है। उनके वस्त्र के सलो की रेखाये बडी कला-पूर्ण है।" इस प्रतिमा मे भगवान् के कानो मे लम्बे कुण्डल है। उनके केश दक्षिणावर्तिन है। उनके एक हाथ मे सघाटी का छोर है। दूसरा हाथ अभय मुद्रा मे उठा होगा जो कि भग्न हो गया है। बुद्ध के मुख के पीछे अलकरणयुक्त कमल का विशाल प्रभा-मडल है, जिसके पद्म-कोष को भगवान् का मुख ढके हुए है।

सारनाथ भी गुप्त कला का एक महान् केन्द्र समझा जाता है। भारतीय मूर्ति कला की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा सारनाथ की वह बुद्ध-मूर्ति ही है जिसमे वे धर्म-चक्र मुद्रा मे बैठे है। इस प्रतिमा की श्री हैवल, श्री कुमारस्वामी और श्री ओ. सी. गागुली आदि सभी कला-समीक्षको की मुक्त-कठ से सराहना की है। श्री मदनमोहन नागर ने लिखा है :

"यह मूर्ति शिल्पियो की पराकाष्ठा को प्रकट करती है। बुद्ध द्वारा मृगदाव मे किये धर्म-चक्र प्रवर्तन के मूल मे जो आध्यात्मिक भाव था, उसी को एक सहस्र वर्षों के बाद यहाँ के चतुर शिल्पी इस मूर्ति द्वारा हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने मे सफल हुए। देवादिदेव भगवान् बुद्ध के मुख पर जो प्रशान्त भाव तथा आनन्द की मुद्रा है, उसके कारण यह मूर्ति भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियो मे से एक गिनी जाती है।"

गुप्त-कालीन हिन्दू प्रतिमाओ मे भगवान् विष्णु के दशावतार की मूर्तियाँ बडी सजीव और भव्य है। उदयगिरि की वाराह प्रतिमा तथा देवगढ की विष्णु की शयन मूर्ति भारतीय कला के श्रेष्ठतम नमूनो के बीच रखी जा सकती है। मयूर पर आसीन कुमार कार्तिकेय की गुप्त-कालीन प्रतिमा भारत-कला भवन काशी की निधि है।

गुप्त-साम्राज्य के अन्त के साथ भारतीय कला के पराभव का काल भी प्रारम्भ हो जाता है। पूर्व-मध्य काल (६०० ई० से ९०० ई० तक) के शिल्प पर गुप्तकालीन कला का प्रभाव है किन्तु उत्तर मध्य काल (९०० ई० से १३०० ई० तक) की मूर्तियो मे एक प्रकार की रूढिता और जडता दिखलाई देने लगती है।

पूर्व मध्य-काल के प्रस्तर-शिल्प के प्रमुख कला-मडप एलोरा, एलीफैन्टा, मामल्ल-पुरम् और बादामी आदि है। एलोरा की गुफाओ मे ब्राह्मण (हिन्दू) बौद्ध और जैन सभी धर्मो की शिल्प-कृतियो के दर्शन होते है। वहाँ उत्तर से दक्षिण की ओर सवा मील तक तैंतीस गुफाओ की श्रृङ्खला चलती गई है। एलोरा मे पत्थरो को काटकर कैलाश जैसे विशाल मदिर बनाये गये है, जिन्हे देखकर दर्शक आश्चर्य से चकित रह जाता है। सीता की नहानी, रामेश्वर गुफा तथा रग महल आदि मे पौराणिक कथाओ को प्रस्तराकित किया गया है। इनमे शिव के नृत्य-दृश्य बडे अनूठे है। दो थल, तीन थल और विश्वकर्मा गुफा आदि मे बिहार और चैत्य है जिनमे बुद्ध, ध्यानी बुद्ध और पद्मपाणि व वज्रपाणि बोधिसत्व की बडी बडी प्रतिमाये है। बौद्ध गुफाये संख्या में बारह है और वे छठी शताब्दी से आटवी शताब्दी तक बनी है। जैन गुफाओ में इन्द्र सभा और जगन्नाथ सभा है। इनमे ऐरावत पर बैठे देवराज इन्द्र की मूर्ति शिल्प मे प्रसिद्ध है। एलोरा के मूर्ति-शिल्प में विशाल मूर्तियाँ है, ओजवती भी है किन्तु लावण्य और भाव-व्यजना की दृष्टि से वे गुप्तकाल के शिल्प से हेय है। उन दिनो तत्रयान का प्रभाव था इसलिये उत्तर मध्य-कालीन मूर्ति-शिल्प मे आराध्य के (उनकी विविध क्रियाओ के प्रतीक) रूप अनेक भुजाये है।

एलीफैन्टा अथवा धारापुरी की गुफाये बम्बई के निकट है। इसमे महेश्वर की त्रिमूर्ति, भैरव का उग्र रूप, उमा तथा शिव का विवाह व योगिराज शिव की बडी भव्य मूर्तियाँ है। यह मूर्ति-शिल्प आठवी शताब्दी का है। मामल्लपुरम् या महाबली-पुरम् के विशाल मदिरो को रथ कहा जाता है। इसमे भागीरथ की तपस्या का दृश्य बहुत प्रसिद्ध है।

उत्तर मध्यकाल में कोणार्क, भुवनेश्वर, खजुराहो आदि के मन्दिर बने। इन देवालयो मे असख्य मूर्तियाँ भी बनाई गई। मन्दिर का कोई भाग ऐसा नही छोडा गया जिस पर कला का कोई अभिप्राय या मूर्ति न हो। इसमे बहुत सी अश्लील मूर्तियाँ भी है। उत्तर मध्य-काल की इन मूर्तियो मे भाव-व्यजना की अपेक्षा, शरीर की भगिमाओ मे बल खाती देह की मरोड की ओर अधिक ध्यान रक्खा गया है।

कक्ष का प्रस्तर-शिल्प

विवरण

गन्धार-शिल्प

(१ ली शताब्दी से ३०० ई० तक)

अ १—बोधिसत्व

गन्धार, मस्तक-खण्ड, काला सिलहटी पत्थर, तीसरी शताब्दी, पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) से उपलब्ध।

भारतीय शिल्प की अन्य शैलियो की भाँति गन्धार कला मे भी भगवान् बुद्ध का परिधान योगियो जैसा और बोधिसत्वो की वेष-भूषा तथा आभूषण आदि राजाओ जैसे कोरे गये है। बुद्ध, वह है जिसे साधना से बुद्धत्व की उपलब्धि हो गई है और बोधिसत्व वह, जिसके मन मे बुद्धत्व की कामना का उदय हो चुका है। इस मस्तक-भाग मे बोधिसत्व के सिर पर पगडी है। गन्धार कला मे पुरुषो के सिर पर भाँति-भाँति की पगडियाँ दिखलाई देती हैं। इन पगडियो पर मूर्तियो की झूलती मालाये दिखाई पडती है और शीर्ष-पट्ट भी जो पगडी के फेटो को बिगडने नही देता। इस मूर्ति-खण्ड मे पगडी जूडे के ऊपर बधी है, जैसा कि उस युग मे प्रचलन था। बीच मे एक गाँठ लगी है और उसके ऊपर कोई रत्न लगा है। पगडी का ऊपर का भाग टूट गया है।

गधार शिल्प-शैली पर ग्रीक-कला का अत्यधिक प्रभाव है। सौन्दर्य मे शिल्पी का आदर्श अपोलो है इसीलिये वह बुद्ध और बोधिसत्वो की प्रतिमाओ मे उनके शरीर को मासल तथा बलिष्ठ दिखलाता है तथा मुख को भरा हुआ जैसा कि इस मस्तक-भाग को देखने से स्पष्ट हो जाता है। गन्धार शिल्प-शैली मे बोधिसत्वो की मूर्तियो मे बडी-बडी मूँछे भी दिखलाई जाती है जो इसमे नही है। बोधिसत्व के नेत्र अर्ध-उन्मीलित है, मानो चिन्तन मे लीन हो। यह भारतीय कला का प्रभाव है। ऊँचाई ५ ५ ″

कुषाण-सातवाहन काल का शिल्प

(५० ईसा-पूर्व से ३०० ई० तक)

अ. २—पुरुष

मस्तक भाग, सफेद भुरभुरा पत्थर, कुषाण-सातवाहन काल। यह किसी पुरुष के मस्तक का भग्न भाग है, जिस पर पगडी बधी हुई है। पुरुष के लम्बी मूँछे है। अपनी लाक्षणिक विशेषताओ के कारण यह कुषाण-सातवाहन काल की मूर्ति जान पडती है।

अ. ३—बौना

प्रस्तर मूर्ति, कुषाण-सातवाहन काल। इस मूर्ति मे एक नाटे व मोटे पुरुष को दिखलाया गया है, जिसके गले मे माला है। इस प्रकार की बौनो की आकृतियाँ साँची और भरहुत के शुगकालीन शिल्प मे भी दिखलाई देती है। उनमे वे दोनो हाथो से बडेरियो को साधे हुये दिखाये जाते है। ऊँचाई ७″

अ. ४—नारी-मूर्ति

प्रस्तर, सारनाथ, कुषाण सातवाहन काल। नारी-मूर्ति का भग्न ऊर्ध्व-भाग, स्तन वडे, गले मे हार, दोनो आँखें छोटी-छोटी, पतला माथा। सौष्ठवहीन मुखाकृति। ऊँचाई ५ ६″

गुप्त-कालीन मूर्तियाँ
(३०० ई० से ६०० ई० तक)

अ ५—गज

प्रस्तर, गुप्त काल, खण्डित आकृति, राजघाट से प्राप्त। चारो ओर से कोरकर बनाई गई यह गज-प्रतिमा किसी भवन या देवालय के सुशोभन के अभिप्राय से बनी जान पडती है। गज के पैर तथा सूँड भग्न हो चुके है और ऊपर गर्दन के पास बैठा महावत भी टूट चुका है, केवल उसके पैर शेष बचे है, जिसको वह हाथी की गर्दन मे जकडे हुये झुका हुआ सा बैठा जान पडता है। हाथी बहुत सुडौल है और उसे सजाने की चेष्टा की गई है। उसके ऊपर झूल है और माथे पर दोनो ओर मोतियो की लडियाँ झूल रही है। लम्बाई १४″ ऊँचाई ८½″

अ. ६—भगवान् बुद्ध की चरण-चौकी

भुरभुरा पत्थर, सारनाथ की गुप्त-कालीन शिल्प-कृति, राजघाट से उपलब्ध।

यह तथागत की मूर्ति का अधोभाग है, जिसमे पद्मासन लगाकर बैठे हुये वुद्ध के चरण तथा नीचे की चरण-चौकी दिखलाई देती है। इस चौकी के मध्य मे धर्म-चक्र उत्कीर्ण है तथा उसके दोनो ओर दो सिह उकडूँ बैठे हुये है। ऊँचाई ४ ५″

अ. ७—ऋषि-गण

प्रस्तर, गुप्त-काल, राजघाट से प्राप्त। इस प्रस्तर-खण्ड मे दो ऋषि-मूतिया दिखलाई देती है। सुडौल चेहरा, नोकीली नाक, वेष व केश-विन्यास से यह शिल्प-कृति गुप्त-काल की निश्चित होती है। ऋषि धोती पहने है और उनके कन्धे पर उत्तरीय पडा है। उनके कन्धे पर यज्ञोपवीत है। माथे पर जटा-जूट है, जैसा कि देवगढ के गुप्त-काल के शिल्प मे अहिल्या उद्धार के दृश्य आदि मे दिखलाई देता है। गुप्त-युग की मूर्तियाँ या चित्रो से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-वर्ग उन दिनो धोती और दुपट्टा का व्यवहार करता था। धोती का एक सिरा कमर मे खुरसा रहता था। कही-कही वे वैकक्ष्य भी पहने दिखलाये गये है। दोनो ऋषियो का एक-एक हाथ अभय-मुद्रा मे ऊपर उठा है। उनमे से एक के हाथ मे दण्ड है। ऊँचाई ५″

अ. ८—नारी-मूर्ति

खण्डित, मस्तक-भाग, प्रस्तर, गुप्त-कालीन। केश-विन्यास की दृष्टि से यह मस्तक-भाग अध्ययन के योग्य है। इसमे रमणी के केश-बन्ध मे एक ओर जूडा बँधा है। गले मे हार है। ऊँचाई ८ ५″

अ. ९—नारी-मस्तक

खण्डित, प्रस्तर, गुप्त-कालीन, राजघाट से प्राप्त। लम्बा केशबन्ध, उसके ऊपर मुक्तावलियाँ, मुख पर मन्द स्मित, किसी देवी के सिर का भाग। ऊँचाई ६″

अ. १०—देव-मूर्ति

भुरभुरा पत्थर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। बैठी देवमूर्ति, जिसके एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे मे कलश है। पीछे मकर आकृति है। यह किस देवता की मूर्ति है, यह स्पष्ट नही होता। ऊँचाई ५″

अ. ११—नारी-मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। वृक्ष की डाल को एक स्त्री अपने एक हाथ से थामे हये खडी है, दूसरा कटि पर रक्खा हुआ था जोकि भग्न हो चुका है। मुख-भाग के पीछे

प्रफुल्लित कमल का प्रभा-मण्डल, जिस पर अलकरण है। इस प्रकार का अलकरणयुक्त प्रभा-मण्डल गुप्तकालीन-कला की एक विशेषता है। प्रभा-मण्डल के दोनो ओर ऊपर कमलनाल लिये दो गधर्व उड़ रहे है। जिस समय बुद्ध-माता महामाया देवी अपने पितृ-गृह देवदह से कपिलवस्तु को लौट रही थी, उस समय लुम्बिनी वन मे उनके पुत्र का प्रसव हुआ। उस क्षण वे एक हाथ से शाल-वृक्ष की एक शाखा को पकडे हुये थी। "अधिकारी देवी को लेकर शाल-वन मे प्रविष्ट हुये। वह सुन्दर शाल के नीचे जा उस शाल (साखू) की डाली पकड़ना चाहती थी। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेत की छडी के नोक की भाँति मुडकर देवी के पास आ गई। उसने हाथ फैलाकर शाखा पकड ली। उस समय उसे प्रसव-वेदना प्रारम्भ हुई। (बुद्धचर्या, पृष्ठ ३)" इस मुद्रा का अकन भारतीय शिल्पियो को अत्यन्त प्रिय रहा है। साँची के तोरणो पर भी शाल-भजिकाओ की आकृतियाँ दिखलाई देती है। अपने मूल-रूप मे यह शिल्प-कृति बहुत सुन्दर रही होगी किन्तु यह अत्यधिक भग्न अवस्था मे उपलब्ध हुई है। ऊँचाई १३"

अ. १२—बुद्ध

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। भगवान् बुद्ध सहज भगिमा मे खडे है। उनके वस्त्र इतने झीने है कि शरीर के अग प्रतिभासित हो रहे है। माथे पर जटाओ का मुकुट है। गुप्त-काल की बुद्ध-प्रतिमाओ मे उनके केश दक्षिण की ओर मुडे हुये रहते है और ऊपर जूडा रहता है किन्तु इस मूर्ति के मस्तक पर योगियो जैसा जटा-जूट है। उनकी मुद्रा अत्यन्त शान्त और सौम्य है। वे सहज भगिमा मे खडे है, जिससे मूर्ति और भी लावण्यवती जान पडती है। गले मे यज्ञोपवीत है। ऊँचाई ५ ५"

अ. १३—पुरुष-मूर्ति का मध्य भाग

प्रस्तर, गुप्तकालीन राजघाट से प्राप्त। इस प्रतिमा के चरण, हाथ और मुख सभी भाग भग्न हो चुके है। केवल गले से कटि तक का भाग शेष है। गले मे यज्ञोपवीत तथा कठ मे हार शोभित है। चौडा वक्ष और सिंह सी पतली कटि है। आराध्य के कटि भाग पर झीनी धोती है। मुख, हाथ और उनकी मुद्राओ के भग हो जाने के कारण यह किसकी मूर्ति है, यह स्पष्ट नही होता। ऊँचाई ४ ५"

अ १४—देव-मूर्ति का मुख

खडित मूर्ति, प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। सारा शरीर भग्न है। मुख के अतिरिक्त अन्य कोई भाग शेष नही है फिर भी सजीवता कायम है। मुख पर शाति की भावना है। नेत्र उन्मीलित है। ऊँचाई ४ ५"

अ. १५—नारी-मुख

प्रस्तर, गुप्तकालीन लाक्षणिकताये, राजघाट की खुदाई से प्राप्त। ऊँचाई ६ ५"

अ.० १६—विष्णु योगासन मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन। यह चारो ओर से कोरी हुई मूर्ति नही वरन् किसी शिला-पट्टिका का भाग है। विष्णु एक चौकी पर पद्मासन लगाये बैठे है मानो कोई निष्कम्प प्रदीप हो। उनके चार हाथ है, जिनमे से तीन भग्न हो चुके है। एक हाथ मे चक्र दिखलाई देता है। विष्णु के माथे पर लम्बा मुकुट है जिसमे रत्नालकार जडे है। उनके कठ मे मुक्तावली है तथा कटि मे मोतियो की करधनी है। विष्णु के पीछे मकर-आकृति है। ऊँचाई ८ ३"

अ. १७—रमणी-मस्तक

प्रस्तर, गुप्तकालीन, नारी-मूर्ति के इस मस्तक-भाग मे केश-विन्यास विशेष रूप से दर्शनीय है। बालो मे मोतियो की झूमती हुई मालाये है, जिन्हे 'बल पार्श्व' कहा जाता था। मुख पर गुप्तकाल के शिल्प की लाक्षणिकताये है। ऊचाई ५.५″

अ. १८—नारी-मस्तक

पाषाण, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। सौन्दर्यवती मुखाकृति, ललाट पर तृतीय नेत्र की भाँति शोभित लम्बा तिलक, जूडासहित केश-विन्यास और उसके ऊपर लिपटी मोतियो की मालायें। ऊँचाई ७″

अ. १९—भुजा का बीच का भाग

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से उपलब्ध। इस मूर्ति-खड से भुजा के प्राचीन अलकारो पर प्रकाश पडता है। इसमे भुजा पर केयूर है और रत्नजडित बाजूबन्द 'कटक' है। कलाई पर सुन्दर वलय है। सभी आभूषण बडे कलापूर्ण है। ऊँचाई ५.५″

अ. २०—गन्धर्व

पाषाण, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। इस प्रस्तर-खड मे एक गन्धर्व सनाल कमल पुष्प लिये उडता हुआ दृष्टिगोचर होता है। गुप्त कला मे गन्धर्वो की उडती हुई आकृतियाँ सारनाथ व अजता आदि की सभी शैलियो मे दिखलाई देती है। कभी-कभी गन्धर्व अलकृत प्रभा-मडल के ऊपर दोनो ओर उडते दिखलाये जाते है। ऊँचाई ७.५″

अ. २१—योद्धा-मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। एक हाथ मे धनुष और दूसरे मे दो वाण लिये एक योद्धा किसी आधार या वृक्ष के सहारे खडा है। उसके सिर पर लम्बी टोपी है। ऊँचाई ७.५″

अ. २२—शिखरयुक्त मन्दिर—

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। यह गुप्तकालीन मन्दिर का एक छोटा सा नमूना है। दक्षिणापत्य मे शिखर की द्राविड शैली प्रचलित थी, जिसमे शिखर गोलाकृति का रहता था। नागर शिखर उत्तरापथ के देवालयो मे दिखलाई देता है जिसमे शिखर की बनावट मन्दिर के गर्भ-गृह की छत से प्रारम्भ होती है और शिखा का आकार ले लेती है। यह मन्दिर इसी शैली का नमूना है। इसम बनावट चारो कोनो से शुरू होकर, धीरे-धीरे टेढी होती हुई एक बिन्दु पर आकर मिल जाती है। इस मन्दिर की आकृति मे चारो दिशाओ के द्वारो मे चार आकृतियाँ दिखलाई देती है (१) पुत्र को लिये देवी-मूर्ति, (२) गणेश (३) दण्ड लिये द्वारपाल, (४) आकृति अस्पष्ट है। ऊँचाई १४″

अ २३—चक्र

प्रस्तर, लाल पत्थर, गुप्त-कालीन। चक्र की जो एक प्रतीक भी है, आकृति लम्बाई लिये है। उसमे सोलह धुरे है। ऊँचाई ७″

पूर्व मध्य-कालीन

(६०० ई० से ९०० ई० तक)

अ. २४—पार्वती-मूर्ति

मस्तक भाग, सफेद भुरभुरा पत्थर, सारनाथ, पूर्व मध्यकालीन। यह किसी देवी अथवा राज-महिषी की मूर्ति का भाग है। देवी के सिर पर लम्बा जटा-मुकुट है जिससे यह अनुमान होता है

कि यह देवि पार्वती की प्रतिमा का मस्तक-भाग है। जटा-मुकुट मोती की लडियो से बधा है, जिस के बीच मे रत्न दिखलाई देते है। ऊँचाई ७.६″

अ. २५—भैरव

प्रस्तर, कुछ कालापन लिए हुए, राजस्थान, पूर्व मध्यकालीन। भगवान शिव का उग्र-रूप। सिर के जटा-मुकुट मे कपाल और चन्द्र दिखलाई देता है। शिव के ललाट पर उनका तृतीय नेत्र है। गले मे मालाये तथा कानो मे लम्बे कुण्डल है। तनी हुई भौहे, उठी हुई मूँछे और विस्फारित नेत्र उनके उग्र-रूप का आभास देते है। शिव की त्रिमूर्ति अथवा महेश्वर मूर्ति मे उनका यह रूप मिलता है। भैरव की प्रतिमाएँ भी उपलब्ध होती है। ऊँचाई ९″

अ. २६—देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन। सौम्य मुख पर रत्न-जटित सुन्दर मुकुट शोभित है। गुप्त-कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ऊँचाई ८.४″

अ. २७—देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन। यह देवी मस्तक किसी कोरी हुई मूर्ति का खड नही अपितु किसी शिला-पट्ट का भग्न भाग है। सुन्दर भावमयी मुख-मुद्रा, पतले ओठ, कमल की पखुडी से उन्मीलित नेत्र और कमान सी तनी हुई भौहे बरबस ही ध्यान आकृष्ट करती है। माथे पर कारण्ड मुकुट है, जिसमे रत्न जडे हुए है। ऊँचाई ५.६″

अ. २८—देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन, अलकरणयुक्त कारण्ड मुकुट, और कानो मे कुण्डल। ऊँचाई ५.६″

अ. २९—द्वारपाल

भग्न स्तम्भ का भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य कालीन स्तम्भ के सहारे एक द्वारपाल खडा है। उसके शरीर पर अगरखा और सिर पर पगडी है। उसका एक हाथ कमर पर रक्खा है और दूसरे मे असि है। आकृति अस्पष्ट है। ऊँचाई ८″

उत्तर मध्य कालीन

(९०० ई० से १२०० ई० तक)

अ. ३०—देवी-प्रतिमा

प्रस्तर, उत्तर मध्य-कालीन। यह प्रतिमा भग्न हो चुकी है। हाथ की मुद्राएँ तथा आयुध टूट चुके है अत यह कह सकना कि यह किस देवी की प्रतिमा है, सम्भव नही है। चार भुजाओ मे केवल एक ही हाथ शेष है जिसमे कमल अथवा नीलोत्पल दिखलाई देता है। देवी के माथे पर लम्बा जटा-मुकुट, कानो मे गोल कुण्डल और शृखला है। भुजाओ और हाथो मे केयूर तथा ककण है। गले मे हार है और पीन पयोधरो के मध्य मे झूलती मुक्तावली है। ऊँचाई ८.२″

अ. ३१—उमा-महेश्वर

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। भगवान् शिव देवि उमा के साथ एक आसन पर बैठे है। उनका एक पैर नीचे रक्खा है। शिव की मूर्ति चतुर्मुखी है। उनके दाहिने हाथो मे से एक वरद् मुद्रा मे है और दूसरा त्रिशूल लिए हुए है। महेश्वर बाँये हाथ से उमा का जो उनकी जघा पर बैठी है, आलिगन कर रहे है। शिव तथा उमा रत्नाभूषण धारण किए है।

आसन के नीचे शिव का वाहन नन्दी है और उमा के नीचे उनके वाहन सिंह की अस्पष्ट

आकृति है। मूर्ति के पीछे प्रभा-मण्डल है और उसके दोनो ओर आकाशचारी पुष्प-मालाये लिए उड रहे है। ऊँचाई ८'२"

अ. ३२—उमा-महेश्वर

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। यह उमा-महेश्वर मूर्ति के नीचे का खड है। इसमे शिव की जघा पर पार्वती बैठी है। आसन के नीचे नन्दी और सिह है। एक ओर एक पुरुष रतवन करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। दूसरी ओर नारी-मूर्ति है। उमा के निकट गणेश की छोटी सी आकृति दिखाई देती है। ऊँचाई ८ ५"

अ. ३३—वाराही

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। देवी के तीन मुख है, जिनमे से बीच का मुख नारी का, एक ओर का सिह का और दूसरी ओर का शूकरी का है। देवी के चार हाथ थे, जिनमे से तीन भग्न हो चुके है। एक मे दण्ड दिखलाई दे रहा है। देवी के नीचे उनका वाहन है, जिसका शरीर पशु का और मुख मानव का है। ऊँचाई ९"

अ. ३४—वक्ष-भाग

किसी देव-मूर्ति का खडित वक्ष-स्थल, काला प्रस्तर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। चौडे विशाल वक्ष-स्थल पर चौलडी मोतियो की माला और बीच मे श्री वत्स का चिन्ह है। ऊँचाई ८ १"

अ ३५—बोधिसत्व-मस्तक

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। यह पाल युग की बोधिसत्व की किसी मूर्ति का मस्तक भाग है। इसकी नासिका भग्न हो गई है। देवता के मस्तक पर लम्बा मुकुट है, जिसमे रत्न जडे है। कानो मे पत्र-कुडल है। ऊँचाई ९"

अ. ३६—भूमि-स्पर्श मुद्रा मे बुद्ध

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्य-कालीन। इसमे एक चैत्य मे बुद्ध को बैठे हुए दिखलाया गया है। एक हाथ की उगली से वे भूमि का स्पर्श कर रहे है। ऊचाई ६"

अ ३७—तीर्थंकर-मूर्ति

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। शिला-पट्ट पर ध्यान-मुद्रा मे बैठी २८ तीर्थंकर मूर्तियाँ है। बीच की मूर्ति अपेक्षाकृत बडी है। ऊँचाई ७'९"

अ. ३८—पार्वती

पाषाण, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। पार्वती की चतुर्भुजी प्रतिमा है, जिसकी दो भुजाये टूट गई है। दाहिने हाथो मे से एक मे त्रिशूल और दूसरे मे खप्पर है। देवी सुखासन मे बैठी हुई है। उनके सिर पर मुकुट, गले मे हार और दोनो स्तनो के बीच मे मोतियो की माला झूल रही है। उमा की गोद मे गणपति है। ऊँचाई १७"

अ. ३९—सूर्य

पाषाण, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। यह एक स्तम्भ का भाग है जिसमे एक ओर बेल का अलकरण है और बीच मे तीन पैनल है। ऊपरी भाग मे भगवान् सूर्य देव की मूर्ति है। उनके दोनो हाथो मे प्रफुल्लित पद्म है। नीचे के पैनलो मे उपासको की आकृतियाँ है। ऊँचाई २६"

अ. ४०—जैन-प्रतिमा के खंड

सगमर्मर, पल्लू (राजस्थान) उत्तर मध्य-कालीन। यह पार्श्वनाथ तीर्थंकर मूर्ति के ऊपर तथा नीचे के दो खंड है। नीचे के भाग मे चक्र है जिसके दोनो ओर दो हरिण बैठे हुए है और उनके

ऊपर जैनो का प्रतीक-चिन्ह है। उसके दोनो ओर दो सिह उकडू बैठे है। निचले खड मे दो मूर्तियाँ है। उनमे से एक माता तथा पुत्र की आकृति है और दूसरी दण्ड लिये द्वारपाल की।

ऊपर के खण्ड मे तीर्थंकर पर छाया करने वाला सात फन का नाग-मुख है जिसके दोनो ओर आकाशचारी गन्धर्व हाथ मे नाल सहित कमल लिये उडते दिखलाये गये है। उनके साथ उनकी वीणाधारिणी स्त्रियाँ है। फन के ऊपर आसन पर कोई देवता बैठा शख वादन कर रहा है और दोनो ओर दो गज अभिषेक कर रहे है।

इस शिल्प-कृति की आकृतियाँ बडी सुन्दर है। इस नमूने को आबू के शिल्प के आस-पास के समय का माना जा सकता है। ऊँचाई, ऊपर का खड, १६″ × २३″
नीचे का खड १० २″ × २३ ६″

अ. ४१—देवी-मूर्ति

सगमर्मर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। यह किसी देवी की प्रतिमा है, जो व्याघ्र-चर्म पहने दिखलाई गई है। उनके गले मे मुडो की माला है। ऊँचाई ६″

अ. ४२—शिव

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। सहज भगिमा मे देवातिदेव शिव खडे है। उनके माथे पर लम्बा जटा-मुकुट है और गले मे हार है। उनका एक हाथ भग्न हो चुका है और दूसरे मे वे त्रिशूल धारण किये हुए है। ऊँचाई ६″

अ. ४३—देवी-मूर्ति

प्रस्तर उत्तर मध्य-कालीन। देवी के समस्त हाथ भग्न हो चुके है अत उनके हाथो मे कौन से आयुध थे और यह किस देवी की मूर्ति है, यह कह सकना कठिन है। नीचे दो उपासक है। ऊँचाई ६ ५″

अ. ४४—योद्धा

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। काठ के एक चौखटे मे योद्धाओ की दो शिला-मूर्तियाँ अथवा गहराई देकर कोरे गये अर्ध-चित्र। योद्धाओ का वेष पूर्णत राजस्थानी है, सिर पर पगडी, एक लम्बा जामा और ऊँची कछनीदार धोती। दोनो योद्धाओ के हाथो मे तलवारे और उनका एक हाथ ऊँचा उठा हुआ है। ऊँचाई ८ ५″

अ ४५—वृद्ध राजा

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। वृद्ध राजा, जो वेश-भूषा तथा दाढी-मूँछ आदि से राजस्थान का जान पडता है, अपने लम्बे धनुष के सहारे टिका हुआ कुछ विचार कर रहा है। राजा लम्बा अगरखा पहने है। उसके कानो मे कुण्डल और सिर पर मुकुट है। ऊँचाई ७ ६″

अ. ४६—वृद्ध पुरुष तथा नारी

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। वृद्ध श्रमिक दम्पत्ति, जिनमे बूढा कुछ थका हुआ सा लाठी टेकते हुए चल रहा है और बुढिया के सिर पर टोकरी है। ऊँचाई ५ २½″

इन मूर्तियो के अतिरिक्त लक्ष्मीनारायण, मुस्लिम स्त्री का मस्तक व चतुर्भुजी विष्णु आदि आधुनिक मूर्तियाँ है, जिनका विवरण आवश्यक नही है। गणेश और उमा महेश्वर की मूर्तियाँ अस्पष्ट और अत्यधिक भग्न है।

द्वितीय कक्ष

भारतीय कला

(प्राचीन)

प्रस्तर-शिल्प की कला-बीथिका को पार कर दर्शक एक विशाल 'हॉल' मे प्रवेश करता है जिसे दो पृथक् कक्षो मे विभाजित कर दिया गया है। एक कक्ष मे भारतीय व नेपाली धातु-मूर्तियो को स्थान दिया गया है और दूसरे कक्ष मे मध्यकालीय शस्त्रो को सजा कर रखा गया है। प्रथम कक्ष मे, जिसे 'भारतीय कला'(प्राचीन) का नाम दिया गया है, मुगल शाहन्शाहो के बडे-बडे ताम्र-चित्र भी है।

नेपाल की धातु-मूर्तियो को इस कक्ष मे (वर्गीकरण की दृष्टि से) रखना चाहिए अथवा नही, यह एक प्रश्न था किन्तु कई कारणो से उनको इस कक्ष मे ही स्थान दिया गया है। नेपाल राज-नैतिक दृष्टि से एक स्वतन्त्र देश है किन्तु उसकी कला पर भारतीय-कला का इतना अधिक प्रभाव है कि वह उसके क्षेत्र के अन्तर्गत ही आ जाती है। कुछ प्रतिष्ठित कला-समीक्षको का मत है कि नेपाल की धातु-कला भारतीय-कला की एक शैली-मात्र है। इस कक्ष मे नेपाल तथा दक्षिणापत्य की प्रतिमाओ को साथ-साथ इसलिए भी रखा गया है कि दर्शक उनका तुलनात्मक अध्ययन कर सके। वर्तमान स्थिति मे सग्रहालय भवन मे इतना स्थान भी नही है कि नेपाल की कला के लिये एक पृथक् कक्ष की व्यवस्था की जा सके। सग्रहालय के स्वतन्त्र भवन के निर्माण के पश्चात् वह सम्भव हो सकेगा।

कक्ष की दीवारो पर विशाल ताम्र-चित्र लगे है। कक्ष मे दीवाल से सटी हुई एक बडी शीशे की मूल्यवान अलमारी है जिसमे दो भाग है। उनमे से एक भाग मे दक्षिण भारत व बगाल की तथा दूसरे मे नेपाल की धातु-मूर्तियाँ तथा अन्य कलात्मक वस्तुये रखी है। उनके आगे उनका विवरण भी है। बडी वस्तुओ को पृथक् से चौकियो और आसनो पर रखा गया है। इस कक्ष के एक ओर के शीशे के शो-केसो मे नेपाल के काष्ठ व मृत्तिका-शिल्प, बीदर की कलात्मक वस्तुये आदि है। यह समस्त सग्रह श्री स्वामी केशवानन्द एम पी का ही किया हुआ है और इस पर लगभग पन्द्रह हज़ार रुपये का व्यय हुआ है किन्तु इसकी अधिकाश वस्तुयें अलभ्य हो चुकी हैं अत उनके मल्य का कुछ भी अनुमान नही लगाया जा सकता।

१. भारत की कांस्य-प्रतिमायें व अन्य शिल्प

दक्षिणापत्य अपने गोपुरम्-युक्त विशाल मन्दिरो के लिये जितना प्रख्यात् रहा है, उतना ही अपनी भव्य, भावमयी कास्य-प्रतिमाओ के लिये भी। सत्, चित् और आनन्द के प्रतीक नटराज की चोल-कालीन प्रतिमाये भारतीय कला की मजूषा की वे मणियाँ है जिन पर उसे सदा गर्व रहा है। भारतीय शिल्पी ने नटराज के रूप मे मानो सृष्टि की गति और ताल-बद्धता को ही साकार किया है। 'दीप इव प्रदीपत्' एक दीप की ज्योति से दूसरा दीपक जलता है, परम्परा अपनी पूर्व-परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करती है। दक्षिण की वे कास्य-मूर्तियाँ, जिन्हे देखकर विश्व के कला-पारखी आश्चर्य-चकित रह जाते है, एक गौरवशालिनी परम्परा रखती है। कास्य के कलाकारो ने यह परम्परा गुप्त, वाकाटक, चालुक्य और पल्लवो की प्रस्तर-शिल्प की उन कृतियो से ली हैं जो आज भी दक्षिणापत्य के गगन-चुम्बी मन्दिरो के वास्तु मे परिलक्षित होती है। यो भारत मे कास्य-प्रतिमाओ का प्रारम्भ तो सिन्धु घाटी-सभ्यता के प्राक्-ऐतिहासिक युग मे ही हो चुका था। मोहे जोदडो, चिन्न डोरो और हडप्पा की खुदाई मे जो अवशेष मिले है उनमे नृत्य-कन्या की एक धातु-प्रतिमा भी है।

मोहे जोदडो की यह नृत्यागना जो इस देश के कला के इतिहास की एक मूल्यवान प्रारम्भिक कडी है, नई दिल्ली के नवनिर्मित राष्ट्रीय सग्रहालय की शोभा बढा रही है। गले मे हसली और बाँये हाथ मे कलाई से कधे तक चूडियाँ पहने, यह अनावृत्त नर्तकी अपनी कमर पर एक हाथ रक्खे हुये इस प्रकार खडी है, मानो अभी थिरक उठेगी।[1] प्राक् ऐतिहासिक काल की यह कृति सौन्दर्य और कलात्मकता की दृष्टि से भले ही अधिक सफल कृति न मानी जावे, (शरीर के अनुपात मे हाथ और पैर बहुत बडे जान पडते है) फिर भी उसमे एक लय है, जो दर्शक को आकर्षित करती है—

"The rhythmic swing of the body is realistically portrayed and the modelling of the back and hips is very effective"[2]

सिन्धु-उपत्यका के निवासी सोना, चाँदी, जस्ता और ताँबे आदि धातुओं से भलीभाँति परिचित थे, यद्यपि लोहे की कोई वस्तु अब तक खुदाई मे उपलब्ध नही हुई है। उपलब्ध वस्तुओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन दिनों ताँबे का उपयोग सर्वाधिक था। उसकी न केवल दैनिक उपयोग की वस्तुये बनती थीं वरन् शस्त्र और आभूषणादि भी तैयार किये जाते थे। मोहे जोदडो मे ताँबे की वृषभ व मनुष्य की आकृतियाँ भी प्राप्त हुई है।[3]

---

१. ए गाइड टू दी गैलरीज आफ दी नेशनल म्युजियम आफ इण्डिया, प्लेट १४

२ एक्जबीशन आफ दी एशियाटिक आर्ट एण्ड आरक्योलौजी पृष्ठ २३.

३. आइक्न्स इन ब्रोन्ज, थापर, प्लेट २.

आज हमे मौर्य और शुग-काल (३०० ई० पूर्व से १०१ ईसा-पूर्व तक) की कोई प्रतिमा उपलब्ध नही होती किन्तु इसके अर्थ यह नही कि परम्परा की धारा इतिहास के अधकार युगो मे सूख गई थी। महाकाव्य इस बात की साक्षी देते है कि मोहे जोदडो के काल (२५०० ई० पूर्व) से ईसा की सदी के प्रारम्भ होने तक धातु-मूर्तियाँ बनती ही रही है। महाभारत मे अधे सम्राट् धृतराष्ट्र ने छल-वश भीम का आलिगन कर उन्हे दबाकर मार डालने की दुरभिसन्धि की थी किन्तु उनकी इस योजना को विफल बना देने के लिये भीम की एक मनुष्याकार, सादृश्ययुक्त धातु-प्रतिमा अथवा लोह-मूर्ति बनाई गई थी।

रामायण मे श्री रामचन्द्र ने यज्ञ के समय, उसे विधिवत् पूर्ण करने के लिये अपनी सहधर्मिणी सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनवाई थी। इतिहासकार महाभारत का समय ८०० ईसा-पूर्व तथा रामायण का रचनाकाल ३०० ईसा-पूर्व मानते है। इससे स्पष्ट है कि उन दिनो स्वर्ण-प्रतिमाओ का प्रचलन था। स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र-मूर्तियो की परम्परा चल रही थी। प्रथम शताब्दी से हमे कास्य-प्रतिमाओ की उपलब्धि होने लगती है। इनमे अमरावती की कास्य-मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय है। डा० सी० शिवराम मूर्ति ने लिखा है, "प्रारम्भिक धातु की मूर्तियो मे कृष्ण-उपत्यका की अमरावती की बुद्ध-प्रतिमाये है। अमरावती मथुरा की भाँति ही एक महान् केन्द्र था। उसकी धातु-प्रतिमाये, जो वहाँ के प्रस्तर-शिल्प से अत्यधिक सादृश्य रखती थी, सीलोन, मलाया, जावा और बोर्नियो भेजी जाती थीं।"

चतुर्थ शताब्दी के मध्यान्ह मे परम प्रतापी गुप्त-सम्राट् समुद्र गुप्त के राज्य-काल मे बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा ढाली गई थी, जिसमे रत्नो का जडाव किया गया था।[1] पाँचवी शताब्दी मे चीन के महापर्यटक फाहियान ने खोतन मे गोमती महा-विहार और अन्य सघारामो की बुद्ध-प्रतिमाओ की उत्सव-यात्रा देखी थी, जो लगातार चौदह दिवस तक चलती रही थी।[2] सम्भव है कि यह धातु-मूर्तियाँ ही हो। सातवी शताब्दी मे ह्यूआन् चुआङ् ने ऐसी ही उत्सव-यात्रा कान्यकुब्ज मे देखी थी जिसमे भगवान् बुद्ध की तीन फुट ऊँची प्रतिमा को, जो सोने की बनी थी, सवारी के रूप मे रेशमी वस्त्रो और मूल्यवान् रत्न-आभूषणो से सजाकर निकाला गया था। उसके ऊपर छत्र ताने हुए हर्षवर्द्धन स्वय चल रहे थे। ह्यूआन् चुआङ् ने अपनी भारत-यात्रा मे कई विशाल धातु-मूर्तियाँ देखी थी। उन्होने वाराणसी नगरी मे महेश्वर देव (महादेव) की ताँबे की एक ऐसी प्रतिमा देखी थी जो सौ फुट से कुछ ही कम ऊँची थी। उन्होने लिखा है, "इस प्रतिमा का स्वरूप गम्भीर और प्रभावशाली है और यह सजीव सी विदित होती है।"[3]

१, हैण्डीक्राफ्टस एण्ड इडस्ट्रियल आर्ट आफ इडिया, पृष्ठ ४।

२ दी ट्रेवल ऑफ फाहियान, एच ए गाइल्स, पृष्ठ ५६।

३ हुएनत्साग का भ्रमण-वृत्तात, पृष्ठ ३२०।

जिस समय चीन के उन विद्वान् श्रमण ने भारत से चिर-विदा ली, उस समय वे अपने साथ सूत्र और शास्त्र-ग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ स्वर्ण और रजत की प्रतिमाये भी ले गये। उनके शिष्य हुइली ने अपने आचार्य के जीवन-चरित्र मे निम्नलिखित मूर्तियो का उल्लेख किया है—"प्राग्बोधिगिरि की नागगुफा की बुद्ध भगवान् की छाया से सादृश्य रखती सोने की मूर्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा मे, सोने के सिहासन सहित ३ फुट ३ इच ऊँची।

मगध के गृध्रकूट गिरि पर सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र को उपदेश करने की मुद्रा वाली, भगवान बुद्ध की चाँदी की मूर्ति, अत्यत चमकीले सिहासन सहित, ४ फुट ऊँची।"

गुप्तकाल की इनी-गिनी धातु प्रतिमाये मिली है जिन पर उस युग के प्रस्तर-शिल्प का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। भगवान् बुद्ध की एक विशाल मूर्ति, जिसकी ऊँचाई साढे सात फीट और वजन एक टन से भी अधिक है, भागलपुर (बिहार) के सुलतानगज नामक स्थान से मिली थी। यह वही स्थान है जहा पाल वंशीय नृपतियो की सहायता से विक्रम शिला का महान् ज्ञान-केन्द्र फूला-फला था। इस मूर्ति मे आराध्य का एक हाथ अभय-मुद्रा मे ऊपर उठा है और दूसरे हाथ से वे उस सघाती का छोर पकडे है जिससे उनके शरीर का ऊपरी भाग ढका हुआ है। सघाती पारदर्शी है और उसमे से उनके शरीराग, वक्ष, स्कध, नाभि और कटि-भाग झलक रहा है। उनके नेत्र अधमुदे है और कानो मे लम्बे कुण्डल है। इस धातु-प्रतिमा पर मथुरा की यश दिन्न की गुप्तकालीन प्रस्तर-मूर्ति का प्रभाव है। यह विशाल प्रतिमा बिरमिङ्हम सग्रहालय मे है। गुप्तकाल की दूसरी भव्य प्रतिमा ब्रह्मा की है। यह कास्य-मूर्ति मीरपुर खास से उपलब्ध हुई थी और अब कराची के सग्रहालय मे सुरक्षित है।

भारतीय कला के इतिहास का अध्येता सातवी शताब्दी के लगभग भारत के कई भू-खडो मे उत्कृष्ट धातु-मूर्तियों को निर्मित होते हुए देखता है। गुप्तकाल की अथवा उत्तर-गुप्तकाल की धातु-प्रतिमाये इनी-गिनी ही है किन्तु मध्य काल के प्रारम्भ मे धातु अथवा कास्य-प्रतिमाओ का प्रचलन बढा। देश के विभिन्न भागो मे अलग-अलग शिल्प-शैलियो मे अनेक प्रतिमाओं का सृजन हुआ। बिहार में नालंदा और कुर्किहार इस कला के महान् केन्द्र बने जिनके शिल्प की चर्चा हम इस लेख मे ही कर रहे है। महाराज धर्मपाल और देवपाल के राज्य-काल मे धीमान और बित्पाल नामक शिल्पी पिता-पुत्र रहते थे, जिनके लिये तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने लिखा है कि "उनकी मूर्तियाँ नागो की कला-कृतियो के समकक्ष है।" तेरहवी सदी तक यह धारा बहती रही किन्तु उन्ही दिनों मुहम्मद-बिन बख्तियार खिलजी के आक्रमण के कारण यह धारा सूख गई। इन शताब्दियो मे न केवल बिहार अथवा बगाल मे—अपितु गुजरात, राजस्थान, दक्षिणापत्य व नेपाल मे भी श्रेष्ठ धातु-प्रतिमाये बनी। दक्षिण भारत मे चोलराजाओ से पहले की भी कुछ धातु-मूर्तियाँ मिलती है किन्तु

इस शिल्प का पूर्ण-विकास उन्ही के शासन-काल मे दृष्टिगोचर होता है । नटराज की परिकल्पना को मूर्तरूप देने का श्रेय भी चोलयुगीन शिल्पियो को ही प्राप्त है ।

कास्य और धातु-प्रतिमाओ मे अधिकाश 'उत्सव-मूर्तियाँ' है । कुछ मूर्तियाँ आकार मे बहुत विशाल बनाई जाती है । उनकी देवालय मे एक स्थान पर ही प्रतिष्ठा कर दी जाती है । यह अधिकतर पाषाण की रहती है । इन्हे 'अचल' मूर्तियाँ कहते है ।

मध्यम-आकार की, पाषाण की, धातु की अथवा काष्ठ की वे मूर्तियाँ 'चलाचल' कही जाती है, जिनको कठिनाई से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है । 'चल' मूर्तियाँ धातु की बनी होती है और उन्हे सरलतापूर्वक उत्सव यात्राओ मे रथ आदि पर रखकर ले जाया जाता है । उस समय उन्हे 'उत्सव-देवगण' भी कहते है । कुछ छोटी-छोटी मूर्तियाँ जिनकी देवालयो या मठो मे पूजा की जाती है, "कौतुक मूर्तियाँ" कही जाती है । धातु या कास्य की प्रतिमाओ मे पीठिका पर दोनो ओर कडे लगे रहते है । 'उत्सव-यात्रा' या सवारी के समय उन्ही कडो मे रस्सी डालकर मूर्ति को जकड दिया जाता है ताकि वह हिले अथवा गिरे नही ।

जैसा कि हम कह चुके है, यह मूर्तियाँ ताँबे की अथवा पीतल की बनाई जाती थी । कुछ मूर्तियो मे कई धातुओ की मिलावट मिलती है । इन्हे 'पच लौह' और 'अष्ट-धातु' की मूर्तियाँ कहते है । इनका अधिकाश भाग पीतल, ताँबे और रागे का रहता था और अल्प मात्रा मे चाँदी और सोना भी मिलाया जाता था ।

दक्षिणापत्य की धातु-मूर्तियाँ अथवा पीतल-मूर्तियाँ ठोस ढलाई मे तैयार की गई है । इनको तैयार करने का एक विशेष तकनीक था, जिसे विदेशी कला-समीक्षको ने 'लौस्ट वैक्स सिस्टम' कहा है । मूर्ति को ढालने से पहले शिल्पी मोम की एक आकृति तैयार कर लेता था । स्थपति आराध्य की जो मुद्राये, आयुध अथवा वाहन काँस्य-मूर्ति मे ढालना चाहता, उन सबका पीले रग के मोम की इस मूर्ति मे ही समावेश कर लेता । फिर मिट्टी मे कुटे हुए भूसे आदि को मिलाकर एक पतला पलस्तर तैयार किया जाता और उसे मूर्ति पर चढाकर सुखाने के लिये छाया मे रख दिया जाता । मूर्ति के ऊपरी तथा नीचे के भाग मे नलियाँ लगा दी जाती और मोम की मूर्ति पर पलस्तर लगाते समय उनके मुख को छोड दिया जाता । मूर्ति पर दो पलस्तर और चढाये जाते और जब वह पलस्तर काफी मोटा हो जाता तब शिल्पी ऊपर की नली से पिघली हुई धातु को डालता । पलस्तर एकदम टूट न जाये, इसलिये वह उस पर ताँबे या पीतल का तार भी लपेट देता । स्थपति मोम की मूर्ति को तोल लेता था और फिर उसी अनुपात मे धातु डालता था । यदि उसे पीतल या ताबे की मूर्ति ढालनी होती तो वह मोम की दस गुनी धातु डालता, यदि चादी की तो बारह गुनी और सोने की सोलह गुनी । रसायनिक विधि से तैयार की हुई गर्म धातु जब मूर्ति के ऊपरी भाग की नली मे से अन्दर प्रवेश करती तो उसकी गर्मी से मोम पिघल जाता

और नीचे की नली के द्वारा बाहर निकलने लगता। उसका स्थान धातु ले लेती। इस प्रकार ढलाई मे मूर्ति तैयार हो जाती। ऊपर का पलस्तर चटक जाता। उसे अलग कर दिया जाता। शास्त्रकारो ने स्थपतिओ को पोली मूर्तियाँ बनाने का निषेध किया था। मूर्ति के अलग-अलग अगो को ढालकर उन्हे बाद मे जोडना भी अच्छा नही समझा जाता था।

नागपत्तन अथवा नागपट्टनम् से उपलब्ध २६४ कास्य-प्रतिमाओ की विशाल राशि ने भारतीय कास्य-प्रतिमाओ के इतिहास मे एक नया महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड दिया है। नागपट्टनम् दक्षिण-भारत मे पूर्वीय सागर तट पर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था जहाँ से जावा, सुमात्रा आदि द्वीपो से व्यापारिक सम्बन्ध चलते थे। यहाँ से इन द्वीपो जो भारतीय वस्त्र, मोती व हाथीदाँत आदि वस्तुये जाया करती थी। मानसोल्लास नामक प्राचीन ग्रन्थ मे नागपट्टनम् के बन्दरगाह का भी उल्लेख किया गया है।[1] नागपत्तम आठवी शताब्दी से पन्द्रहवी शताब्दी तक बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा। चोल राजाओ का प्रभाव दूर-दूर तक फैला था। उनके जावा के शैलेन्द्र नृपतियो से भी सम्बन्ध थे। जावा और सुमात्रा के अनेक व्यापारी नागपत्तन मे निवास करने लगे थे। राजेन्द्र चोल ने नागपट्टनम् मे दो बौद्ध विहारो की रचना कराई थी जिनमे दूरागत् बौद्ध श्रमण ठहरा करते थे। यह महा विहार पन्द्रहवी सदी तक विद्यमान थे। नागपत्तन से उपलब्ध महायान के आराध्यो की धातु-प्रतिमाये दक्षिण-भारत और इडोनेशिया के सास्कृतिक सम्बन्धो पर भी प्रकाश डालती हैं क्योकि इस शैली का स्पष्ट प्रभाव इडोनेशिया की समकालीन प्रतिमाओ पर परिलक्षित होता है।[2] चोल राजाओ के सम्बन्ध मे राहुल जी ने लिखा है .

"आठवी शताब्दी के अन्त मे पल्लवो का ध्वस करके दक्षिण-भारत मे चोल-वश अपनी शक्ति बढाता है। परान्तक प्रथम ९०७ ई० मे अपनी विजय-यात्रा आरम्भ करता है और महान् राजराज (९८५-१०१४ ई०) सारे दक्षिण को अपने आधीन कर लेता है। उसका पुत्र राजेन्द्र चोल (१०१४-४४) तो बगाल तक अपनी राज्य-सीमा बढ़ाता है। चोलो का सामूहिक बल भी स्थल के समान ही विशाल था। उस समय लका (सिहल द्वीप) उनकी दया पर निर्भर करता था। बगाल की खाड़ी को वे चोल-सरोवर बनाना चाहते थे और उनकी नौका-वाहिनी बर्मा, मलाया और सुमात्रा तक धावा बोलती थी। चोल राजराज ने नागपट्टन मे शैलेन्द्र राज मारविजयोत्तुग वर्मा के बनवाये चूडामणि विहार के लिये १००५ ई० मे अनय मगल नामक ग्राम प्रदान किया था, जिसे उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल ने भी पुन. स्वीकृत किया।"[3]

---

१ मानसोल्लास २,६, १७-२०, सार्थवाह पृष्ठ २१४।

२ एक्जवीशन आफ एशियाटिक आर्ट एण्ड आरक्योलौजी, ४७, पृष्ठ ३८।

३. बौद्ध संस्कृति, श्री राहुल साकृत्यायन पृष्ठ ९५।

नागपट्टनम् की इन प्रतिमाओ मे बुद्ध, मैत्रेय, अवलोकितेश्वर, मजुश्री, चतुर्भुजी लोकेश्वर तथा तारा आदि है। इन प्रतिमाओ मे सबसे प्राचीन धातु-मूर्ति बुद्ध की है जिसमे उनका एक हाथ अभय और दूसरा वरद मुद्रा मे है। इस खडी हुई प्रतिमा मे बुद्ध की सुलतानगज की ७ वी शताब्दी की भाँति ही भगवान् का सारा शरीर सघाती से ढका है, जिसमे शरीराग दिखलाई देते है।[1] दोनो प्रतिमाओ को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नागपट्टनम् की बुद्ध मूर्ति पर सुलतानगज की गुप्त-कालीन प्रतिमा का काफी प्रभाव है। सौन्दर्य और कला के स्तर की दृष्टि से यह मूर्ति अधिक सफल नही कही जा सकती। बाद की चोल-कालीन मूर्तियाँ अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है। यह सग्रह मद्रास के म्युजियम मे सुरक्षित है।

नटराज की कास्य-प्रतिमा के रूप मे चोल-युगीन शिल्पियो ने मानो सृष्टि की गतिमयता को ही साकार किया है। श्री राय कृष्णदास ने लिखा है :

"जीवन की इस स्फूर्ति को दक्षिण ने, कला में भी अनूदित किया। उनकी नटराज-प्रतिमा इस जागृति का मूर्त-रूप है। इस ब्रह्माड की सृति मे एक नृत्य विद्य-मान है। इस सृति, गति मे जहा देखिये लय और ताल चल रहे है। जिस क्षरण उस लय-ताल मे बाल-भर का भी अतर पडता है, प्रलय हो जाता है। नटराज मूर्ति पर-मात्मा के इस नृत्यमय विराट् स्वरूप का प्रतिबिम्ब है।"

शिव का नृत्य भारतीय तक्षको के अकन का एक प्रिय विषय रहा है। शिव नृत्य के आराध्य देवता है। चिदम्बर के विशाल नटराज मन्दिर के गोपुरम् में उनके एक सौ आठ प्रकार के नृत्यो को आका गया है। शिल्पशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों मे शिव के आनन्द ताण्डव, सहार ताण्डव, त्रिपुर ताण्डव आदि नृत्यो का उल्लेख हुआ है। एलोरा की पूर्व मध्य-कालीन गुफाओ मे शिव के कटिसम और ललित नृत्य को दर्शक तन्मय होकर देखता ही रह जाता है। इन दोनो नृत्यो के सम्बन्ध मे मैने अपनी पुस्तक 'नटराज' मे लिखा है—

"कटिसम मे नर्तक के दोनो चरण समान रूप से झुके, दोनो हाथ वक्ष व नाभि के निकट रहते है। मुख दाहिनी ओर झुका रहता है। एलोरा की इस शिल्प-प्रतिमा मे शिव के आठ भुजाये है। उनमे से एक मे डमरू है। दूसरा नाभि के निकट है। तीसरा परिधान से ढका हुआ वक्ष के पास है और चौथा कटि पर टिका हुआ है। एक ऊपर उठा है और शेष हाथ भग्न है। शिव के मुख पर उल्लास और अधरों पर मुस्कान है। गले मे रत्नजडित हार झूल रहा है। उनके निकट ही उमा स्कद को गोद मे लिये खडी है। पार्षदो मे से एक वशी बजा रहा है और दूसरा मृदग। दो स्त्रियाँ भी वाद्य लिये है। एलोरा की प्रतिमाये इतनी प्राणमयी है कि दर्शक उन्हे ठगा-सा

१ आइकन्स इन ब्रोन्ज, श्री डी० आर० थापर, प्लेट २४ बी।

२ वही, प्लेट ३५, सी, मैत्रेय (नागपट्टनम्) चोल पीरियड।

देखता रह जाता है। साथ ही वे इतनी विशाल भी है कि मन पर अपनी भव्यता की गहरी छाप डालती है।"

शिव का वह नृत्य, जो उनकी नटराज प्रतिमा मे प्रदर्शित है, 'नादन्त' कहा गया है। नाद से ही सृष्टि का सृजन माना गया है। शिव के एक हाथ मे नाद का प्रतीक डमरू है। नटराज के बॉये हाथो मे से ऊपर के हाथ मे अग्नि की ज्वाला दिखलाई जाती है। शिव सहार कर्त्ता है। वे सृष्टि के कण-कण को विनष्ट करते है और फिर नया प्रभात, नई चेतना और नई प्राणमयता लेकर उगाते है। यो वे नित्य अपने साधक के हृदय की मलिनता को भस्म करते रहते है। तीसरा हाथ अभय मुद्रा मे ऊपर उठा रहता है। चौथा हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा मे एक ओर झुका हुआ, उस बौने अथवा राक्षस को सकेत करता दिखलाई देता है जो उनके एक चरण के नीचे दबा पडा है।

शिव के इस नृत्य के सम्बन्ध मे दक्षिण मे एक पुराण-कथा प्रचलित है। एक बार वन मे कुछ ऋषिगण निवास करते थे। वे बडे दम्भी थे और उन्हे अपने तप पर बडा अभिमान था। उनका दर्प चूर्ण करने के लिये शिव विष्णु के साथ वहाँ गये। विष्णु ने लावण्यमयी मोहिनी का रूप धारण कर लिया। मोहिनी के रूप को देखकर ऋषियो के मन मे विकार उत्पन्न हो गया और नारी-प्रलोभन के कारण आपस मे लडने-झगडने लगे। कुछ समय पश्चात् जब सारी स्थिति उनकी समझ मे आई तब वे शिव पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होने अपने मत्रो की शक्ति से एक सिह उत्पन्न किया। वह सिह बडी फुर्ती से शिव की ओर झपटा। शिव ने उसका वक्ष अपनी उगली से विदीर्ण कर दिया और उसका चर्म रेशमी वस्त्र की भॉति अपने गले मे लपेट लिया। शिव नृत्य करने लगे। ऋषियो ने फिर आहुतियाँ पढी और अपनी मत्र-शक्ति से यज्ञ मे से सर्प उत्पन्न किये, जिन्हे भगवान् शिव ने पुष्प माला की भॉति अपने कठ और भुजाओ मे लपेट लिया और नृत्य मे लीन हो गये। क्रुद्ध ऋषियो ने पुन: उन्ही आहुतियो की आवृत्ति की। इस बार एक राक्षस का उद्भव हुआ, जो कि बौने के आकार का था। वह मुयालक अथवा अपस्मार राक्षस भगवान् पाशुपत की ओर झपटा किन्तु शिव ने उसे अपने चरण के नीचे डाल लिया और वे और भी वेग से नृत्य करने लगे।

शिव के इस नृत्य को देखने के लिये अगणित देवगण एकत्रित हो गये। उन्होने शिव से यह प्रार्थना की कि वे एक बार फिर इस नृत्य की आवृत्ति करे। तिल्लई के स्वर्ण-खचित सभा-मडप में शिव का नृत्य हुआ। तिल्लई दक्षिणापत्य का प्रमुख धार्मिक केन्द्र चिदम्बरम् है। चिदम्बरम् मे नटराज का सुप्रसिद्ध मदिर है जिसके सभा-गृह मे, चोल-राजाओ ने, जिनके आराध्य नटराज थे, सोना मढवा दिया।

नटराज की मूर्तियो मे वह अविद्या का प्रतीक अपस्मार पुरुष उनके चरणो के नीचे पडा हुआ दिखलाया गया है। नटराज के मुकुट में गगा, चन्द्र तथा सर्प दिखलाया

जाता है। उनकी जटाये लहराती हुई सी रहती है, जिनमे सर्प मुह उठाये दिखलाई देते है। शिव के एक कान मे नारी-कुण्डल और दूसरे मे पुरुष-कुण्डल रहता है जो उनके अर्द्ध-नारीश्वर स्वरूप का प्रतीक है। भगवान् शिव को एक प्रभा-मडल घेरे रहता है जिसमे अग्नि की ज्वालाये दिखलाई देती है। दक्षिणापत्य मे नवी शताब्दी से नटराज की कास्य-प्रतिमाये ढलाई के साथ बनाई जाती रही है। उनकी यह परम्परा अब भी चल रही है। नटराज की सभी प्रतिमाओ मे प्रतीक तथा लक्षणो का साम्य रहता है किन्तु कुशल कला-पारखी यह पहचान लेते है कि यह किस युग की कास्य-प्रतिमा है।

नवी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक की अर्थात् चोल राजाओ के शासन-काल की नटराज प्रतिमाओ मे जो गति और ओज प्रदर्शित है वह बाद की प्रतिमाओ मे परिलक्षित नही होता। नटराज की अब तक प्राप्त हुई प्रतिमाओ मे मद्रास सग्रहालय की वह मूर्ति सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है, जिसका चित्र डा० आनन्द के० कुमारस्वामी ने अपने लेख 'डान्स आफ शिव' मे प्रकाशित कराया था। भारत सरकार के सास्कृतिक टिकटो मे छपकर यह कास्य-मूर्ति सामान्य जनता की दृष्टि मे आ गई। चोल स्थपतियो की कला इस कास्य-मूर्ति मे अपने चरम-विन्दु पर पहुँच गई है। इतनी ओजस्विनी प्रतिमा, जिसके अग-प्रत्यग से नृत्य का वेग प्रकट हो रहा हो, दूसरी नही मिलती।

नटराज की चोल-कालीन प्रतिमाओ मे तिरुवरगलु से उपलब्ध दसवी शताब्दी की वह कास्य-मूर्ति जो राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली मे सुरक्षित है, एक उत्कृष्ट नमूना मानी जाती है। यह मूर्ति मद्रास सग्रहालय की प्रतिमा से तनिक सी भिन्न है। इसमे शिव का एक चरण अपस्मार पुरुष पर रक्खा हुआ है और दूसरा भी उस पर टिका है। ज्योतियुक्त प्रभा-मडल भग्न हो गया है। कोलम्बो (श्री लका) के सग्रहालय की नटराज प्रतिमा की डा० आनन्द के० कुमारस्वामी ने बडी सराहना की है। एमस्टरडम (हालैण्ड) बैन्कॉक, पेरिस, बोस्टन, ब्रुकलेन सग्रहालय और साउथ कैंसिगटन आदि विदेशी सग्रहालयो मे नटराज की अनेक ओजवती, भव्य प्रतिमाये है जो एक ही प्रतीकात्मक भावना को व्यक्त करती है।

चोल-कालीन शिल्पियो ने नटराज के अतिरिक्त अन्य देवगण की भी बडी प्राणवान कास्य-मूर्तियाँ तैयार की है। इनमे शिव के अनेक रूप तथा देवि उमा आदि है। उमा की ग्यारहवी शताब्दी की एक अतीव सुन्दर मूर्ति का चित्र श्री कार्ल खडावाला ने अपने लेख 'सम मैटल इमेजेज' में 'मार्ग' मे प्रकाशित कराया है। श्री दयाराम थापर ने अपनी पुस्तक 'आइकन्स इन ब्रोन्ज' मे चोल कालीन नटराज, पार्वती, चन्द्रेश्वर शिव आदि सुन्दरतम कास्य-प्रतिमाओ के चित्र दिये है। तजोर और मदुराई, कास्य-प्रतिमा गढने वाले स्थपतियो के प्रमुख केन्द्र रहे है। उनकी गढी हुई श्रेष्ठ प्रतिमाये आज देश और विदेश के अनेक सग्रहालयो की श्री-वृद्धि कर रही है। नवी शताब्दी से बारहवी

शताब्दी तक चोलकाल की मूर्तियाँ बनी और फिर विजयनगर शैली की कास्य-प्रतिमाये बनने लगी। विजयनगर शैली की मूर्तियाँ, सौन्दर्य व अलकारिकता आदि की दृष्टि से किसी प्रकार हेय नही है फिर भी वे चोल-प्रतिमाओ के आगे नही ठहरती।

दीपयुक्त कलात्मक नारी-मूर्तियाँ दक्षिणापत्य की कास्य-कला की एक विशेषता है। जिस समय कोई राजा विजयी होकर लौटता था अथवा कोई व्यवसायी विदेशो से धन-उपार्जन करके वापस लौटता था, उस समय वह अपनी सफलता का श्रेय कुल-देवता अथवा आराध्य की अनुकम्पा को देता था और उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए सुन्दर, कलामयी मूर्तियाँ अथवा दीपाधार रख देता था। यह दीपाधार सारी रात मदिर का मडप आलोकित करते रहते थे और उन पर घृत का जो व्यय होता था, उसे दान-दाता ही देता था। दीपाधारो मे बहुधा एक नारी-मूर्ति अपने दोनो हाथो मे दीपक लिए भक्ति मे डूबी हुई, एक ऊँची पाद-पीठिका पर दिखलाई देती थी। इस प्रकार की मूर्तियो को डा० कुमारस्वामी, अर्द्धेन्दुकुमार गागुली तथा श्री चिन्तामणि कर आदि कला-समीक्षको ने 'दीप लक्ष्मी' का नाम दिया है। श्री गागुली महोदय ने लिखा है :

"Of all the forms met with in South India few are perhaps so interesting and characteristically South Indian as those conceived in the forms of human statues carrying in their hands the cup which serves as the receptacle for the oil for burning of the wick. This type of lamp occurs very frequently, and with some variations as profusely strewn over almost all the temples in South India The statue holding the wick is generally a female figure and is technically known as 'Deep Lakshmi' ".

चोल कालीन दीप लक्ष्मियो की प्रतिमाये बडी कलात्मक तथा भावयुक्त मिलती है।[1] उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर राजस्थान, गुजरात तथा बगाल के मूर्तिकारों ने भी दीप-लक्ष्मियो की प्रतिमाये ढाली। राजस्थान की १७ वी शताब्दी की दीप-लक्ष्मी की एक पीतल की मूर्ति का चित्र श्री कार्ल खडावाला ने प्रकाशित कराया है जिसमे एक नारी मूर्ति, जिसका घुमावदार लहगा राजस्थानी वेष-भूषा का सूचक है, सिर पर दूध का लोटा लिए खडी है। उसके हाथ में दीपक है।[2]

बम्बई के प्रिस आफ वेल्स म्युजियम मे भी लगभग अठारहवी शताब्दी की गुजरात की दीपलक्ष्मी की एक पीतल की मूर्ति है जिसमे एक नारी अपने दोनो हाथो मे एक बडा दीपक लिए खडी है।[3] सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की दीप लक्ष्मी की

१ जनरल आफ इडियन आर्ट एण्ड इडस्ट्री, हैण्डी क्राफ्ट्स आफ इडिया प्लेट ६-७

२. 'सम मैटल इमेजेज, मार्ग (वोल्यूम १, न० ३) पृष्ठ ६६

३ दी आर्ट आफ इडिया, स्टैला क्रैमरिश, फिगर २७, पृष्ठ २२८

ऐसी ही पीतल की मूर्ति गुजरात के अनहिलवाडा नामक स्थान से उपलब्ध हुई थी जो कि अब बडौदा सग्रहालय मे सुरक्षित है।[1] इन दीप-लक्ष्मियो की उपलब्धि से यह निश्चय हो जाता है कि राजस्थान, गुजरात अथवा पश्चिमी-भारत के शिल्पियो ने भी इस प्रकार की प्रतिमाये बनाई है। सौन्दर्य, भावना-शीलता अथवा कला की उत्कृष्टता के स्तर की दृष्टि से वे चोल-मूर्तियो के आगे नही ठहरती।

दक्षिण भारत मे ऐसे दीपाधार भी मिलते है जिनमे एक वृक्ष का आकार ढाला जाता है और शाखाओ के कोनो पर दीपक रहते है। अलकरण के लिये उनमे मयूर अथवा तोते आदि की आकृतियाँ भी बना दी जाती है। भारतीय दीपाधारो से प्रेरणा लेकर नेपाल मे भी अनेक प्रकार के दीपाधार बने है।

दक्षिण भारत के धातु-शिल्पियो ने बडे मनोहारी 'हस दीप' बनाये है। इस प्रकार के दीपाधारो मे अलकरण-युक्त हस दीपक को अपनी चोच मे लिए रहता है अथवा मूर्ति मे नीचे आसन मे दीपक जुडा रहता है। भारतीय कला के प्रतीको मे हस को समादर मिला है। वह मोती चुगता है अर्थात् श्रेष्ठ तत्वो को ग्रहण करता है। श्रेष्ठ विवेकी पुरुष की उस हस से तुलना की गई है जिसमे नीर-क्षीर को पृथक् करने –गुण और दोषो को परखने–की योग्यता है। इसीलिए हस ज्ञान की देवी का वाहन माना गया है। दक्षिण भारत के शिल्पियो को हस के शिल्पाकन मे सम्भवत: प्रस्तर शिल्प से प्रेरणा मिली है जिसमे साहश्य का उतना ध्यान नही रक्खा गया, जितना अलकरण का—हस की सुन्दरता मे उसके पखो के वर्तुलाकार अलकरण ने और भी शोभा भर दी है। कई सदियो की चिर-उपेक्षा के कारण सभी भारतीय शिल्पो ने अपनी कला के पूर्व-स्तर को आज खो दिया है फिर भी दक्षिण भारत मे यह परम्परा कुछ अशो मे जीवित है।

मैसूर मे स्थपतियो के कुछ परिवार छोटी-मोटी धातु-मूर्तियाँ गढकर अपने पैतृक व्यवसाय को अब भी सजीव रक्खे है। शिवारापटना की पचाल जाति का यही मुख्य व्यवसाय है। उनके पास मूर्तियो के सैकडो पुराने नमूने तैयार रहते है। कलाकार के चिर-अभ्यासी हाथ उसी प्रकार की मूर्ति, ग्राहक की इच्छानुसार तैयार करते है। वे पहले मोम की मूर्ति तैयार करके फिर 'पच लौह' की प्रतिमा बनाते है। इस 'टैकनिक' की चर्चा की जा चुकी है। फिर मूर्ति को रगड कर उसे अतिम रूप देते है और उसके ऊपर पॉलिश कर देते है। यद्यपि मन्दिरो के लिये देव-प्रतिमाओ की माग पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई है फिर भी यह नई धातु-प्रतिमाये देश-विदेश के शौकीनो के ड्राइग-रूमो की शोभा बढाती है। इनमे भी नटराज की मूर्तियो की अधिक माग रहती है। प्राचीन वस्तुओ के व्यवसायी विदेशी पर्यटको को ठगने के लिए

१ दि आर्ट आफ इण्डिया, फिगर १५४

नई वस्तुओ को प्राचीनता देने की चेष्टा भी करते है किन्तु स्वतत्र प्रतिभा और मौलिक कल्पना के अभाव मे इस कला मे जिस निर्जीवता और जिन रूढिगत् तत्वो का समावेश हुआ है, वे पारखी दृष्टि से वच नही पाते।

२. नेपाल की धातु-प्रतिमायें व अन्य शिल्प

अपने भव्य काष्ठ-मडपो, भवनो की शिल्प-युक्त सोहावटियो, रत्न-जडित धातु-प्रतिमाओ और सुन्दर चित्रमयी पोथियो के कारण नेपाल, "ललित-कला और पुरा-तत्व का सग्रहालय" कहा जाता है। हिमालय की छोटी सी उपत्यका मे ऐसी गरिमा-मयी कला-सस्कृति का उदय व विकास कैसे हुआ, यह प्रश्न कला-समीक्षको को आश्चर्य मे डाल देता है। अनुश्रुतियो के अनुसार सृष्टि के किसी आदि युग मे, इस उपत्यका मे निर्मल जल का सरोवर लहराता था। उस सरोवर मे एक शतदल पद्म खिला, जिसमे से स्वयभू बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। क्या नेवारी सस्कृति ही वह पद्म नही थी, जिसमे अनेक जातियो और वश-परम्पराओ के नये-नये पत्ते जुडते गये, पद्म विकसित होता गया? सस्कृति के इस शतदल को भगवान् बुद्ध से अनुप्राणित कला ने सुरभित किया।

नेपाल के धर्म, कला, सस्कृति और साहित्य सभी पर भारत की गहरी छाप है। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने नेपाल को भारत का 'सहोदर' कहा है। अग्रज के सस्कारो का प्रभाव अनुज पर पडना सहज है। नेपाल के शिल्पियो की प्रतिभा और नवोन्मेषशालिनी कल्पना ने भारत के कला-प्रभावो को भी जिस रूप मे आत्मसात् किया, उसमे वह उनकी मौलिक सर्जना बन गई है।

नेपाल और भारत के स्नेहपूर्ण सम्बन्धो की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व मे देवानाप्रिय सम्राट् अशोक ने शाक्य मुनि बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी मे जाकर श्रद्धा के सुमन अर्पित किये थे। लुम्बिनी का धर्म-लेख उस घटना का साक्षी है। हिमालय के अचल मे शाक्यो का प्रदेश कहाँ तक फैला हुआ था, यह आज निश्चित रूप से नही कहा जा सकता किन्तु उनकी राजधानी कपिलवस्तु आज नेपाल की सीमा मे 'तिलौरा कोट' गाँव के नाम से जानी जाती है। सम्राट् अशोक ने अपनी दुहिता चारुमती का परिणय नेपाल के किसी महासामत से किया था। राजकन्या चारुमती ने तथागत की भक्ति-वश नेपाल के निकट बौद्ध-स्तूपो की रचना कराई। वे अब भी विद्यमान है।

द्वितीय शताब्दी मे नेपाल मे लिच्छिवियो ने प्रवेश किया। डा० आनन्द के० कुमारस्वामी ने लिखा, "द्वितीय शताब्दी मे, लिच्छिवियो ने एक नये राज-वश की

स्थापना की। वे भारतीय सभ्यता के सारे तत्वो को अपने साथ वैशाली से ले गये।" इसके पश्चात् चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ मे जब गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त ने उत्तरापथ की समस्त बिखरी शक्तियो को एकत्रित कर एक विशाल साम्राज्य का स्वरूप दिया तब समतट, ढबोक (ढाका) और कामरूप के राजाओ के साथ नेपाल के अधिपति ने भी उनके चक्रवर्ती पद को स्वीकार किया। भारत और नेपाल के सम्बन्ध ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो मे काफी घनिष्ठ हो गये थे। नेपाल बौद्ध धर्म के मूल सर्वास्तिवाद का केन्द्र बन गया था। चौथी शताब्दी मे आचार्य वसुबन्धु ने नेपाल की यात्रा की थी। प्राचीन युग मे एक पथ कान्यकुब्ज से कामरूप होता हुआ नेपाल जाता था। सातवी शताब्दी मे श्वेनचाउ नामक भिक्षु, जो चीन से आचार्य जिनप्रभ के पास शिक्षा ग्रहण करने आये थे, इसी पथ से नालदा से अपने देश को वापस लौटे थे। आठवी शताब्दी मे आचार्य शान्तिरक्षित ने इसी पथ पर यात्रा की थी और भोट राजा के आग्रहपूर्ण आमन्त्रण पर विक्रमशिला के आचार्य दीपकर श्री ज्ञान ने भी इसी पथ से नेपाल होते हुये तिब्बत को प्रयाण किया था। अलबरूनी के यात्रा-वृत्तात से ज्ञात होता है कि यह पथ ग्यारहवी शताब्दी मे भी प्रचलित था। इसी पथ से भारतीय कला के प्रतीको और अभिप्रायो ने भी नेपाल और तिब्बत की यात्रा की।

नेपाल और तिब्बत की मैत्री का सूत्रपात सातवी शताब्दी मे, राजा स्रोन् ग्चन् स्गमपो के शासन-काल मे हुआ। उन्होने राजा अशुवर्मा की पुत्री के साथ विवाह किया। नेपाल के इस सम्पर्क से पहले तिब्बत मे बोन धर्म था। उस समय वहाँ न कोई भाषा थी और न लिपि। भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत मे लिपि तैयार की गई। तिब्बत की कला व सस्कृति के विकास मे नेपाल के शिल्पियों का बहुत बडा हाथ रहा। श्री सिलवा लेवी ने लिखा, "लहासा बहुत हद तक नेपाल का एक उपनिवेश ही है। वे प्रमुख रूप से नेवारी ही थे, जिन्होने तिब्बत मे मन्दिरो का निर्माण किया, उनकी प्रतिमाओ को ढाला और मूर्तियो को रगा। नेवारी शिल्पियो की कीर्ति सारी मध्य-एशिया मे फैल गई थी। धार्मिक भवनो को चित्रित व अलकृत करने के लिये, कुछ समय पहले तक, काफी व्यय करके भी नेवारी, शिल्पियो को ही दूर-दूर तक बुलाया जाता था।"

नेपाल मे बौद्ध और हिन्दू धर्मो की धाराये समान गति से वही है। वहाँ इन दोनो धर्मो के अनुयायिओ मे कभी कोई वैमनस्य नही हुआ। नेपाल के नृपतियो ने, चाहे वे किसी धर्म के उपासक रहे हो, सारी प्रजा को समान दृष्टि से देखा। श्यूआन् चुआड् के यात्रा-काल, सातवी सदी मे वे दोनो साथ-साथ मिले-जुले रहते थे। उनके मन्दिर और सघाराम पास-पास बने हुए थे। नेपाल मे दोनो धर्म इतने मिल-जुल गये है कि उनकी पहिचान कठिन हो चुकी है। इस समन्वय का कला पर भी प्रभाव पडा

है। बौद्ध सघारामो को प्राचीरो के भीतर हिन्दू मन्दिर दिखलाई देते है और हिन्दू देव-प्रतिमाओ पर बौद्ध-प्रभाव झलकता है।

आधुनिक नेपाल में नेवार, गोरखा, तामाग, गुरु ग और मगर आदि जातियाँ निवास करती है। इनमे से कुछ बौद्ध है और कुछ हिन्दू। नेवार जाति मूल रूप से मगोलियन शाखा की है और गोरखा अपने आपको चित्तौड के महाराणो के वशज बतलाते है किन्तु शताब्दियो के सम्पर्क के कारण गोरखा लोगो के चेहरो पर भी मगोलियन रक्त का प्रभाव दिखलाई देने लगा है। यो तो नेवारियो और गोरखो की शारीरिक बनावट मे भी काफी अन्तर होता है। गोरखा गठे हुए शरीर के नाटे किन्तु वलिष्ठ होते है और नेवारी लम्बे छरछरे बदन के अपेक्षाकृत सुकुमार। गोरखा मूलत: योद्धा जाति है और नेवारियो का कार्यक्षेत्र व्यवसाय व कला है। स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला और काष्ठकला सभी मे नेवारी शिल्पी अग्रगण्य समझे जाते है।

नेपाल की सबसे पुरानी कला-निधि पाटन के निकटवर्ती अशोक-कालीन स्तूप है। वे भारतीय स्तूपो की भाति ही गोलार्ध मे बने है। वे ईटी के है। उनके ऊपर हर्मिका अथवा छत्रावली नही है। स्तूपो की अति प्राचीन शैली मे उनके ऊपर छत्रावली नही होती।

नेपाल मे मूर्तिकला का आरम्भ सभवत लिच्छिवियो के प्रवेश के साथ हुआ। लिच्छिवि राजा मानदेव ने चाँगुनारायण के विष्णु-मन्दिर के आगे एक ध्वज-स्तम्भ स्थापित किया था, जिसके ऊपर गरुड की मूर्ति उत्कीर्ण थी। नेपाल की बहु-पूजित, पशुपतिनाथ की वर्तमान मूर्ति आठवी शताब्दी की है और नचना के उस काल के ही चतुर्मुख महादेव मन्दिर की चतुर्मुख लिग मूर्ति से अद्भुत साहश्य रखती है। मध्य-काल मे शिव-मन्दिर के गर्भगृह के बीच मे शिवलिग स्थापित किया जाता था और उसी मे चारो दिशाओ मे सद्योजात, अघोर, वामदेव व तत्पुरुष मुख उत्कीर्ण किये जाते थे। पचमुख परमेश्वर शिव के पचम मुख ईशान की कल्पना लिग मे ही की जाती थी।

नेपाल मे अन्य स्थानो पर भी प्रस्तर-प्रतिमाये मिलती है किन्तु ये आक्रांताओ द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है।

नेपाल की ख्याति रत्नमयी धातु-प्रतिमाओं के कारण है।

भारत मे पाल और सेन राजाओ के शासन-काल मे बौद्ध, ब्राह्मण और जैन सभी धर्मो की श्रेष्ठ धातु-प्रतिमाये बनी। बिहार मे कुर्किहार और नालन्दा इस कला के केन्द्र थे और बगाल मे रगपुर, राजशाही और दीनाजपुर आदि। यद्यपि वह धातु-प्रतिमाये कला की श्रेष्ठता मे गुप्तकालीन मूर्तियो के टक्कर की न थी फिर भी उनकी शरीर की भगिमाये आकर्षक थी। मध्य प्रदेश मे रायपुर के निकट खुदाई मे भी नवी दसवी शताब्दी की बुद्ध तथा बोधिसत्व की भावमयी प्रतिमाये प्राप्त हुई है। सौष्ठव

और भाव-व्यजना दोनो दृष्टियो से वे पाल-युग के श्रेष्ठ नमूनो के बीच रक्खी जा सकती है। नेपाल के शिल्पियो को नालदा और कुर्किहार की मूर्तियो से विशेष प्रेरणा मिली। उन दिनो बौद्ध-कला तत्रयान से प्रभावित होती जा रही थी इसलिये इन मूर्तियों मे विविधता भी दिखलाई देती है। विभिन्न मुद्राओ मे बुद्ध, अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि, वज्रपाणि, मैत्रेय, लोकेश्वर, तारा और मजुश्री आदि की धातु-मूर्तियाँ नालदा और कुर्किहार के शिल्पियो ने नवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी तक तैयार की। नालदा के पतन के बाद यह परम्परा नष्ट हो गई किन्तु नालदा के आचार्य तथा भिक्षु अपने साथ उसे नेपाल ले गये। यात्रियो के लिये पाषाण-प्रतिमाओ की अपेक्षा धातु-मूर्तिया ले जाना सुविधाजनक था। नेवारी शिल्पियो ने इन्ही आराध्यो की प्रतिमाये बनाकर उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मूल्यवान पत्थर, मूँगे, फीरोजे और रक्त-मणियाँ आदि जडी जिसके कारण मूर्तियो की शोभा दूनी हो गई। धातु-मूर्तियो मे रत्नो का जडाव नेपाल के कलाकारो की अपनी मौलिक कल्पना थी। इनमे रक्तमणि और फीरोजा अधिक उपयोग मे लाये जाते थे। नेपाल का शिल्पी पीतल या ताँबे की मूर्ति पर जो सोने का पानी चढाता था उससे वे दमकने लगती थी और 'मणि काचन' का सयोग दिखलाई देने लगता था। नेपाल की धातु-मूर्तियो से भारत के कई सग्रहालयो के कक्ष शोभित है। नेपाल के शिल्प मे ऐसी धातु-प्रतिमाये भी दिखलाई देती है जिनमे शक्ति आराध्य की गोद मे आलिगन-बद्ध बैठी है। वज्र-वाराही, प्रसन्न तारा और चण्डरोषण आदि देवी-देवताओ के गले मे मुड-मालाये भी दिखलाई देती है। यह सब तत्रयान की ही देन है। नेपाल के मूर्तिकार अपनी यह देव-प्रतिमाये 'साधन-माला' और 'साधन समुच्चय' आदि शिल्प के ग्रन्थो के आधार पर तैयार करते थे इसलिये 'साधन' और 'मूर्ति' दोनो मे साम्य दिखलाई देता है। बौद्ध मूर्ति-विज्ञान के अधिकारी विद्वान् डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने लिखा है, "पाटन के कुछ बौद्ध सघाराम प्रतिमाओ की दृष्टि से इतने समृद्ध है कि उन्हे ही छोटे सग्रहालयो की सज्ञा दी जा सकती है। महायान और वज्रयान के जिन देवताओ की प्रतिमाये भारत मे दुर्लभ है वे नेपाल के बौद्ध विहारो मे बहुतायत से मिल जाती है।" प्रसिद्ध कला-समीक्षक श्री कार्ल खडालवाला का मत है कि मूर्तियो मे रत्न जडने की कला नेपाल मे भारत से ही गई। पाल राजाओ के समय मूर्तिकार अपनी धातु-प्रतिमाओ मे किस प्रकार रत्न-मणि आदि जडने लगे थे इसका नमूना महाराज रामपाल के समय में तैयार की हुई कुर्किहार की अवलोकितेश्वर की मूर्ति है।

देव-प्रतिमाओ मे रत्न जड़ने की कला का श्री गणेश कही भी क्यो न हुआ हो, नेवारी शिल्पी इसमे अत्यधिक कुशल हो गये थे। वे सोने के पतरो से ऐसी पॉलिश तैयार करने लगे थे जिसकी चमक कई सौ वर्षो तक नष्ट नही हुई। पिछली शताब्दी से स्वर्णकार ऐसी मूर्तियाँ भी बनाने लगे है जिनमे आराध्य के शरीर के मुख, वक्ष

और भुजा आदि अवयव रगीन कांच के रहते है और मुकुट, आभूषण व वस्त्र आदि पीतल के। उन पर सोने का मुलम्मा चढा दिया जाता है। प्रतिमा की पृष्ठ-भूमि और प्रभा-मडल को मूगे और फीरोजे के रत्न और नीलाभ पुष्पो से भरा जाता है। बाद मे मूर्ति काठ के चौखटे मे जड दी जाती है।

नेपाल की धातु-मूर्तियो मे आराध्य के नेत्र लम्बे व अर्ध-उन्मीलित रहते है। पलके भारी रहती है और भौहे कमान की भाति तनी रहती है। ओंठ छोटे-छोटे और पतले रहते है और उनके कोने ऊपर की ओर मुडे रहते है। चौदहवी शताब्दी के बाद की मूर्तियो पर मगोल प्रभाव भी परिलक्षित होता है किन्तु भावना मे वे भारतीय मूर्तियों के ही अधिक निकट रहती है। नेपाल मे अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी मे तारा और बोधिसत्व की बहुत बडी प्रतिमाये बनी। इनमे देवाकृति के विविध अगो को अलग-अलग ढालकर बाद मे जोड़ दिया गया। इनमे अलकारो और मुकुट को भी अलग से ढाला गया और फिर उन्हे टाके से जोड दिया गया। कलकत्ता के भारतीय सग्रहालय मे बोधिसत्व और तारा की ऐसी कई बडी-बडी प्रतिमाये सुरक्षित है।

नेपाल मे इन देव-प्रतिमाओ की रचना किस उद्देश्य को लेकर की गई यह प्रश्न सहज ही अध्येता के आगे आकर खडा हो जाता है। बौद्ध-साधना मे देवता का मनो-योग-पूर्वक ध्यान करने वाले साधक के मानस-चक्षुओ के आगे आराध्य की प्रतिमा खडी हो जाती है। किन्तु यह साधना सतत् अभ्यास के बाद ही सम्भव होती है। साधक को शनै -शनैः मृग-तृष्णा, धूम, ज्योति-करण और फिर दिव्य-ज्योति के दर्शन होते है फिर आराध्य का साक्षात्कार होता है। उस समय उसे इष्टदेव का शरीर-वर्ण, आयुध और वाहन सभी दृष्टिगोचर होता है।

बीज-मत्र साधना की क्रिया-प्रक्रियाओ मे सहायक होता है। साधक इस ध्यान के द्वारा अभीष्ट देवता का जिस रूप मे दर्शन करता है, उसी को 'साधन' कहते है। 'साधनमाला समुच्चय' मे विविध देवगण के साधनो का सकलन है। कलाकारो ने इन्ही साधनो के आधार पर प्रतिमाये गढी है।

भारत के शिल्प की भाँति ही नेपाल की धातु-प्रतिमाओ मे आराध्य के हाथो की विविध मुद्राये प्रदर्शित की गई है जैसे वरद, अभय, अजलि, भूमि-स्पर्श और व्याख्यान मुद्रा आदि। वरद् मुद्रा में हाथ खुला रहता है और उँगलियाँ नीचे की ओर रहती है। यह आराध्य के अपने उपासक पर प्रसन्न होकर वर देने की मुद्रा है। अभय मुद्रा मे हाथ ऊपर की ओर उठा रहता है। भूमि-स्पर्श मुद्रा मे दाहिना हाथ भीतर की ओर खुला रहता है और एक उँगली भूमि को स्पर्श करती रहती है। जिस समय वासना के स्वामी मार ने तप मे लीन सिद्धार्थ पर आक्रमण किया था, उस समय उन्होने भूमि को छूकर अपने तप की साक्षी ली थी।

उपास्य देव के हाथों मे अक्षमाला, अकुश, प्रफुल्लित पद्म आदि प्रतीक रहते है। धातु-मूर्तियो मे पुस्तक को पोथी के एक पृष्ठ के रूप मे दिखलाया जाता है। उसका अभिप्राय प्रज्ञापारमिता से रहता है। कलश अथवा पूर्ण कुम्भ जीवन का प्रतीक है, जिसमे प्राण-रस पूरित रहता है। पाश दुष्प्रवृत्तियो को नाश करने वाला समझा जाता है। वज्र शून्यता का प्रतीक है और पद्म स्वसृजन का।

नेपाल के शिल्पी धातु की देव-प्रतिमाओं के अतिरिक्त उपासना के पात्र, दीपाधार, जलपात्र और वज्र आदि भी बडे कलात्मक बनाते है। नेपाल के मन्दिरो के दीपाधार बहुत बडे होते है। सुशोभन के लिये उनके ऊपरी भाग मे मन्दिर अथवा प्रफुल्लित पद्म बनाया जाता है। कभी-कभी दीपाधार की आकृति मयूर अथवा हस जैसी रहती है।

नेपाल मे ऐसी झारियाँ अथवा जलपात्र बहुत लोकप्रिय है, जिनमे एक ओर दीपक रहता है। झारी के दण्ड पर दीपक को मिथुन-मूर्तियाँ साधे रहती है। दीपक के सामने अवलोकितेश्वर की ढलाई की हुई मूर्ति रहती है। इस मूर्ति मे बोधिसत्व के तेरह मुख और अनेक हाथ दिखलाये जाते है। पीछे पत्तियो का अलकरण रहता है। पात्र मे हत्थे के पास नाग-मूर्ति बनाई जाती है। देव-मूर्तियुक्त झारियो मे दीपक, पात्र और देव-मूर्ति को अलग से ढालकर बाद मे जोडा जाता है। नेवारी शिल्पी भाँति-भाँति के ढलाई युक्त पात्र बनाते है जिनमे कुछ ढके हुये रहते है और कुछ फूलदानो की भाँति ऊपर से खुले हुये।

नेपाल के कुम्हार मृत्तिका-शिल्प मे बडे कुशल थे। नेवारी वास्तु-कला की मडप-शैली मे काष्ठ और ईटो के सयोग से ही सुदृढ भवनो का निर्माण हुआ था। नेपाल के मृत्तिका-शिल्प के केन्द्र थोमी और नाउकोटे थे, जिनमे चीनी मिट्टी के खिलौने भी तैयार किये जाते थे। इनमे आकृति की लुनाई और रगो की सुरुचिपूर्णता बहुत मनमोहक होती थी। नेपाल के कुम्भकार सादा कच्ची मिट्टी की देव-मूर्तियाँ भी बनाते थे। कुछ मूर्तियाँ चारो ओर से कटाव देकर कोरी जाती थी और कुछ भीतर से गहरा कटाव देकर बनाई जाती थी। इन देव-मूर्तियो मे गणेश, विष्णु, इन्द्र और वरुण आदि देवगण तथा तारा, बोधिसत्व, कुबेर और महाकाल आदि देवगण का समावेश रहता था। इस प्रकार की शिल्प-कृतियो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पतली नहन्नी से पहले कच्ची मिट्टी की आकृति को कटाव देकर तैयार किया गया है और फिर उसे पकाया गया है। ठप्पे के द्वारा आकृति मे इतनी गहराई और उभार लाना सम्भव नही जान पडता।

नेपाल के भवनो और देवालयो मे स्थापत्य की एक निराली शैली दिखलाई देती है। इसमे कई खडों के भवन बनाये जाते है। नीचे की मजिल से ऊपर का खड क्रमशः छोटा होता जाता है। जहाँ एक खड पूरा होता है, वहाँ भवन के चारो ओर

चतुष्कोण का एक झुकावदार छज्जा बनाया जाता है। इस छज्जे को नीचे लकडियाँ लगाकर साध दिया जाता है। दीवाल मे लगी हुई लकडियो के इन आधारो पर देवताओ की प्रतिमाओ तथा अन्य अलकरणपूर्ण आकृतियो को खोदकर मडप को अधिक सज्जायुक्त बनाया जाता है। इस शैली को 'मडप शैली' कहते है।

प्राचीन भवनो के प्रवेश-द्वारो, गवाक्षो और वातायनो मे जिस बारीकी के साथ काम किया गया है, जितनी विविध प्रकार की अनूठी डिजाइने बनाई गई है, वे मध्ययुग के कारीगरो की कुशलता की परिचायक है। देव-मन्दिरो या राज दर्बारो के प्रवेश-द्वार बहुधा सादे रहते थे। कभी-कभी उन पर कठखुदाई का काम भी दिखलाई देता है। ऊपर की लम्बी विशाल चौखट मे बुद्ध या तारा की आकृति को इतनी गहराई देकर काटा जाता था कि उसमे उभार आ जाता था। वह कोरी हुई मूर्ति जैसी ही लगती थी। इन विशाल द्वारो को सोहावटी कहते है। नेपाल की इन सोहावटियो मे कमल के प्रफुल्लित व अर्ध-मुकुलित पुष्पो, कलिकाओ और पत्तो की इतनी डिजाइने दिखलाई देती है कि नेवारी शिल्पियो की स्वतन्त्र प्रतिभा और सर्जना की सराहना करनी पड़ती है।

नेपाल की चित्र-साधना का जो स्वरूप आज कला-समीक्षको के सन्मुख है, वह उसकी सूक्ष्म चित्र-कला (मिनियेचर पेन्टिग) है। इतिहास से ज्ञात होता है कि नेपाल मे भित्ति-चित्रो का भी प्रचलन था। यह सच है कि अजन्ता, बाघ या चीन देश के सहस्र बुद्ध-गुहा-मन्दिर तुन्ह्वाग की भाति नेपाल की शिल्पियो ने गुहा-मन्दिरों को काट कर उनकी भित्तियो पर चित्र नही बनाये वरन् उन्होने काष्ठ-भवनो को ही विविध प्रतिमाओ और चित्रो से अलकृत किया। सातवी शताब्दी के चीनी ग्रन्थकारो ने इन चित्रमय काष्ठ-मडपो के शिल्प व चित्रो की सराहना की है। काष्ठ के माध्यम मे, पाषाण की भाँति प्रकृति से निरन्तर सघर्ष करने की क्षमता नही होती इसलिये यह भित्ति-चित्र भी काष्ठ-मडपो के साथ ही नष्ट हो गये। नेपाल की चित्र-कला केवल ताड और भोजपत्रो के ग्रन्थो तथा उनके काष्ठ के आवरणो मे ही सुरक्षित रह सकी। नेवारी चित्रकला की प्रारम्भ की कड़ी उन दस भित्ति-चित्रो को माना जा सकता है जो तुन्ह्वांग की गुहाओ मे है और जिनमे नेपाली चित्र-शैली मे बोधिसत्व का जीवन अंकित है।

डा० कुमारस्वामी का मत है कि सभी नेवारी राजाओ के शासन-काल मे काष्ठ-मण्डपो को मूर्तियों और चित्रो से सुसज्जित करने का रिवाज था। कुछ सदियो पहले मत्येन्द्रनाथ के मन्दिर मे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के विविध रूप, सुखावती लोकेश्वर, सिहनाद लोकेश्वर और नीलकण्ठ लोकेश्वर आदि रगमय चित्रो मे आके गये है।

उत्तर मध्यकाल मे प्रज्ञा-पारमिता, पंच रक्षा, कारण्ड व्यूह और सद्धर्म पुण्डरीक आदि महायान के ग्रन्थो की ताल और भोजपत्र की पोथियो मे भावपूर्ण चित्र बनाये

गये। इन हस्तलिखित पोथियो मे काली पृष्ठ-भूमि पर जमे हुये हाथ से स्वर्णाक्षरो मे लिखाई की गई और बीच मे बौद्ध आराध्यो के भाव-पूर्ण चित्र अंकित किये गये।

नेपाल के कला-स्वामियो को, धातु-मूर्तिकला की भाँति ही यह प्रेरणा बगाल और बिहार के पाल-युगीन कलाविदो से मिली। नालदा और विक्रमशिला के विनाश के पश्चात् भारत से कुछ पोथियाँ नेपाल और तिब्बत चली गई। वे बौद्ध विहारो मे कई शताब्दियो तक सुरक्षित रही। नेपाल की जलवायु भारत की अपेक्षा कम उष्ण होने के कारण भी विगत् शताब्दियो मे वे नष्ट नही हुई। डा० राइट और काठमाण्डू के अग्रेज रेजीडेन्ट वी० एच० हॉगसन को सस्कृत बौद्ध-साहित्य का यह विशाल भण्डार उपलब्ध हुआ जो कि रायल एशियाटिक सोसाइटी तथा बिब्लोथिक नेशनले पेरिस के विद्या-सस्थानो मे सुरक्षित है। इन पोथियो का आकार २२ इच लम्बा और सवा दो इच चौडा होता है। इनमे लिखावट के बीच मे बोधिसत्व, तारा या वज्रयान के देवी-देवताओ के चित्र आके गये है। यह चित्र-शैली, अजन्ता और बाघ के चित्रो की भाँति ही बौद्ध-कला का एक रूप थी जो पुस्तक-चित्रो के रूप मे प्रकट हुई। रेखा का लालित्य, मनोहारी अग-भगिमाये, और रगो की ताजगी इन चित्रो की आत्मा है। नेपाल मे ग्यारहवी शताब्दी तक की ताल-पोथियाँ उपलब्ध हुई है। पाल और सेन राजाओ के शासन-काल मे लिखी गई बगला ताल-पाथियो और नेपाली सूक्ष्म चित्रकला (मिनियेचर) मे इतना कम अन्तर है कि चित्रकला के पारखी नेत्र ही उसे पकड सकते है। गुजरात मे भी जैन शैली या अपभ्रंश शैली के नाम से सूक्ष्म चित्र-कला की एक शैली का उदय हुआ। इन सभी शैलियो के चित्रो की विषय-वस्तु धार्मिक थी फिर भी बौद्ध कला की इस धारा मे कल्पना और भावना की व्यापकता थी। भिन्न-भिन्न रगो को मिलाकर वह एक निश्चित प्रभाव पैदा करती थी।

नेपाल की पोथियो के काष्ठ के आवरणो पर भी, चौरासी सिद्धो मे से कोई सिद्ध, वज्रयानी देवता या स्वय भगवान् बुद्ध दर्शन देते है। इनको देखने से मालूम होता है कि चित्रकार की विषय-वस्तु का कितना गहरा ज्ञान था ? उसने छोटी से छोटी बारीकी को भी नही छोड़ा। अष्टसहस्रिका प्रज्ञापारमिता की ग्यारहवी और बारहवी शताब्दी की वे चित्रमय पोथियाँ नेपाल की श्रेष्ठतम चित्रकला की साक्षी है जो बोस्टन सग्रहालय, दरबार लाइब्रेरी नेपाल अथवा रायल एशियाटिक सोसाइटी मे सरक्षित है।

कक्ष की धातु-मूर्तियाँ : विवरण

ब. १—शांतिनाथ तीर्थंकर

धातु-मूर्ति, दक्षिण-भारत, पन्द्रहवी शताब्दी। तीर्थंकर श्री शातिनाथ आसन पर पद्मासन लगाये बैठे है। उनकी मुद्रा गभीर है मानो चिंतन मे हो और दोनो हथेलियाँ गोद मे रक्खी है। आसन मे सिंहो की आकृतियाँ परिलक्षित होती है। दोनो ओर दो बैठी हुई देव-मूर्तियाँ है। तीर्थंकर के दोनो ओर दो पार्षद खडे है और उनके ऊपर तीर्थंकर की छोटी ध्यानावस्थित मूर्तियाँ है। भगवान् शातिनाथ पर छत्र तना है और ऊपर भाग मे दो गज अभिषेक करते हुए दिखलाई देते है।

मूर्ति पर यह लेख अकित है
युतेनस्व श्रेयसे श्री शातिनाथ बिबकारिति प्रतिष्ठितत पणव श्री सोम सुन्दरम्।
फाल्गुन शुक्ल तृतीया, सवत् १८८२ वि०
आकार ६ ५″ × ४″

ब. २—नटराज

कास्य-प्रतिमा, दक्षिणापत्य, १७वी शताब्दी। नृत्य के आराध्यदेव नटराज, मल अथवा अविद्या के प्रतीक अपस्मार पुरुष पर नृत्य कर रहे हैं, गम्भीर मुख-मडल, भव्य मूर्ति—

नटराज की अन्य कास्य-प्रतिमाओ की भाँति इस मूर्ति के भी चार भुजाये दिखलाई गई है। यह भुजायें कधे से निकली है। नटराज के एक हाथ मे सृजन का प्रतीक डमरू है, जिसके नाद से सृष्टि होती है। अगला दाहिना हाथ अपने भक्तो को अभय प्रदान कर रहा है। भुजाओ मे वलय के स्थान पर सर्प दिखलाई दे रहे है। बायी ओर के पिछले हाथ मे अग्नि-शिखा है। प्राचीन मूर्तियो मे यह अग्नि-ज्वाला हथेली मे दिखलाई जाती है किन्तु इस मूर्ति मे वह एक पात्र मे रक्खी हुई है। हाथ की इस मुद्रा को अर्ध चन्द्रहस्त कहते है। आगे का हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा मे है और नीचे पडे हुए अपस्मार पुरुष की ओर सकेत कर रहा है। अपस्मार पुरुष एक बौने के रूप मे दिखलाया गया है जो कि एक करवट से लेटा है। नटराज का बॉया चरण उसके वक्ष पर है जिसे वह एक हाथ से पकडे हुए है।

नटराज के माथे पर मुकुट है जिसके ऊपर पखो का किरीट दिखलाई दे रहा है। जटा-मुकुट मे कपाल, अर्ध-चन्द्र व नाग दिखलाई दे रहा है। मुकुट मे से लटाये छूटकर लहरा रही है। अन्य नटराज मूर्तियो की अपेक्षा यह आकार मे छोटी भी है। इनमे नाग बैठे हुए है। नटराज के कानो मे से एक मे गोल तथा दूसरे मे लम्बा कुण्डल है जो उनके अर्द्ध नारीश्वर रूप का प्रतीक है। उनके गले मे कई लडो का हार है तथा कधे पर यज्ञोपवीत शोभित है। उनकी बाँहो मे भुज-बन्द तथा हाथो मे ककण है। कमर मे वे एक कछनी पहने है जिसके ऊपर पटका बँधा है। पटके के दोनो छोर लहरा रहे है। उनमे से एक मे घटिका बँधी हुई है। यह छोर ज्वाला-मडल अथवा प्रभावली का स्पर्श कर रहा है।

नटराज का नीचे का आसन पद्माकृति का नही है जैसा कि प्राचीन चोल या पल्लव युग की कास्य-प्रतिमाओ मे दृष्टिगोचर होता है। ऐसा जान पडता है कि आसन प्रतिमा के साथ नही ढाला गया वरन् अलग से बनाकर बाद मे जोड दिया गया है। नटराज का ज्वाला-मडल कुछ लम्बापन लिये हुए घोडे की नाल के आकार का है।

यद्यपि इस प्रतिमा मे प्राचीन नटराज-मूर्तियो जैसी गतिमयता और लय परिलक्षित नही होती और न भावाभिव्यक्ति व अकन की दृष्टि से उस स्तर को छू पाती है, फिर भी मूर्ति सुन्दर है और कास्य-मूर्तियो की शृखला की एक पिछली कडी है। नटराज-मूर्ति की सारी लाक्षणिकताओ का समावेश इसमे हुआ है।

सग्रहालय की वस्तुओ के सम्बन्ध मे एक बहुत बडी कठिनाई सामने है, वह यह कि उनकी उपलब्धि के स्थान का कोई निश्चित पता नही चलता। अधिकाश वस्तुये उन दूकानदारो से मूल्य चुका कर ली गई है जो कि पुरानी कलात्मक वस्तुओ का सग्रह रखते है। मूल-स्थान का पता न होने के कारण सग्रहाध्यक्ष को केवल समकालीन या सादृश्य रखने वाली वस्तुओ पर ही निर्भर रहना पडता है। उसी आधार पर वह अनुमान लगाता है। ऐसी प्रतिमाये या वस्तुये इनी-गिनी ही है, जिनके ऊपर कोई लेख अकित हो। ऐसी स्थिति मे यह कह सकना कठिन है कि नटराज-मूर्ति दक्षिण-भारत के किस स्थान की है? आकार—२२.५″ × १३″

ब. ३—कमण्डल

पीतल, राजस्थान, अठारहवी सदी। यह विशाल कमण्डल राजस्थान की धातु-कला का एक विलक्षण नमूना है। आकार की दृष्टि से धातु की इतनी बडी कृति राजस्थान व भारत ही नही अपितु विदेश के सग्रहालयो मे भी कठिनाई से मिलेगी। यह 'चौबीस अवतारो' के कमण्डल के नाम से इलाके मे प्रसिद्धि ले चुका है और दूर-दूर के गाँवो के लोग 'ब्रह्मा के इस कमण्डल' को देखने के लिये आया करते है। इसके गोलाकार मध्य-भाग मे दस अडाकार चित्रो मे विष्णु के अवतार दिखलाये गये है और ऊपर के भाग मे महाभारत के विविध प्रसग है। सम्पूर्ण कमण्डल तीन भागो मे विभक्त है जिन्हे अलग-अलग किया जा सकता है। बीच का गोलाकार भाग कही जुडा है किन्तु उस जोड को इतनी कुशलता से छिपाया गया है कि ध्यान से देखने पर भी कही दिखलाई नही देता। नीचे के आधार-भाग पर लम्बी पत्तियो का अलकरण किया गया है। फूलो और पत्तियो पर मुगल-कला का प्रभाव है। फूलो की यह तरहे ताज और फतहपुर सीकरी के वास्तु मे सुशोभान के लिये बनाई गई तरहो जैसी है। कमण्डल मे फूल-पत्तियो और मानव आकृतियो को ठप्पे से उभार देकर तैयार किया गया है और फिर ऊपर से तराश देकर उसे अन्तिम रूप दिया गया है।

मध्य के भाग मे दस अण्डाकार चित्र है, जिनमे से प्रत्येक आकार मे ८″ × ६″ है।

(१) श्री रामचन्द्र—आसन पर श्री राम बैठे हुये है और उसी आसन पर वामाँग मे सीता जी है। पीछे चवर लिये लक्ष्मण खडे है। श्री राम का एक चरण सुखासन मुद्रा मे आसन पर है और दूसरा हनुमान की गोद मे है जो आसन के नीचे बैठे हुए उनका चरण दबा रहे है। श्री राम द्विभुजीय दिखलाये गये है। उनके दाहिने हाथ मे पखुडियो से खिला हुआ कमल है और दूसरी भुजा सीता के कधे पर रक्खी हुई है। राम धोती पहने हुए है और उनके कधे पर उत्तरीय पडा है। माथे पर गोल टोपी के आकार का मुकुट है जिसमे चार पत्र है। सीता जी लहगा और दुपट्टा पहने है। राजस्थान की यही वेश-भूषा राजपूत-शैली के चित्रो मे भी दिखलाई देती है। उनके हाथो मे चूडियाँ है। हनुमान का शरीर मानव का है और मुख बानर का। वे एक पगडी पहने है, जिसका बीच का गोल भाग ऊपर उठा है। राजस्थान मे कुछ समय पहले तक इस प्रकार की पगडियाँ पहनने का रिवाज था। राम और सीता के मुख के पीछे प्रभा-मण्डल है।

(२) परशुराम अवतार—इसमे परशुराम सहस्रबाहु से युद्ध करते हुये दिखलाये गये है।

सहस्रबाहु सिरस्त्राण पहने है जिसके ऊपर नोक निकली हुई है। वे नीचे घेरदार जामा पहने है और कमर पर पटका बधा हुआ है। उनका वेश राजस्थान के मध्य-काल के योद्धा के समान है।

सहस्रबाहु के सोलह भुजाये दिखलाई गई है जिनमे से तीन भुजाये भूमि पर कटी हुई पडी है। शेष मे भाला, असि, करवाल और गदा आदि अस्त्र-शस्त्र दिखलाई देते है।

परशुराम की वेष-भूषा प्राचीन ऋषि के सदृश्य है। उनके मुख पर दाढी है और सिर पर जटा-जूट है। उनके एक हाथ मे गदा है और दूसरे मे वे परशु लिये सहस्रबाहु पर प्रहार कर रहे है। मानव आकृतियो के ऊपर की ओर फलक मे किसी कुटी का दृश्य है, जिसमे आगे एक वृक्ष खडा है। उसके नीचे एक स्त्री अथवा पुरुष (जो आकृति से स्पष्ट नही होता।) लेटा है। गाय अपनी पूँछ उठाये बडी तेजी से दौडती दिखलाई देती है। यह दृश्य परशुराम की कथा का चित्रण करता है। इस धेनु को सहस्रबाहु अपहरण कर ले जाना चाहता था। यह धेनु ही उनके युद्ध का कारण थी।

(३) बलि-वामन—राज-प्रसाद के प्रागण मे, एक आसन पर राजा बलि बैठे है। वे जामा और पटका पहने हुये है। सिर पर पत्र-युक्त मुकुट है। राजा अपने दोनो हाथो मे झारी लिए दान अर्पित कर रहे है। दान का सकल्प करते हुए राजा बलि के निकट उनकी रानी खडी है। वे लहगा दुपट्टा पहने है और भक्ति-भावना से उनके दोनो हाथ जुडे है। राजा के मुख के पीछे प्रभा-मण्डल है जो कि देव-मूर्तियो मे दिखलाया जाता है। भवन छज्जेदार है। उसके द्वार चौडे है। राजस्थानी चित्रो मे इस प्रकार की बारहदरी का अकन बहुलता से मिलता है।

राजा बलि के आगे बटुक रूप मे विष्णु खडे है। उनका कद बहुत छोटा दिखलाया गया है। वे बगल मे छाता दबाये है और उनके दोनो हाथ याचना के लिये बलि के आगे फैले हैं। वामन के पीछे एक देव पुरुष खडा है जो सम्भवत इन्द्र है।

(४) नृसिहावतार—भवन के अलकृत स्तम्भ को विदीर्ण कर नृसिह भगवान् प्रकट हुए है। वे हिरण्य कश्यप को अपनी गोद मे लिटाये, दोनो हाथो से उसका वक्ष विदीर्ण कर रहे है। हिरण्य-कश्यप का शरीर मानव का और मुख शूकर का दिखलाया गया है। कमण्डल मे अन्य प्रसगो मे भी जहाँ असुर दिखलाये गये है, वहाँ उनका मुख शूकर का है या उनके लम्बे कान और सिर पर सीग दिखलाये गये है। फारसी के ग्रन्थो मे जिन्नात के चित्र भी इसी प्रकार के मिलते है। हिरण्य-कश्यप के निकट उसकी रानी तथा प्रह्लाद हाथ जोडे हुये नृसिह का स्तवन कर रहे है।

(५) वाराह अवतार—उग्र-मूर्ति वाराह अपने एक दात पर पर्वत लिये है। उनके मस्तक पर लम्बा मुकुट है। इस फलक मे शूकर भगवान् के चार भुजायें दिखलाई गई है। उनके हाथ मे गदा और दूसरे मे चक्र है। एक हाथ की मुट्ठी बधी हुई है, जिसमे शख प्रतीत होता है। वाराह के एक हाथ मे असुर की चोटी है जिसका शरीर तो मानव का है किन्तु सिर पर सीग हैं तथा लम्बे कान है। वाराह उसके वक्ष पर अपना चरण रक्खे हुये है। श्रीमद्भागवत् के अनुसार वह असुर हिरण्याक्ष था, जिसने अपने अपरिमित बल से देवगण को प्रकम्पित कर दिया था। वाराह ने उसका वध किया।

(६) मत्स्य अवतार—विशाल मत्स्य के मुख मे से चतुर्भुज विष्णु का उद्भव दिखलाया गया है। उनके हाथो मे शख, चक्र और पद्म है तथा चतुर्थ कर से वे हयग्रीव नामक असुर की चोटी पकडे हैं। हयग्रीव ने ब्रह्मा के वेदो को चुरा लिया था, यह कथा श्रीमद्भागवत् मे आती है। लम्बे

सीगो का राक्षस एक शख पर लेटा है । उसके निकट ही चतुर्भुज ब्रह्मा अपने हाथ जोडे माया-मत्स्य-रूप नारायण का स्तवन कर रहे है ।

(७) **सागर-मथन**—अमृत की उपलब्धि के लिये देव और दानवो ने मिलकर सागर का मथन किया । मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाया गया और वासुकि की रज्जु । जिस समय वे सागर का मथन करते २ थक गये और उसमे से अमृत की उपलब्धि न हुई उस समय उन्होने विष्णु से प्रार्थना की कि वे बल प्रदान करे । विष्णु ने उन्हे शक्ति दी और सागर मे से यह रत्न उद्भूत हुए, अगणित रश्मि-राशि और प्रकाश-किरणो से युक्त चन्द्रमा, देवि लक्ष्मी, सुरादेवी, श्वेतवर्ण का उच्चैश्रवा अश्व, ऐरावत, नारायण के वक्ष-स्थल पर शोभित होने वाली दिव्य किरणो से युक्त कौस्तुभ मणि, वाछित फल देने वाला कल्प-वृक्ष, अमृत-कलश लिये हुए दिव्य-देहधारी धनवन्तरि, कालकूट विष और कामधेनु आदि ।

इस चित्र मे कच्छप पर मदराचल पर्वत की मथानी है जिसमे वासुकि सर्प रज्जु के स्थान पर लपेटा गया है । मन्दराचल पर शख, चक्र, गदा और पद्मधारी विष्णु बैठे है । एक ओर ब्रह्मा और शिव तथा दूसरी ओर दो दैत्य लगे हुए सागर को मथ रहे हैं । फलक के ऊपर के भाग मे एक ओर धनवन्तरि, लक्ष्मी, ऐरावत, कामधेनु और कल्प-वृक्ष दिखलाया गया है तथा दूसरी ओर उच्चै-श्रवा अश्व, सुरा, चन्द्र, अमृत-कलश व मणि है ।

(८) **यज्ञ का अश्व लिये देव पुरुष**—इस चित्र मे एक देव-पुरुष अश्व की राशि अपने हाथ मे थामे हुए चलता जा रहा है । घोडे पर जीन कसी है और उसके ऊपर छत्र तना है, जिससे यह प्रकट हो रहा है कि वह यज्ञ का अश्व है । घोडे की आकृति बडी सजीव है । किस कथाश का शिल्पी ने कमण्डल के इस चित्र मे अकन किया है, यह स्पष्ट नही होता । यह सम्भावना होती है कि इन्द्र सगर का यज्ञ का घोडा चुराये लिये जा रहा है किन्तु देव पुरुष के शेष तीन हाथो मे शख गदा और पद्म है जो कि विष्णु के आयुध व प्रतीक है ।

(९) **लक्ष्मी**—लक्ष्मी एक आसन पर बैठी है । देवी के चार भुजाये है जिनमे उनके स्वामी विष्णु के प्रतीक गदा और चक्र है । शेष दो हाथ ध्यान-मुद्रा मे एक दूसरे पर रक्खे है । मुख के पीछे प्रभा मडल है और ऊपर छत्र तना है । दोनो ओर दो पार्षद चँवर डुला रहे है । लक्ष्मी तथा पार्षदो की वेश-भूषा राजस्थान की दिखलाई गई है ।

(१०) **कृष्ण**—कृष्ण और राधिका प्रफुल्लित पद्मो पर खडे है । कृष्ण त्रिभग मुद्रा मे खडे है । उनके हाथो मे मुरलिका है और माथे पर मोर-पक्ष युक्त मुकुट है । राधा लहगा पहने है और उसके ऊपर दुपट्टा ओढे है ।

कमण्डल के ऊपर के भाग पर भी दस अडाकार चित्रो के पैनल है । यह सब चित्र महा-भारत से सम्बन्धित है ।

(१) **रण-निमंत्रण**—यह एक भवन का दृश्य है जिसमे पर्दा उठा हुआ दिखलाई देता है । चतुर्भुजी कृष्ण अपने शयनागार मे आसन पर लेटे है और उनके निकट दुर्योधन तथा अर्जुन, सिर-हाने और पैरो की ओर बैठे है ।

(२) **राजा और ऋषि**—राजा अपने आसन पर बैठा हुआ है और दो ऋषि उससे कुछ चर्चा कर रहे है। यह महाभारत का कौन सा प्रसग है, यह स्पष्ट नही होता ।

(३) **गुरु द्रोण का अभिषेक**—भारत मे महर्षि द्रोण का सनापति के स्थान पर अभिषेक किया जा रहा है। धनुर्धारी द्रोणाचार्य अपने आसन पर बैठे है और ब्राह्मण-वर्ग उनका अभिषेक कर रहा है। उनके निकट ही कौरव-पक्ष के वीर योद्धा अपने लौह-वर्म पहने हुए खडे है। उनकी वेष-भूषा राजस्थान के मध्यकाल के योद्धाओ जैसी है।

(४) **भीम और दुर्योधन का युद्ध**—दुर्योधन महाभारत के अतिम दिनो मे अपनी प्राण-रक्षा के लिये जल के एक सरोवर मे जा छिपा किन्तु भीम ने अपना प्रतिशोध लेने के लिये उसका वहाँ भी पीछा किया। इस चित्र में दुर्योधन जलाशय की ओर बढता जा रहा है। भीम उसे हाथ पकड कर बाहर निकाल रहे है। दोनो के गठे हुए बलिष्ठ शरीर और उनके हाथो की भारी गदाये उनके शक्ति की साक्षी है। कृतियाँ अत्यत ओजवती है।

(५) **भीम की लौह-प्रतिमा**—अन्ध राजा धृतराष्ट्र भीम की लौह-प्रतिमा का आलिगन कर रहे है। एक ओर धनुर्धारी पाण्डव खडे है और धृतराष्ट्र के पीछे चतुर्भुजी कृष्ण खडे है।

(६) **सन्धि का प्रस्ताव**—कृष्ण, पाण्डवो की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये है। कौरवाधिपति धृतराष्ट्र अपने राजदर्बार मे बैठे है और उनके पीछे साध्वी रानी गान्धारी पट्टी बाँधे हुए बैठी है। निकट ही दुर्योधन खडा है। धृतराष्ट्र के सामने एक पृथक् आसन पर एक जटा-जूट-धारी ऋषि बैठा है।

(७) **भवन का दृश्य**—कोई राजा, सम्भवत युधिष्ठिर अपनी राज-सभा मे बैठे है। उनके सामने समान आसन पर दो जटा-जूटधारी ऋषि बैठे हुए उनसे कुछ चर्चा कर रहे हे। भवन के वातायन व द्वारो को बहुत सुन्दर बनाया गया है।

(८) **कृष्ण**—(जिनको चतुर्भुजाधारी, विष्णु के अवतार रूप मे दिखलाया गया है) खडे है और उनके निकट ही एक योद्धा लौह-वर्म पहने कधे पर तूणीर लटकाये है। सम्भवत वे गाडीव-धारी अर्जुन है। उनके सामने एक देवता खडा हुआ है, जिसका मुख शूकर का है। यह भी महा-भारत का कोई प्रसग है।

(९) **वन मे पाण्डव**—वन मे वृक्ष की छाया तले योद्धा बैठे है और उनके साथ कुछ ऋषि है। योद्धा पाण्डव है जो अपने वनवास की अवधि मे निष्कासित है और वन के ऋषि-मुनियो के साथ बातचीत कर रहे है।

(१०) **भीष्म की प्रतिज्ञा**—महाभारत मे यह प्रसग आता है कि जिस समय दु शासन ने द्रोपदी का चीर खीचकर उनका सभा के बीच मे नग्न कर देने का क्रूर-कृत्य करना चाहा था, उसी समय भीम ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे दु शासन का रक्त-पान करेंगे। इस चित्र मे दरबार या किसी के अन्त पुर का दृश्य दिखलाया गया है। भीम गदा लेकर कही जाने को उद्यत खडे हैं। वे आवेश मे है। कृष्ण उनका हाथ पकड कर उन्हे रोक रहे है। कृष्ण के नीचे विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है। उसमे से ही कृष्ण का उद्भव दिखलाया गया है। निकट ही पाच पाण्डव व द्रोपदी बैठी है।

कमण्डल मे सबसे ऊपर एक बडा हत्था है जिसके ऊपर अष्ट-दलीय कमल पुष्पो का अल-करण है तथा गजो के मुख है। सबसे ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा है। उनके लम्बी दाढी है और सिर पर मुकुट है।

कमण्डल के ऊपर कही-कही सोने की पालिश के चिन्ह दिखलाई देते है जिनसे यह अनुमान होता है कि इस पर सोने का पानी भी होगा जोकि अब उतर चुका है।

कमण्डल के भागो का आकार यह है—

कमण्डल की ऊँचाई-५ फीट।
नीचे का भाग-६" इच।
मध्य भाग-१ फीट ६ इच।
ऊपर का भाग-१ फुट।
हत्था-२ फुट।
मध्य भाग—गोलाई ७ फुट।
ऊपर का भाग—गोलाई ७ फुट।

ब ४—वेणु गोपाल

पीतल, बगाल, १७ वी शताब्दी। कृष्ण की नृत्य-मुद्रा और वशी-वादन दक्षिण भारत और बँगाल ही नही काठमाण्डू उपत्यका के नेवारी धातु-शिल्पियो का भी अति प्रिय विषय रहा है। एक हाथ मे नवनीत लेकर नाचते हुये 'नवनीत नृत्य कृष्ण' और एक चरण कालिय नाग पर रखकर उसके फन पर थिरकते हुये कृष्ण की धातु-प्रतिमाये चोल-काल से बनती आ रही है।

वेणु गोपाल की यह मूर्ति पुरानी पड जाने के कारण घिस गई है फिर भी लुनाई शेष है। उनके मुख पर मन्द हास्य की रेखा है। कृष्ण पैर तिरछा किये हुये त्रिभग मुद्रा मे खडे है और हाथो की मुद्राये भी इस प्रकार की है कि मानो उनमे मुरली थामे है। माथे पर मुकुट नही है वरन् जटाओ को ही ऐसा बाध दिया है कि वह मुकुट जैसा लगने लगा है।

यह धातु-मूर्ति वेणु गोपाल की १७ वी शताब्दी की बगाल की उस मूर्ति से अद्भुत सादृश्य रखती है, जिसका चित्र डा० स्टैला क्रैमरिश ने अपने ग्रन्थ 'आर्ट आफ इण्डिया' मे प्रकाशित किया है। आकार १ फुट × २ ५"

ब. ५—अलंकृत जल-पात्र

धातु, ताँबा और जस्ता, बगाल १७ वी शताब्दी। यह कलशी पहले ढलाव देकर तैयार की गई है और फिर गोलाई में कृष्ण वेणु गोपाल और नृत्य-काली की जस्ते की भावपूर्ण आकृतियो को अलग से बनाकर ताँबे की पतली कीलो से बडी कुशलता के साथ जड दिया गया है।

पात्र मे नीचे तीन पक्तियो मे खिले पुष्पो और अलकरणयुक्त पक्तियो को सुशोभन के लिये बनाया गया है और उनके ऊपर, कलशी के मध्य मे वेणुवादक कृष्ण और मुण्डमालिनी काली की बडी सजीव आकृतियाँ है। इसमे कृष्ण पैर बाँका किये त्रिभग-मुद्रा मे खडे हुये वशी बजा रहे है और काली गले मे मानव-मुण्डो की लम्बी माला धारण किये बडे वेग से दौडती हुई सी जान पडती है। आकृतियाँ अण्डाकार है और उनमे कटाव दिया गया है। दो आकृतियो के बीच के रिक्त भाग को फूलो से भरा गया है। उसके ऊपर मयूरो की पक्ति है। कलशी की गर्दन पतली है और मुँह तथा गरदन पर नोकदार पत्तियो आदि से अलकरण किया गया है। आकार ८" × ६.२५"

ब. ६—दीप लक्ष्मी

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १८वी शताब्दी। दक्षिणापत्य के मदिरो मे ऐसी धातु-मूर्तियाँ रहती है जिनमे एक स्त्री अपने हाथ मे एक बडा सा दीपक लिये हुए दिखलाई जाती है। इस प्रकार की मूर्तियो को दीप-लक्ष्मी कहते है। 'दक्षिणापत्य की काँस्य-मूर्तियो' मे चोल और पल्लव काल की दीप-लक्ष्मी की सुन्दर धातु-मूर्तियो की चर्चा की जा चुकी है।

संग्रहालय की यह मूर्ति उन प्रतिमाओ की भाँति कमल पर नही वरन् एक चौकी पर खडी है। दीपलक्ष्मी गले मे चौलडी माला पहने है। उसका मोतियो का हार दोनो स्तनो के बीच मे लटक रहा है। वह एक लहरियेदार धोती पहने है जिसका एक सिरा पीछे लटक रहा है। कानो मे गोल कुडल है। सौन्दर्य और भाव की दृष्टि से यह धातु-प्रतिमा अधिक उत्कृष्ट नही कही जा सकती और न चोलकालीन दीपलक्ष्मियो की तुलना मे कही ठहर पाती है। आँखे चेहरे के अनुपात मे बहुत बडी है, नाक चपटापन लिए है और चेहरा गोल है। दक्षिण मे चोल और पल्लवो के बाद नायको का अभ्युदय हुआ। उनका समय १७वी शताब्दी तक माना जाता है। यह दीपलक्ष्मी मूर्ति उसके भी बाद की है। डा० शिवराम मूर्ति के मतानुसार यह दीपलक्ष्मी मूर्ति १५० वर्ष से अधिक पुरानी नही ठहरती। आकार ६ २५" × २"

ब. ६—झूले की शृङ्खला

धातु, पीतल, सौराष्ट्र, १६वी शताब्दी। सौराष्ट्र और गुजरात मे अभिजात्यवर्ग अपने कमरो मे सोफा-सेट और मेज-कुर्सी के अतिरिक्त झूला भी डालता है। काठ की पटरी के दोनो ओर कडे लगे रहते है और उनमे जजीरें पडी रहती है। इस प्रकार का झूला भारत के किसी अन्य प्रात मे नही दिखलाई देता। कृष्ण भक्ति के प्रधान्य के कारण इस प्रान्त मे मन्दिरो मे हिडौले भी पडते है जिनमे बाल-कृष्ण झूलते दिखलाये जाते है। श्रावण के मास मे ब्रज मे भी हिडौले पडते है। गुजरात के इस प्रकार के 'डोल' अथवा हिडोल के सम्बन्ध मे श्री जी० वैकटचलम ने लिखा है

"When Vaishnavism and the Cult of Krishna absorbed this primitive festival of spring and raised it to a religious festival, it became the sacred "Dole Leela". While preserving all the elements of the seasonal festival, it invested it with a peculiar mystery and dignity. It became a 'Leela' or sport or incident in the ideal of the sportive Krishna in the bowers of Brindaban It is also a feast of national merry-making in which the ceremony of swinging (Dole) became an essential feature. In its religious side, it soon developed into a ritual, where the effigy or image of Krishna is rocked for three days on a beautifully decorated 'Palang' or seat hung in chains from the ceiling, amidst a gathering of festive makers "

संग्रहालय की पीतल की यह शृङ्खला किसी हिंडोले की ही जान पडती है। इसकी कडियाँ एक-दूसरे से जुडी है और बीच मे सुशोभन के लिये नारी-मूर्ति, हाथी और झुनझुने भी डाले गये है। स्त्री के हाथो मे घटियाँ है। तनिक सा हिलते ही जजीर बज उठती है और उसमे से बडी मधुर ध्वनि निकलती है। आकार ५ फीट ४ इच × ४"

ब. ७—अलंकृत जल-पात्र

धातु, ताँबा, तजोर, दक्षिण भारत, १६वी शताब्दी। नवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक, लगभग पाँच सौ वर्षों की लम्बी अवधि तक तजोर को कला-प्रिय चोल-नृपतियो की राजधानी बने रहने का श्रेय मिला है। चोलो के शासनकाल मे तजोर मे अनेक भव्य मन्दिरो का निर्माण

हुआ और उनमें भावमयी प्रतिमाओ की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। तजोर का विशाल देवालय, वृहदीश्वर मन्दिर चोल नरेशो की अक्षय कीर्ति का साक्षी है। उनके युग मे बनी नटराज व अन्य धातु प्रतिमाओ की कला-समीक्षको ने भूरि-भूरि सराहना की है। चोलो के पश्चात् शासन-सूत्र नायको के हाथ मे गया और फिर मराठो का आधिपत्य स्थापित हुआ। यह सभी राज-वश स्थपतियो के प्रश्रयदाता थे इसलिए परम्परा की शृङ्खलायें नही टूटी।

वास्तु और मूर्ति-शिल्प के अतिरिक्त तजोर के शिल्पी बडे कला-पूर्ण पात्र भी गढते थे। स्वर्ण, रजत और ताम्र के यह पात्र देव-पूजन के समय उपयोग मे लाये जाते थे। सम्भ्रान्त वर्ग के लोगो के गृहो की यह पात्र शोभा भी थे। शिल्पी पात्र मे नीचे से उभार देकर आकृति मे स्पष्टता लाते थे। पौराणिक और धार्मिक दृश्य उन्हे विशेष प्रिय थे। जनता मे माग भी इन्ही प्रसगो की थी, राम-सीता का परिणय, शिव और उमा आदि। कभी-कभी इस प्रकार के उभारदार ताम्र-चित्रो को अलग से तैयार करके भी पात्र मे जड दिया जाता था। इस प्रकार के धातु-शिल्प को दक्षिण भारत मे 'स्वामी वर्क' कहा जाता है। तजोर और मदुराई इस प्रकार के काम के लिए ख्याति प्राप्त कर चुके है। तजोर के 'स्वामी वर्क' के सम्बन्ध मे रुस्तम जे० मेहता ने लिखा है—

"The encrusted Swami work of the south is justly famous. It has been described as consisting of 'mythological medallions and canopied niches in imitation of the encrusted and agglutinated style of work which is characteristic of all South Indian art."

सग्रहालय का यह जल-पात्र अथवा ढक्कनदार लोटा गत् शताब्दी की एक सुन्दर कला-कृति है। पात्र मे गोलाकार मे मिथुन-आकृति है। एक ही नमूने की आठ बार आवृत्ति की गई है। एक पुरुष जिसकी वेश-भूषा सामान्य नागरिक की है, एक स्त्री के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर रहा है। इस विषय-वस्तु का किसी धर्म-कथा से सम्बन्ध नही जान पडता। वेश-भूषा तथा आभूषण आदि से जल-पात्र का शिल्प, लोक-कला और शास्त्रोक्त भावमय मूर्ति-शिल्प के बीच की कडी जान पडता है। अडाकार, कटावदार आकृतिओ के बीच मे जहाँ शिल्पी ने खाली स्थान देखा, वहाँ उसने कटावदार पत्तियो को बना दिया। पात्र मे ढक्कन और गर्दन के ऊपर भी फूलो और कटावदार लम्बी पत्तियो का अलकरण दिखलाई देता है। आकार ९" × ८ ५"

ब. ८—नरसिंह मूर्ति

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १९वी शताब्दी। विष्णु के दशावतार का शिल्प मे अकन गुप्त-वाकाटक कला की देन है। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर दक्षिण भारत के धातु-शिल्पियो ने विष्णु, राम व कृष्ण के अतिरिक्त कूर्म, मत्स्य, वामन, परशुराम और नृसिह आदि अवतारो की मूर्तियाँ तैयार की है। श्रीमद्भागवत् की कथा के अनुसार हिरण्यकश्यप को यह वर प्राप्त था कि उसे देव, मानव, पशु या कोई जन्तु मार नही सकता। न वह किसी आयुध से मारा जा सकता था। विष्णु ने उस आततायी के सहार के लिए नर और सिह का सम्मिलित-रूप धारण किया और एक खम्भे को विदीर्ण कर उसमे मे प्रकट हुए। विष्णु की नृसिंहावतार मूर्तियो मे मनुष्य के शरीर पर सिह का मुख दिखलाया जाता है। उनके चार भुजायें होती है जिनमे से दो मे पद्म और चक्र रहते है और शेष दो हाथो से वे नखो द्वारा हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण करते दिखलाये

जाते है। नृसिह के वस्त्र, आभूषण आदि देवता के रहते है। 'योग-नृसिंह' मूर्तियो मे वे ध्याना-वस्थित दिखलाई देते है। वे योगासन लगाये रहते है। 'लक्ष्मी-नृसिंह' प्रतिमाओ मे उनकी गोद मे लक्ष्मी आसीन रहती है।

सग्रहालय की इस छोटी सी किन्तु लाक्षणिक, सुन्दर मूर्ति मे नृसिह विकराल मुद्रा मे हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण करने के लिए उद्यत दिखलाई देते है। आकार ३" × २½"

ब. ६—लक्ष्मी

धातु, पीतल, दक्षिण-भारत, १६वी शताब्दी। प्रफुल्लित पद्म की गोलाकृति मे लक्ष्मी का ढलाई मे तैयार किया गया चित्र, जिसमें देवी लक्ष्मी एक आसन पर बैठी है और गज उनका अभि-षेक कर रहे है। आकार ६ व्यास"

ब. १०—अप्सरा-मूर्ति

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १६वी सदी। यह एक सौन्दर्यवती नारी की धातु-प्रतिमा है जिसको देह-यष्टि की भगिमा बडी मनोरम है। शरीर का एक-एक अवयव बडी सुगढता से ढाला गया है। मुख पर मन्द स्मित है। सिर पर पत्राकार मुकुट है और एक हाथ उठा हुआ है। आकार ५" ऊँचाई

ब ११—नारी-मस्तक

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, आधुनिक। किसी नारी का केवल मुख-भाग यह अलग से ढाला गया है। आकार ४ ५"

ब. १२—बाल-कृष्ण

धातु, पीतल, राजस्थान, आधुनिक। इसमे कुछ मास के शिशु कृष्ण हाथ मे माखन लिए हुए घुटनो के बल चलते दिखलाये गये है। उनके माथे पर किरीट है। मूर्ति के नीचे आधार नही है।

इन मूर्तियो के अतिरिक्त इस कक्ष मे दक्षिण भारत की अन्य कलापूर्ण वस्तुए भी है। देव प्रतिमाओ के कई प्रकार के आसन, शिव मन्दिर, नाग-मूर्ति और पार्वती की एक छोटी मूर्ति के अतिरिक्त अत्यन्त सुन्दर चम्मचें इस अलमारी मे रक्खे गये है। चम्मचो के सिरो पर वेणुवादक कृष्ण, नाग आदि बने हुए है।

इस स्थान पर ही कुछ ऐसे पात्र रक्खे गये है जिन पर फारसी मे कुरानें की आयते आदि लिखी गई है। उनका अन्यत्र उल्लेख किया जा रहा है।

नेपाल की धातु-मूर्तियाँ : विवरण

स. १—ग्रवलोकितेश्वर

धातु प्रतिमा, ताँबा, नेपाल, १७ वी शताब्दी। बोधिसत्व ग्रवलोकितेश्वर की यह प्रतिमा ग्रष्ट-भुजी है। उनके दाहिने हाथो मे से एक मे ग्रक्षमाला है ग्रौर दूसरे मे पाश। तीसरा ग्रपने श्रद्धालु उपासको को वर दे रहा है ग्रौर चौथा ग्रभय-मुद्रा मे ऊपर उठा है। उनके बाँये हाथो मे पुस्तक, ग्रकुश, प्रफुल्लित पद्म तथा मगल-कलश है। वे भुजाग्रो मे वलय, ककण तथा गले मे हार पहने हुये है। कानो मे प्रफुल्लित पुष्पो की ग्राकृति के कुण्डल है। उनके सिर पर पॉच पत्रो का मुकुट है जो पाँच ध्यानी बुद्धो का प्रतीक है। उनके कधे पर यज्ञोपवीत की भॉति मणि बन्ध पडा है ग्रौर कमर मे मोतियो की कटि-मेखला है, जिसमे रत्न जडे हुये है। उसकी लडियाँ धोती के ऊपर भी झूल रही है। मस्तक के ऊपर जटा-जूट मे उनके ध्यानी बुद्ध ग्रमिताभ की छोटी सी प्रतिमा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रवलोकितेश्वर की ही धातु-मूर्ति है। श्री विनय तोष भट्टाचार्य ने ग्रपने ग्रन्थ 'इण्डियन बुद्धिस्ट ग्राइकनोग्राफी' मे ग्रवलोकितेश्वर के १०८ विविध रूपो का उल्लेख किया है। उनको देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रतिमा उनमे से किसी रूप से लक्षणो मे सादृश्य नही रखती। बोधिसत्व की इस धातु-मूर्ति पर सोने का पानी चढा हुग्रा था, जोकि ग्रब उतर गया है किन्तु उसके चिन्ह शेष है। भाव-व्यजना, शरीर-ग्रवयवो की लुनाई ग्रादि से यह धातु-मूर्ति सग्रहालय की ग्रन्य नेपाली प्रतिमाग्रो की ग्रपेक्षा प्राचीन जान पडती है। मूर्ति पर कोई लेख नही है। आकार—६ २" ऊँचाई

स. २—बोधिसत्व पद्मपाणि

धातु, पीतल, मणियुक्त, नेपाल, १८ वी शताब्दी। नेपाल की यह सुन्दरतम धातु-प्रतिमा सग्रहालय के इस कक्ष की एक कला-निधि है। इस पर सोने का पानी चढा हुग्रा है तथा रक्त-मणियाँ जडी हुई है। मूर्ति के पीछे प्राचीन नेवारी मे एक लेख है जिससे यह निश्चित होता है कि यह ग्रठारहवी सदी के उत्तरार्ध की कृति है। लेख को पढाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पद्मपाणि बोधिसत्व की मूर्तियाँ तथा चित्र सभी देशो मे उपलब्ध होते है। ग्रजन्ता का पद्मपाणि का चित्र विश्व की श्रेष्ठतम कला-कृतियो मे एक माना जाता है जिसमे वे ग्रत्यन्त मोहक मुद्रा मे तनिक तिरछे खडे है। मुख पर शान्ति व करुणा के भाव है तथा एक हाथ मे प्रफुल्लित पद्म है। एलोरा की गुफाग्रो मे भी वे भगवान् बुद्ध के निकट खडे दिखलाये गये है। पद्मपाणि के हाथो मे उनके सृष्टि सचालन का प्रतीक पद्म रहता है।

"ध्यानी बुद्ध ग्रमिताभ ने ग्रपने नेत्रो की ज्वाला से पद्मपाणि का सृजन किया। वे यह कहते हुये प्रकट हुये कि सृजन का बीज रत्न कमल मे ही है।" कमल पृथ्वी का प्रतीक है। पृथ्वी की ग्रष्ट दिशायें कमल के ग्रष्ट दल है।

सग्रहालय की इस पद्मपाणि बोधिसत्व की प्रतिमा मे वे एक गोल पीठिका पर खडे है जिस पर कमल की पत्तियो का ग्रलकरण है। पीठिका एक सिहासन पर रक्खी है जिस पर सामने की ग्रोर चार सिहो की ग्राकृतियाँ दिखाई देती है। पीठिका या चरण-चौकी पर बोधिसत्व के दोनो ग्रोर, नीचे दो मगल कलश दिखलाये गये है ग्रौर उनके निकट ही से पत्र-युक्त दो ग्रन्य कलशो मे से बेले निकलती दिखलाई देती है जिनके सिरे बोधिसत्व के मुकुट के ऊपर जाकर मिल गये है। जिस

प्रकार दक्षिणापत्य की चोल-कालीन प्रतिमाओ मे एक अग्नि-शिखा युक्त प्रभा-मण्डल रहता है, जोकि प्रतिमा को घेरे रहता है, उसी प्रकार इन लताओ और उनकी कटावदार पत्तियो ने पार्श्व-भूमि को आच्छादित कर दिया है। पाँच कटावो की पत्तियो के अलावा इसमे तीन खिले हुये कमल के अष्ट दलीय पुष्प दिखलाई देते है। उनके बीच मे रत्न जडे हुये है। एक कमल की नाल उनके बाँये हाथ मे है। इस कमल की तरह शेष तीन कमलो से भिन्न प्रकार की है। बोधिसत्व के दाहिने हाथ की मुद्रा वरद है। पद्मपाणि राजकीय परिधान धारण किये है। वे एक पतली धोती पहने है जिसमे से अग झलक रहे हैं। कधो पर उत्तरीय पडा है। उसके छोर नीचे दोनो ओर घुमाव देकर इस प्रकार मुड गये है कि मूर्ति की शोभा और भी बढ गई है। आराध्य तनिक भगिमा मे तिरछे से खडे है। उनके मुख पर चिन्तन का भाव है। उनके माथे पर रत्न-जडित मुकुट है, जिसके पीछे से उनकी बधी हुई जटा दिखलाई दे रही है। उनके कानो मे गोल कुण्डल है, गले मे हार है व बडे-बडे मोतियो की लम्बी माला है, जो कि उनकी नाभि तक आ गई है। कटि मे करधनी है, जिसमे रत्न जडे हुये है और दोनो ओर मोतियो की लडियाँ झूल रही है। उनके हाथो मे वलय व ककण है व पैरो मे भी कडे है।

पद्मपाणि बोधिसत्व की यह मूर्ति अधिक पुरानी न होने पर भी बहुत भाव-युक्त और सुन्दर है। इससे स्पष्ट है विगत्-शताब्दियो तक नेवारी शिल्पियो ने अपनी कला की यशस्विनी परम्परा को सजीव रक्खा था। आकार १ फुट ३ इच

स. ३—महालक्ष्मी मूर्ति

धातु, पीतल, ऊपर सोने का पानी, नेपाल, उन्नीसवी सदी। देवि महालक्ष्मी की एक अपेक्षाकृत बडी धातु-प्रतिमा बीच मे है और उनके दोनो ओर तीन-तीन देवियाँ है। देवी महाराज लीला आसन से बैठी है। उनका घुटना कुछ उठा है जिस पर दाहिना हाथ रक्खा है, दूसरा हाथ पीछे टिका है मानों वे विश्राम कर रही हो। वे धोती पहने है और कधे पर उत्तरीय पडा है जिसके दोनो छोर भुजाओ मे लपेटा देकर पीछे की ओर गये है। देवी के गले मे हार तथा नाभि का स्पर्श करती हुई मुक्ताओ की माला है। उनके कानो मे लम्बे कुण्डल है और सिर पर रत्न-जडित मुकुट माथे पर त्रिपुण्ड जैसी तीन रेखाओ के बीच मे लम्बी बिन्दी या तिलका दिखलाई देता है। कन्धो पर केशराशि छिटकी हुई है। पीठिका पर बैठी हुई शेष देवियो को देखकर पहले यह आभास होता है कि यह ब्राह्मी, कौमारी आदि सप्त मातृकाये है किन्तु वस्तुत ऐसा नही है। सभी देवियाँ यद्यपि एक साँचे की ढली हुई नही जान पडती, फिर भी उनमे सादृश्य है वे बीच की महालक्ष्मी प्रतिमा की ही प्रति-कृतियाँ जान पडती है। आकार मे यद्यपि वे छोटी है। देवियो के पीछे पान के आकार का कटावदार अलकरण है। पृष्ठ-भूमि मेपत्तियो और फूलो की एक बेल है, जैसे कि नेपाली मूर्तियो मे प्रभा-मण्डल के स्थान पर दिखलाई देती है। देवि-मूर्तियाँ पीठिका और पीछे की बेल, सभी भाग अलग-अलग ढाले गये है और फिर छेदो मे फँसाये गये है। सभी मूर्तियो पर सोने का पानी है, जिसके कारण वे दमकती है। पीठिका अथवा चरण-चौकी पर सामने तथा पीछे की ओर लेख है जिसके अक्षर बँगला से मिलते-जुलते हैं इसीलिए कुछ विद्वानो का यह अनुमान है कि वस्तुतः यह बगाल की एक कला-कृति है। लेख को अधिकारी विद्वानो द्वारा पढाने की चेष्टा की जा रही है। उसे इस ग्रन्थ के परिशिष्ठ मे प्रकाशित भी किया जा रहा है। आकार ४½″ × ७″

स. ४—तोरण

धातु, पीतल तथा ताँबा, नेपाल, अठारहवी शताब्दी। यह किसी बौद्ध चैत्य का तोरण है

जिस पर नेवारी भाषा में एक लेख है। इस लेख को पढाने का प्रयत्न किया जा रहा है। नेपाल के प्रसिद्ध स्वयभू नाथ के चैत्य मे भी लम्बे शिखर के नीचे तथा चौकोर पीठिका के ऊपर इसी प्रकार के तोरण दिखलाई देते है। तोरण के नोके निकली हुई है और मनुष्य की मुखाकृति है।

स. ५—दीपाधार

धातु, पीतल, नेपाल अठारहवी शताब्दी। तारादेवी तथा अश्वो की मूर्तियो व आकृतियो से शोभित यह दीपाधार किसी देवालय के अधकारमय प्रकोष्ठ को शोभित करता रहा होगा। दीपाधार के, जो लम्बे आकार का है, दो भाग अलग-अलग करके ढाले गये है और फिर उन्हे मिला दिया गया है। उनमे एक दण्ड का नीचे का भाग तथा दूसरा ऊपर का शीर्ष भाग है। नीचे के भाग मे गोल आधार है जो क्रमशः ऊपर छोटा होता गया है। उसके ऊपर कटाव देकर अलकरण किया गया है। आधार के ऊपर स्तम्भ है जिसके ऊपर सुन्दर पत्तियो की बेल लिपटी हुई है। ऊपर के शीर्ष भाग मे मन्दिर की आकृति दिखलाई देती है। मन्दिर शिखर-युक्त है और उसका गुम्बद कमल की आकृति का है जिसकी पखुडियाँ नीचे की ओर झुकी हुई है। मन्दिर के छज्जे बाहर की ओर चतुष्कोण मे निकले हुए है जिन पर चार पक्षियो की आकृतियाँ बनाई गई हैं। मन्दिर के चारो द्वारो मे बीच मे तारादेवी की मूर्तियाँ है, जिससे यह निश्चित होता है कि यह दीपाधार किसी बौद्ध सघाराम का है। तारादेवी एक आसन पर बैठी हुई है। उनके दोनो ओर सिंहो की आकृतियाँ है। मन्दिर के चारो कोनो पर चार दीपक है और उनके निकट अश्व है। अपनी दोनो अगली टापे उठाये यह अश्व अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते है। दीपाधार अत्यत कलापूर्ण है और नेवारी शिल्पियो की धातु-कला का एक श्रेष्ठ नमूना है। आकार—१ फुट, १० इच

स. ६—बोधिसत्व

धातु, पीतल, नेपाल १८वी शताब्दी। बोधिसत्व, एक चौकी पर, जिस पर सिंहो की आकृतियाँ उत्कीर्ण है, खडे हुये है। उनकी यह धातु-मूर्ति अष्टभुजी है। उनके करो मे अकुश, अक्षमाला, पुस्तक-पृष्ठ, पाश तथा कमन्डलु है। उनके दोनो हाथो की मुद्रायें वरद तथा अभय है तथा एक हाथ मे भग्न है। बोधिसत्व के शरीर पर रत्न-जडित हार, मुकुट तथा मेखला शोभित है। पीछे प्रभामण्डल मे कमल-पुष्पो तथा मकरो का अलकरण है।

स ७—अवलोकितेश्वर की मूर्ति युक्त झारी

धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवी शताब्दी। इस झारी मे एक दीपक भी लगा है। इस प्रकार की झारियाँ नेपाल मे गत् शताब्दी से बनती आ रही है। जिनके चित्र, सर जान ह्वाट ने अपने ग्रथ 'इडियन आर्ट एट देहली' मे प्रकाशित किये है। इस फलक मे नेपाल की दो झारिया है, जो सग्रहालय की इस झारी अथवा दीपाधार से इतना सादृश्य रखती है मानो उनकी ढलाई एक ही साचे से हुई हो। नेपाल मे इसी प्रकार की हिन्दू देवताओ की मूर्ति सहित झारी भी बनती थी। सर जान ह्वाट ने इन नेपाली दीपको अथवा झारियो के सम्बन्ध मे लिखा है

"From Nepal has been received a fine display of hanging, standard and hand lamps, perhaps the best series ever shown at any Exhibition (see Plate N. 12 on left hand side) Of these may be mentioned a brass lamp 6½ feet high, Rs. 1,314, a brass standard lamp with figures of Ganesh and Bharow, Rs. 80, and

a brass standard lamp without figures Rs. 180 Two of the Nepal lamps are shown on Plate No. 13".

इस दीप और मूर्ति-युक्त झारी मे सामने की ओर एक बडा (कटावदार) पान की आकृति का दीपक जुडा हुआ है। उसके किनारो पर छोटी-छोटी पत्तियो का अलकरण है। दीपक के नीचे के आधार पर, जिससे उसे साधा गया है पुरुष और नारी की उभरी हुई आकृतियाँ है। दीपक के सामने झारी के मुख से जुडी अवलोकितेश्वर की मूर्ति है और उसके पृष्ठ भाग मे सुशोभन है जैसा कि नेपाली धातु-मूर्तियो मे दिखलाई देता है। अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के तेरह मुख है (जो ऊपर की ओर एक के ऊपर दूसरा उठता गया है और सबसे ऊपर एक मुख रह गया है।) अवलोकितेश्वर, समस्त बोधिसत्वो मे सर्वाधिक पूजित है और उनकी इसी प्रकार की अनेक मुख वाली मूर्त्तियाँ, नेपाल, तिब्बत, भारत, चीनी तुर्किस्तान, मचूरिया, चीन और जापान सभी देशो मे उपलब्ध होती है। बौद्ध मान्यता के अनुसार यह चौथी सृष्टि है जिसका सँचालन अवलोकितेश्वर अथवा पद्मपाणि कर रहे है। अवलोकिश्वर पद्मपाणि का ही एक रूप है जिस पर तान्त्रिक प्रभाव है। अवलोकितेश्वर के अर्थ है, वह देवता जो सबको देखता है। ऋग्वेद मे वरुण और इन्द्र को 'सहस्र चक्षु' कहा गया है। वे सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के कार्य-कलाप को देखते है। यही भावना इस करुणामय देव के साथ भी सन्निहित है।

झारी के हत्थे के स्थान पर सर्प और ऊपर नाग-मूर्ति दिखलाई गई है। नाग की आकृति पुरुष की है और उसके मस्तक पर पाँच फनो का सर्प-मुख है। साँची, भरहुत और अजता आदि के भारतीय शिल्प मे नागो का अकन इसी प्रकार किया है। पुरुष अथवा नारी के ऊपर सर्प का फन दिखलाया जाता है जो कि यह प्रकट करता है कि वे नाग जाति के है। पुरुष के सिर पर पाँच या सात फनो का मुख रहता है और नारी के मस्तक पर एक—

इस प्रकार की झारियाँ नेपाल मे इन दिनो भी बनती है। नई दिल्ली मे जनपथ पर तिब्बतियो की दूकानो से विदेशी पर्यटक उन्हे खरीद ले जाते है किन्तु वे केवल भद्दी और कलाहीन प्रतिकृतियाँ ही रहती है।

स. ८—भगवान बुद्ध, भूमि-स्पर्श मुद्रा

धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवी शताब्दी। भगवान् बुद्ध भूमि-स्पर्श मुद्रा मे बैठे है। इस मुद्रा के सम्बन्ध मे बौद्ध वाङ्मय मे यह उल्लेख आता है कि जिस समय भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व की उपलब्धि नही हुई थी उस समय वासना के स्वामी मार-पिशुन ने उनकी साधना भ्रष्ट करने के लिये उनको भाति-भाति के प्रलोभन दिये किन्तु जब वे अपने ध्येय से विचलित न हुये तब उसने अपनी सेना लेकर उन पर आक्रमण किया। किन्तु सिद्धार्थ तो यह सकल्प करके बैठे थे कि "चाहे मेरा चमडा, नसे, हड्डी ही क्यो न बाकी रह जॉय, चाहे शरीर, मॉस, रक्त क्यो न सूख जाय आसन को नही छोडूगा।"

". मार वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड और अधकार-वृष्टि से बोधिसत्व को न भगा सका। (फिर) बोधिसत्व के पास आकर बोला, "सिद्धार्थ इस आसन से उठ, यह तेरे लिये नही मेरे लिये है। "महासत्व ने उसके वचन को सुनकर कहा "मार! तूने न दस पारमितायें पूरी की, न उप-पारमितायें, न परमार्थ की पारमितायें, न पाँच महान् त्याग ही तूने किये, न जाति के हित का काम, लोक-हित का काम, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिये नही है, यह मेरे ही लिये है।"

मार ने महापुरुष से पूछा "सिद्धार्थ तूने दान दिया है, उसका कौन साक्षी है ?" महापुरुष ने, "यह अचेतन ठोस महा पृथ्वी है, कह चीवर के भीतर से दाहिने हाथ को निकाल, "मेरे दान की तू साक्षिणी है", कहा और पृथ्वी की ओर हाथ लटका दिया । मार-सेना दिशाओ की ओर भाग चली । (बुद्धचर्या, पृष्ठ १६) भगवान् बुद्ध की यह मुद्रा असख्य प्रतिमाओ मे दिखलाई गई है । इसमें आराध्य वज्रपर्यक आसन से बैठे रहते है । उनका दाहिना हाथ, जिसकी हथेली भीतर की ओर रहती है, खुला रहता है । उगलियो की नोक से वे पृथ्वी का स्पर्श करते है ।

सग्रहालय की इस ठोस मूर्ति मे बुद्ध एक आसन पर बैठे है । उनका शरीर एक चीवर से आच्छादित है । केवल दोनो हाथ बाहर निकले है । उनका दाहिना हाथ और कधा भी खुला है । उनके कानो मे बडे-बडे बाले है । सिर पर मुढे हुये बाल हैं और ऊपर ककुद् है । माथे के ऊपर छोटे-छोटे काच के टुकडे लगे थे जिसमे से कुछ निकल गये है ।

स. ९—बोधिसत्व मूर्ति

बोधिसत्व, मूर्ति धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवी शताब्दी । बोधिसत्व की यह मूर्ति अधिक प्राचीन नही जान पडती । मूर्ति वस्तुतः ताँबे की है जिस पर सोने का पानी चढाया गया है जो कि अब मिट चुका है । ढलाई भी उत्कृष्ट कोटि की नही है । माथे और नेत्र की रेखाये ढलाई के बाद ही काटी गई है ।

बोधिसत्व महाराज लीला आसन से बैठे है उनके एक हाथ में कमल का नाल है और दूसरे हाथ मे वे पुस्तक का एक पृष्ठ लिये है । पुस्तक के पृष्ठ से प्रज्ञापारमिता का अभिप्राय व्यक्त होता है । बोधिसत्व घुटनो तक की धोती पहने है जिसपर फूलो का कटाव है । मूर्ति मे रूढिगत तत्वो का समावेश है ।

स. १०—अलंकृत पात्र

धातु, पीतल, नेपाल, १९वी शताब्दी । यह देव-मूर्ति युक्त पात्र गोलाकार है और उसके ऊपर एक ढक्कन लगा है । ढक्कन पीतल की जजीर से पात्र के साथ बधा हुआ है । उसके ऊपर बारह पखुडियो के विकसित कमल की आकृति है । पखुडियाँ खिली है और उन पर अलकरण है । ढक्कन की ढलाई के समय शिल्पी ने उसमे ऐसा कटाव दिया है जिससे कमल-दल व अलकरण अधिक स्पष्ट हो गये है । पात्र के भीतर रक्खी हुई वस्तु मे हवा लगती रहे, इसका ध्यान रक्खा गया है ।

पात्र जो कि गोलाकार है, तीन पायो पर टिका है । पायो की आकृति सिंह के पजो जैसी है । पायो के बीच मे घुमावदार पत्तियो की 'तरह' है । पात्र के बीच मे कटाव मे बोधिसत्व और शक्ति की आकृति है । पात्र पुराना होने के कारण घिस चुका है फिर भी देव-आकृतियो मे लुनाई दिखलाई देती है । बोधिसत्व, जिनके माथे पर मुकुट शोभित है, अत्यन्त मोहक मुद्रा मे एक वृक्ष के सहारे खडे है । उनका एक हाथ अभय-मुद्रा मे उठा है और दूसरे हाथ से वे शक्ति का आलिंगन कर रहे है । शक्ति त्रिभग मुद्रा मे खडी है, अपने मुख को स्वामी की ओर से तनिक-सा तिरछा किये हुए—मानो लज्जा आ रही हो। देवाकृतियो मे लावण्य और मृदुता का सुन्दर सगम हुआ है । लम्बे छरछरे बदन पर अधिक आभूषणो का भार नही है । ढलाव मे गोलाई मे यही आकृति आठ बार दिखलाई गई है । आकार ७ ५"

स ११—वज्र

धातु, पीतल, नेपाल १९ वी सदी । बौद्ध-दर्शन मे वज्र को शून्यता का प्रतीक माना गया है ।

शून्यता को वज्र की तुलना क्यो दी गई इसके भी कारण है, शून्यता का ज्ञान जो निर्वाण की ओर प्रेरित करता है वह तथा वज्र अथवा हीरक दोनो ही मूल्यवान है। इसके अतिरिक्त यह दोनो ही अभेद्य हैं अर्थात् इन्हे कोई भेद नही सकता। डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने वज्र की प्रतीकात्मकता के सम्बन्ध मे लिखा है—

"In Buddhist Tantra the word generally designates Shunya or Void, which cannot be cut, cannot be destroyed, but which destroys all evils."

सग्रहालय के इस वज्र मे ऊपर सिरे पर पर गोलाकार मे क्रोधी देवता वज्रपाणि की एक ही प्रकार की चार आकृतियाँ है। वज्रपाणि की आकृति अत्यन्त भयानक है। उनके मुख मे से दो विकराल दात बाहर निकल रहे है। उनकी गोल-गोल फटी हुई सी आँखे वज्रपाणि की आकृति को और भी भयानक बना रही है। मुखो के ऊपर अश्व का मुख है। वज्र मे कमल की पखुडियो का अलकरण है। नीचे भाले के आकार का फल है जो हाथी के मुख से निकलता दिखलाया गया है। फल पर सर्प घूम रहे है। आकार ७ ५"

स.—१२ चैत्य

धातु, ताबा, नेपाल, प्राचीन। चैत्य तथागत के निर्वाण का प्रतीक है। यह ताँबे की चैत्य की आकृति है जिसकी नीचे की पीठिका पर वज्र और चक्र की आकृतियाँ हैं। पीठिका पर शिखर है, जिससे नौ चक्कर है। उसके ऊपर प्रफुल्लित पद्म है, जिसके ऊपर सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ दिखलाई देती है। चैत्य या स्तूप के सम्बन्ध मे मैंने अपनी पुस्तक "लद्दाख," मे लिखा है—

"बौद्ध मान्यता के अनुसार स्तूप या चैत्य निर्वाण के अतिरिक्त ब्रह्माड का प्रतीक भी है। उसके ऊपर के शीर्ष भाग मे नौ चक्र अथवा घुमाव रहते है जो कि भिन्न-भिन्न स्वर्गों के प्रतीक है। सर्वोपरि विन्दु मे सुमेरु की कल्पना की गई है जहाँ बोधि चित्त शून्यता मे परिवर्तित हो जाता है। लद्दाख के स्तूप मे नीचे पीठिका पर ऊँची चौकोर चौकी रहती है और उसके ऊपर छोटी-छोटी सीढियाँ बनी रहती है। फिर लम्बाई लिये अण्डाकार भाग रहता है और उसके ऊपर क्रमश· पतला होने वाला स्तम्भ। इस स्तम्भ मे चक्र अथवा घुमाव रहते हैं। सबसे ऊपरी भाग मे अर्ध-चन्द्र की गोलाकृति रहती है और उसके ऊपर एक छोटा गोल आकार।"

सग्रहालय का यह छोटा सा चैत्य का नमूना इसी प्रकार के चैत्य के आधार पर बनाया हुआ जान पडता है। आकार ५ ५"

स. १३—बोधिसत्व

धातु तथा शीशा, नेपाल १६ वी शताब्दी। पीतल के पतरे से तैयार की हुई बोधिसत्व-मूर्ति जिसके चार भुजाये हैं। (पीतल के शरीर के अवयवो मे हरा काँच जडा हुआ है।) मूर्ति के पीछे प्रभा मडल है जिसमे नीले तथा लाल काच के चमकते हुए टुकडों से जडाई की गई है।

इन वस्तुओ के अतिरिक्त नेपाली वस्तुओ मे पीतल की हस, सुराही, घटाकृति, चाकू रखने का म्यान, चूडियाँ आदि वस्तुये हैं जिनका पृथक् रूप से विवरण देने की कोई आवश्यकता नही है।

कुछ विद्वानो का मत है कि यह ताम्र-चित्र उन मुसलमान कलाकारो के है जिन्हें ईरानी कला की परम्परा पैत्तिक दाय के रूप मे मिली थी। मुगल साम्राज्य के अवनति-काल मे कोई प्रश्रयदाता न होने के कारण यह शिल्पी राजस्थान मे, विशेष रूप से जयपुर चले गये। वही इन कृतियाँ का सृजन हुआ। कुछ विद्वान् इन्हें १९वी शताब्दी से अधिक प्राचीन नही मानते।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन ताम्रचित्रो के पहले बडे-बडे ठप्पे तैयार किये जाते होगे और फिर उनकी ढलाई की जाती होगी। ढलाई के पश्चात् उनपर कटाव का काम किया जाता होगा और फिर अतिम रूप से तराश देकर आभूषण आदि पर सोने का पानी चढाया जाता होगा। यह सोने का पानी इन चित्रो पर अब तक चमकता है। चित्र की भूमि काली हे, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि ताँबे पर काले रग की हल्की वार्निश की गई है। जहाँदार शाह का चित्र शेष चित्रो से भिन्न है और पीपल के मोटे पतरे से तैयार किया गया जान पडता है।

एक बात सहज ही आश्चर्य पैदा करती है। यदि यह ठप्पे से उभार देकर तैयार किया हुआ काम है तो उनके नमूने से इसी प्रकार के और भी ताम्र-चित्र तैयार किये गये होगे किन्तु यह ताम्र-चित्र दुर्लभ है। भारत के किसी अन्य सग्रहालय मे इस प्रकार के ताम्र-पट्ट है या नही, यह भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

द १. सुलतान उमर शेख मिर्जा बादशाह

तैमूर के वशज उमर शेख मिर्जा बादशाह बाबर के पिता थे। वे तुर्क थे। बाबर की माता मगोल वश की थी इसीलिये यह वश मुगल कहलाया। सन् १४९४ ई० मे बाबर को ग्यारह वर्ष का छोडकर सुलतान की दुर्घटना मे मृत्यु हो गई।

इस ताम्र चित्र मे उनके लम्बी ढाढी और मूछो से भरा हुआ चेहरा दिखलाया गया है। उनकी आकृति भव्य और व्यक्तित्व रौबीला जान पडता है। वे सिर पर साफा बाँधे हुए है जो कुछ गोलाई देकर बाँधा गया है। बीच मे गोल कुला है। साफा के ऊपर मोतियो की लडियाँ दिखलाई दे रही है और सामने तुर्रा लगा है। वे एक लम्बा जामा पहने है जिसमे सीधा कटाव देकर बन्द लगाये गये है। इस प्रकार की कटाई के जामे प्राचीन ईरानी चित्रो मे दिखलाई देते है। जामे के ऊपर भी कटाई है और ऐसा लगता है कि उस पर कलाबत्तू का काम किया गया हो गले मे मोटा दुपट्टा है जिसके दोनो छोर नीचे की ओर आये है। दिल्ली मे हाथी दाँत के पतरो के ऊपर भी सुलतान उमर शेख मिर्जा बादशाह के चित्र मिले है। उनसे यह आकृति मिलती है। सुलतान का नाम फारसी मे एक कोने मे लिखा है। आकार २२″ × १७″

द २. बेगम अख्तर जमानी जौजे बाबर बादशाह

सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों का यह ताम्र चित्र धातु-शिल्पियो की श्रेष्ठ कृति है। बेगम का चेहरा गोलाई लिये है और उनके सिर के लम्ब बाल उनके सिर के मुकुट मे से निकल कर कन्धो पर छिटक रहे हैं। सिर का मुकुट कुछ लम्बाई लिये है और उसमे रत्न जडे हुये दिखलाई गये है। मुगल चित्रो के आधार पर श्रीमती जमीला वृज भूषण ने अपने ग्रन्थ 'इडियन ज्वैलरी एन्ड ओरनामैन्टस' मे मुगल बेगमो के कुछ रेखाचित्र प्रकाशित किये है। उस मे उनके मुकुटो के जो नमूने दिये गये है उनसे यह बेगम अख्तर जमानी का मुकुट भिन्न प्रकार का है। वे जो जामा पहने है उसपर फूलो का कटाव है। उनके कानो मे लम्बे बुन्दे, गले मे हार तथा मोतियो की दुलडी मालाये हैं। हार मे नीचे एक बडा रत्न

जढा हुआ है। वे कमर में करधनी या पेटी पहने है जिसमें चार मोटी लडियाँ है और जिसका ठप्पा सामने दिखलाई दे रहा है। आकार २२" × १६"

द—३. कैमरू शाह ईरान और रुस्तम

यह विशाल ताम्रपट्ट किसी ईरानी कलाकार के चित्र पर आधारित जान पडता है। सरोवर के तट पर, जिसमे मछलियाँ आदि दिखलाई दे रही है ईरान के प्रसिद्ध शाहन्शाह कैमरू तथा उनके समकालीन वीर पुरुष रुस्तम अपने अश्वो पर बैठे है। उनके साथ अन्य योद्धा भी दिखलाई दे रहे है। शाहन्शाह की वेषं-भूषा, मुकुट व अलकार अन्य व्यक्तियो से भिन्न है। शेष व्यक्ति योद्धाओ जैसा जिरह बख्तर व नुकीली टोपी पहने है। उनके शरीर बडे बलिष्ठ दिखलाये गये है। आकार ५०" × ३६"

द—४ पोलो का खेल

इस दृश्य मे कुछ पुरुष और स्त्रियाँ घोडो पर सवार होकर पोलो खेल रहे है। पुरुषो तथा स्त्रियो की वेश भूषा और आकृतियो से यह ताम्र चित्र भी किसी ईरानी चित्र पर आधारित जान पडता है।

पुरुष लम्बे कोट पहने है और उनके सिरो पर लोहे की टोपियाँ है जिनमे नोक निकली हुई है। पार्श्व भूमि मे एक पर्वतीय दुर्ग दिखलाई देता है। आकार ५२" × ३६"

द—५ जवाहर मेला अकबरी

यह ताम्र चित्र अन्य चित्रो से भिन्न है क्योकि इसमे सरोवर के तट का एक दृश्य दिखलाया है। सरोवर की पृष्ठ-भूमि मे दूर तक फैले हुये राजभवन दिखलाई देते है जिनकी वास्तु-शैली स्पष्ट रूप से मुस्लिम है। सरोवर के किनारे सीढियोदार घाट है जिन पर पुरुष तथा स्त्रियाँ दिखलाई देते है। सरोवर के बीच मे नौकायें पडी है, जिनके ऊपर मल्लाह बैठे चिलम पी रहे है। ताम्र-चित्र लोक-कला के अधिक निकट है। आकार ५०" × ३५"

द—६. जहाँगीर और नूरजहाँ

बादशाह जहाँगीर अपनी बेगम के साथ बडी भावमयी मुद्रा मे खडे है। उनकी आकृति तथा वेष-भूषा वही है जो उनके चित्रो मे दिखलाई देती है, लम्बा अगरखा, साफे पर मोतियो की लडियाँ गले मे पटका, सुन्दर व्यक्तित्व—

नूरजहाँ अपने हाथ मे पखा लिये खडी है। उनके गले मे चम्पाकली, मोहनमाला तथा मोतियो के झूलती हुई मालाये है। आकृतियाँ अत्यत सजीव है। ५०" × ३५"

द—७ शाहजहाँ और कदीसा बेगम

सुप्रसिद्ध मुगल शाहन्शाह शाहजहाँ अपनी बेगम कदीसा के साथ खडे है। बादशाह के एक हाथ मे फूल है और दूसरा हाथ अपनी राज महिषी के कधे पर रक्खा है जो तनिक तिरछी खडी है। बेगम के हाथ मे मद्य की सुराही है। शाहन्शाह अपने सिर पर लम्बा साफा बाँधे है जैसा कि उनके मुगल चित्र-शैली के चित्रो मे दिखलाई देता है। वे अगरखा पहने है जिसपर फूलो की खिलावट है। उनके कमर मे एक पटका बँधा है जिसमे लम्बी तलवार लटक रही है। कदीसा की कमर मे भी कटार है। आकार ५४" × ३८"

द—८ अकबर शाह सानी

अकबर सानी (सन् १८०६ ई० से सन् १८०७ ई० तक) का यह ताम्र चित्र अपेक्षा-कृत नया होते हुये भी बहुत सुन्दर है। बादशाह किसी गहरे चिंतन मे है, उनके माथे की शिकन यह साफ बतला रही है। उन्होने हुक्के की नली को मुँह से हटा दिया है। उनका चेहरा लम्बा और प्रभाव-शाली है। उनके दाढी और मूछे है। मूछो को ओठो पर से साफ कर दिया गया है। वे सिर पर साफा पहने है जिसके ऊपर जडाऊ पट्टा है और आगे की ओर तुर्रा है। उनके गले मे दुपट्टा पडा है। जामा कलावत्तू का कामदार है जिस पर पत्तियो का कटाव है। आकार २२″ × १९″

द—९ जहाँदार शाह

मुगल बादशाह मोजिउद्दीन जहादार शाह का शासन काल अकबर सानी से पूर्व का (सन् १२१२-१३) माना जाता है किन्तु यह चित्र अकबर सानी के चित्र की अपेक्षा नवीन है। आकृति मे वह स्वाभाविकता आदि नही दिखलाई देती जो अन्य ताम्रचित्रो मे हैं। कटाव भद्दे है। आकार ३८″ × ३८″

द. १०—फानूस

धातु, पीतल, भारत, १९वी शताब्दी। यह किसी दर्बार का फानूस है, जिसको मोमबत्ती लगाकर छत से लटका दिया जाता होगा। जाली के छिद्रो मे से प्रकाश फैलता होगा। कटाई व बनावट बडी कलापूर्ण है।

द. ११—कटोरा

पीतल, भारत, इस गोल कटोरे मे भीतर और बाहर कुरान की आयते खोदी गई है। इसमे जल रखकर, फिर उससे रोगी को छीटे दिये जाते होगे। ऐसा विश्वास पिछले दिनो तक प्रचलित था।

द. १२—मद्य-पात्र

ताँबा, विदेशी पात्र, समय अनिश्चित। इस पात्र पर, जो चाय या मद्य का जान पडता है, किसी भाषा मे लेख है। इस लेख को पढाने की चेष्टा की जा रही है।

तृतीय कक्ष

भारतीय-कला

(आधुनिक)

भारत का शिल्पी मूल-रूप से व्यवसायी नही वरन् कलाकार रहा है। यद्यपि वह किसी ऐसे लोक का प्राणी नही, जहाँ के निवासी सासारिक आवश्यकताओ से ऊपर उठे हो, फिर भी वह अपनी कृति मे अपने को खो देता है। उसकी रचना मे उसका आनन्द भी निहित है। यही कारण है कि उसकी कृति मे एक सजीवता, एक प्राण आ जाते है जो मशीनी चीजो मे नही मिलते। विदेशी दासता मे हमारे शिल्प का पतन भी हुआ। सस्ती, विदेशी वस्तुओ से बाजार पट गये। ढाके की वह मलमल, जिसके एक थान मे अम्बारी सहित हाथी ढक गया था, बीते दिनो की एक कहानी बन गई।

भारतीय स्वाधीनता के उषा-काल मे जागृति की रश्मिया फूटी। देश ने अपने शिल्प की गौरवमयी परम्परा की ज्योति को पुन प्रज्वलित किया। आज देश के विभिन्न भागो मे विविध प्रकार की कलात्मक वस्तुओ का सृजन हो रहा है। इस कक्ष मे इसी प्रकार की वस्तुओ का (प्रान्त के अनुसार वर्गीकरण करके, प्रदर्शन किया गया है। श्रीनगर (काश्मीर) की पेपियर मेशी और काष्ठ-कला, खुर्जा, चुनार, लखनऊ, जयपुर, बीकानेर और नौहर का मनमोहक मृत्तिका-शिल्प, राजस्थान और मैसूर की हाथीदात की आश्चर्यजनक कृतियाँ, कटक की सीग की वस्तुयें, आगरे का सगमर्मर, वाराणसी की ताबे की कलापूर्ण वस्तुये और पजाब की काष्ठ-कला आदि के श्रेष्ठ नमूने इस कक्ष की शोभा है। भारत के विभिन्न प्रान्तो के कला-कौशल का परिचय ही इस कक्ष के उद्देश्य है। सारी वस्तुये शीशे के आकर्षक शो-केसो मे रक्खी गई है और साथ ही शिल्प-विशेष का परिचय पृथक् पट्टिका मे दिया गया है ताकि दर्शक उसके बारे मे पर्याप्त जानकारी लेकर जा सके।

भारतीय-कला : आधुनिक

१. हाथीदांत का भारतीय-शिल्प

यह सच है कि हाथीदाँत के शिल्प को अस्थि होने के कारण उपासना के उपकरणो मे स्थान नही मिला , हाथीदाँत की मूर्तियाँ बनाकर उनकी देव-मन्दिरो मे प्राण-प्रतिष्ठा नही की गई फिर भी अपने सौन्दर्य, चमक और चिकनेपन के कारण हाथीदाँत शिल्पियो और कला के रसज्ञो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। वह ससार के प्राचीनतम शिल्पो मे से एक है। जिस समय मानव की सौन्दर्य-भावना का विकास हो रहा था और वह नये-नये औजारो को निर्मित करने मे लगा था, उस प्राक्-ऐतिहासिक काल की भी हाथीदाँत की वस्तुये ससार के भिन्न-भिन्न भागो मे उपलब्ध हुई है। मोहेंजोदडो के उत्खनन से प्राप्त हाथीदाँत की वस्तुओ की चर्चा हम इस लेख मे ही कर रहे है।

रामायण में हाथीदाँत के शिल्प और उसके कारीगरो का उल्लेख मिलता है। भरत ने राम की खोज के लिये वन-प्रान्तर मे जिन सेवको को भेजा उनमें 'दन्तकार' भी थे। लकाधिपति रावण का भवन हाथीदाँत की कलाकृतियो से सुसज्जित था। हाथीदाँत भवनो के तोरण और वातायनो के वास्तु मे उपयोगी समझा जाता था। महाभारत मे यह उल्लेख है कि राजसूय के अवसर पर कामरूप के नृपति ने सम्राट युधिष्ठिर को अपनी मैत्री के उपहार-रूप हाथीदाँत का पलग और हाथीदाँत के मूंठ की तलवार भेट की थी। इन उल्लेखो से यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवी शताब्दी ईसा-पूर्व मे भारत मे हाथीदाँत की सुशोभन आदि की उपयोगी वस्तुयें बनने लगी थी।

कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र मे लिखा है कि राजा अपने राज्य की सीमा पर वन रखता था और उसमे हाथियो को पालता था। हाथियो का शिकार वर्जित था किन्तु जो व्यक्ति मरे हुये हाथी के दाँत लाकर देता था उसे सवा चार पण पुरस्कार के रूप मे दिये जाते थे। कौटिल्य के समकालीन ग्रीक इतिहासकारो ने भी हाथीदाँत की कलात्मक वस्तुओ का उल्लेख किया है। एरियन ने लिखा है कि राज-परिवार की रमणियाँ हाथीदाँत के भुजबन्द धारण किया करती थी।

हाथीदाँत देखने मे तो बहुत सुन्दर लगता ही है, इसको काटना भी अधिक कठिन नही होता। काटने से पहले मसालो आदि के द्वारा इसे तैयार किया जाता है। पहले हाथीदाँत का टुकडा काट लिया जाता है और फिर रूखानी से उसकी मोटी आकृति तैयार की जाती है। उसके पश्चात् उत्कीर्ण रूप के अगो को तराश-तराश कर स्पष्ट कर लिया जाता है। इस कार्य मे खोदने वाली कलम और बर्मे से सहायता ली जाती है। जब वस्तु तैयार हो जाती है तब मछली के छिलके और खड़िया से उस पर पालिश कर दी जाती है।

जातक-कथाओं में एक कथा सीलव जातक है। उससे ज्ञात होता है कि वाराणसी मे हाथीदाँत के कारीगरो का एक पृथक् बाजार था। उसमे अनेक दुकाने थी। कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

एक बार बोधिसत्व ने गज-रूप में जन्म लिया। उनका शरीर रजत की भाँति श्वेत वर्ण था, नेत्र मणि की भाँति ज्योतियुक्त थे तथा मन क्षमा, करुणा और परोपकार आदि दिव्य-गुणो से पूरित था। एक बार उन्होने वन में बस्ती के किसी आदमी को रास्ता भूलकर भटकते हुये देखा। उसके दु:ख से उनका मन द्रवित हो उठा। वे उस व्यक्ति को अपनी पीठ पर चढाकर वन से बाहर पहुंचा आये। उन्होने बस्ती के उस व्यक्ति से विदा लेते समय कहा कि किसी को यह स्थान न बतलाना। पर वह कृतघ्न निकला। वह जब वाराणसी मे पहुंचा तब घूमते हुये उसने हाथीदात का बाजार देखा। उसने वहाँ काम करते हुये शिल्पियो से पूछा, "यदि तुम्हे जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे खरीदोगे?" शिल्पी बोले, "जीवित हाथी का दाँत तो मृत हाथी के दाँत से भी कही अधिक मूल्यवान होता है तुरन्त उसे ले आओ।" वह अकृतज्ञ मनुष्य एक तेज आरी लेकर फिर उसी वन मे गया। उसने सीलव बोधिसत्व से उनके दाँत की याचना की। बोधिसत्व कभी किसी याचक को विमुख नही करते। उस व्यक्ति की दरिद्रता दूर करने के लिये उन्होंने अपने दाँतो को कटवा लिया।

श्री रे डेविट्स ने जातकों के आधार पर लिखा है कि बौद्ध युग के व्यापारी रेशमी वस्त्र, सुगन्धियो और किमखाव आदि के अतिरिक्त हाथीदाँत व उससे बनी हुई वस्तुओ का व्यवसाय भी करते थे।

मृच्छकटिक नाटक मे हाथीदाँत के तोरण का और वृहत् संहिता में हाथी दाँत की सुलंकृत शैया की चर्चा आती है।

भारत अत्यन्त प्राचीन युग से विदेशों को रत्न, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओ के साथ हाथीदाँत भी भेजता रहा है। दसवी शताब्दी ईसा-पूर्व मे बादशाह सुलेमान को भारत से रत्न, मयूर, तौते, चन्दन तथा हाथीदाँत प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् यह परम्परा आगे बढती हुई दिखलाई देती है। प्रथम शताब्दी तक भारत के रोम के साथ व्यापारिक सम्बन्ध पूरी तरह से स्थापित हो चुके थे। यहाँ से रोम को मोती, शंख, चन्दन व हाथीदाँत भेजे जाते थे। वहाँ से मूगा, मद्य, और शीशा आता था। भारत से रोम जाने वाली वस्तुओ का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता था इसलिये रोम को इन वस्तुओ का मूल्य स्वर्ण के रूप मे चुकाना पडता था। रोम के आभिजात्यवर्ग की स्त्रियाँ मोती के आभूषण पहनने में परस्पर स्पर्द्धा किया करती थी। वे बन्दर, मयूर और तोते भी पालती थी। यह पशु मलावार के बन्दरगाहो से भेजे जाते थे। भारत से रोम को हाथी भेजे जाते थे और हाथीदात भी। विशेष अवलरो पर भारतीय गज रोमन् सम्राट का रथ खीचते थे। रोम के कारु-शिल्पी, हाथीदाँत से

शृङ्गार की वस्तुए कधियाँ और कुर्सियाँ आदि बनाते थे। बचे हुए टुकडो से मेजो और दरवाजो पर सुन्दर पच्चीकारी की जाती थी।

ईसा की प्रथम शताब्दी मे लिखे गये ग्रन्थ पेरिप्लस से रोमन व्यापारियो तथा सर्थवाहो की रोम-यात्रा पर प्रकाश पडता है। जिन बन्दरगाहो से भारत का माल रोम जाता था उनमे भडौच, सुपारा, मुशिर तथा तेलकुण्डा मुख्य थे। इन स्थानो से मोती व रेशमी वस्त्र आदि के साथ हाथीदात भी काफी परिमाण मे लदता था। यह युग रोम का स्वर्ण-युग समझा जाता है। सम्राट् आगस्टस् उन दिनो रोम के राजसिहासन पर आसीन थे। उनकी सद्भावनापूर्ण नीति के कारण यह दोनो सुसभ्य देश, भारत और रोम, एक-दूसरे के अत्यधिक निकट आ गये थे। इस युग मे न केवल व्यापार मे अधिक वृद्धि हुई वरन् दक्षिणापत्य मे रोमन व्यापारियो की बस्तियाँ बस गई। रोम के नागरिको के साथ कुछ शिल्पी भी भारत आये। उन्होने अपने सम्राट् आगस्टस् की स्मृति मे एक भव्य-मन्दिर का निर्माण किया। वे हाथीदाँत और शंखो पर अतीव सुन्दर व कलात्मक आकृतियाँ खोदते थे।

लेम्पेस्कोस से चाँदी की एक बडी तश्तरी उपलब्ध हुई है जिसका समय दूसरी या तीसरी शताब्दी निश्चय किया जाता है।

इस तश्तरी मे एक स्त्री मलमल की साडी पहने हुए एक कुर्सी पर बैठी है। कुर्सी के पाये हाथीदाँत के है। स्त्री की पगडी मे से ईख के दो टुकडे बाहर निकल रहे है। उसके बाँये हाथ मे धनुष है। इस तश्तरी मे एक तोता एक सुनाल पक्षी तथा दो बन्दर दिखलाई देते है। तश्तरी के नीचे के भाग मे दो मनुष्य शेर और चीते को रस्सी मे बाँधे हुए खडे है। मनुष्यो की पीठ पर सामान की गठरियाँ लदी है। डा० मोतीचन्द का मत है कि यह मूर्ति भारत-लक्ष्मी की प्रतीक है और तश्तरी मे उन वस्तुओ को प्रदर्शित किया गया है जो उस युग मे भारत से रोम को भेजी जाती थी। यहाँ से न केवल रोम को वरन् अन्य देशो को भी हाथीदाँत जाता रहा है। मार्को-पोलो ने पूर्वीय देशो से वेनिस की ओर आने वाली जिन वस्तुओ का उल्लेख किया है, उनमे रेशमी वस्त्र, सोना, मोती, हीरे और कीमती लकड़ी के अतिरिक्त हाथीदाँत भी है।

भारत और अरब के सास्कृतिक सम्बन्ध अत्यत प्राचीन है। सन् १४ हिज्री में हजरत उमर से एक व्यापारी ने कहा था, "आठवी शताब्दी मे भारत से अरब और ईराक को चन्दन, कपूर, लोग, लाल, मोती, गिल्लौर, काली मिर्च, मलमल और हाथी-दाँत आदि वस्तुये जाती थी।"

नवीं शताब्दी के एक अरब यात्री ने लिखा है—"भारत के पानी मे मोती और अम्बर होता है। उसके पहाड़ो मे जवाहरात और सोने की खाने हैं। उसके पशुओं के मुख में हाथीदाँत है।"

अरब को हाथी और हाथीदाँत सिन्ध के बन्दरगाहों से जाया करते थे। अरबी के एक कवि अलूजिअज ने जो सम्भवत सिन्ध मे रहा था, भारत के गुणो की सराहना करते हुए लिखा है कि इस देश की मुख्य वस्तुओ मे कस्तूरी, कपूर, अम्बर, चदन, सागौन की लकडी, भाँति-भाँति के इत्र तथा हाथीदाँत है।

भारतीय-कला मे हाथीदाँत के शिल्प के नमूने सिन्धु-घाटी-सभ्यता के समय से ही उपलब्ध होने लगते है, इससे ज्ञात होता है कि प्राक् ऐतिहासिक काल से ही हाथीदाँत कारु-शिल्प का एक माध्यम बन चुका था। गज भारत का एक अति प्राचीन पशु है। उसे पद्म, स्वस्तिक, कुम्भ और चक्र की भाँति सस्कृति के प्रतीको मे स्थान मिला है। गज, विवेक और वैभव का प्रतीक है। मोहेजोदडो की मुद्राओ पर गज की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिली है। सिन्धु-सस्कृति के अवशेषो मे, धातु और मृत्तिका की वस्तुओ की तुलना मे हाथीदाँत की वस्तुये अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हुई है। इससे जान पडता है कि दुष्प्राप्य और मूल्यवान होने के कारण जन-सामान्य मे हाथीदाँत का अधिक प्रचलन न था। सर जान मार्शल का अनुमान है कि सिन्ध प्रान्त मे हाथी अत्यत पवित्र पशु समझा जाता था। उसका शिकार वर्जित था। हाथी की स्वाभाविक मृत्यु के पश्चात् ही गज-दन्त प्राप्त किये जाते थे।

मोहेजोदडो मे समूचे हाथीदाँत के अतिरिक्त उसके कटे हुए टुकडे भी प्राप्त हुये है। हजारो साल के बाद भूमि से बाहर आने के पश्चात् भी वे खराब नही हुए है। मिट्टी मे मिले हुए खारे पदार्थ, उसकी चमक नष्ट नही कर सके है। ई० मैके को मोहेजोदडो की खुदाई कराते समय एक बालिका के अस्थि-पिंजर के निकट एक कघी पडी हुई मिली थी जो कि हाथीदाँत की थी। इस कघी पर दोनो ओर छोटे-छोटे वृत्तो को बनाकर अलकरण किया गया है।

सिन्धु-घाटी के अवशेषो मे मछली और घोघे की आकृति के हाथीदाँत के कुछ खिलौने भी मिले है।

हमे हाथीदाँत के शिल्प की जानकारी के लिये भारतीय ललित-कला के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेनी होगी। मौर्यकालीन-शिल्प मे हाथीदाँत की कोई वस्तु उपलब्ध नही होती। साची के एक शिला-लेख से ज्ञात हुआ है कि द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व मे विदिशा के हाथीदाँत के शिल्पियो ने साची के प्रस्तर-शिल्प को बनाने मे अपना योग-दान दिया था। विदिशा उन शुँगो को वैभवशालिनी नगरी थी, जिनके शासन-काल मे साची के भव्य-स्तूपो का निर्माण-कार्य हुआ। साची के तोरणो और वेष्ठनियो की रचना मे निकटवर्ती नगरी विदिशा के दतकारो का शिल्प-कार्य मे सहयोग देना स्वाभाविक था। साची के शिल्प-लेख से यह भी प्रकट है कि उस युग के कुशल कलाकार प्रस्तर, काष्ठ और हाथीदाँत सभी पर समान-रूप से कार्य कर सकते थे।

बेग्रम (प्राचीन कपिशा) मे, उत्खनन मे ईसा की प्रथम शताब्दी के हाथीदाँत के चित्र-फलक मिले है। उन्होने भारतीय-कला के इतिहास मे एक नया अध्याय जोड़ दिया है। बेग्रम इस समय अफगानिस्तान की सीमा के अन्तर्गत है किन्तु ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों मे वह भारत का एक नगर था। यह चित्र-फलक हाथीदाँत के पतले पतरे पर है। इनकी विषय-वस्तु मथुरा के कुषाण-शिल्प और सातवाहनो के अमरावती के शिल्प से अत्यधिक सादृश्य रखती है, मिथुन, शृङ्गार करती हुई राज-महिषियाँ, कही किसी मदनिका के पैरो से मजीर खिसका पड रहा है, कही अधिक मद्य पी जाने के कारण कोई रमणी बेसुध पडी है। कही करताल और वीणा पर संगीत चल रहा है तो कही नृत्य का समारोह है। इन चित्र-फलको मे मकर और कमल की बेलो आदि से अलकरण किया गया है। कटाव मे मोटा-पतलापन देकर रेखा मे वेग और गति पैदा करने की चेष्टा की गई है। बेग्रम की चित्रकला के यह नमूने अजन्ता और बाघ के गुह-मन्दिरो की चित्रावलियों की भाँति यद्यपि बौद्ध-कला की ही एक देन है किन्तु इनमे हँसता-खेलता, आनन्द लेता लोक-जीवन अधिक उभरा है। यह चित्र पेरिस के मुसी गुमेत् सग्रहालय में है।

मोहेजोदड़ो और बेग्रम की इन कलाकृतियो के मिलने से पहले तक ब्राह्मणाबाद के हाथीदाँत के शतरज के मुहरो को ही सबसे पुरानी शिल्पनिधि समझा जाता था। सिन्ध का यह प्राचीन नगर आठवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भूकम्प मे नष्ट हो गया था। हाथीदाँत के यह मोहरे उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे खुदाई के समय उपलब्ध हुये थे। तत्कालीन अग्रेज अधिकारियो द्वारा यह सुन्दर मोहरे लदन के विक्टोरिया एण्ड एल-वर्ट म्युजियम मे भेज दिये गये।

दसवी शताब्दी का हाथीदाँत के शिल्प का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना अमेरिका के सटिल म्युजियम मे सुरक्षित है। मगध मे पाल और सेन राजाओ के शासन-काल मे, (नवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी तक) ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सभी धर्मों की प्रस्तर और धातु-प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इस धारा को 'मध्यकालीन पूर्वीय-शिल्प-शैली' का नाम दिया जाता है। इस शैली की विष्णु, बुद्ध, बोधिसत्व और तीर्थंकरो आदि की प्रतिमाओ से कलकत्ता का भारतीय सग्रहालय तथा पटना व नालंदा आदि के संग्रहालय समृद्ध हुये हैं। सटिल म्युजियम की यह कला-कृति हाथी दात का एक स्तूप है जिसमें भगवान् बुद्ध, बोधिसत्व और तारा की प्रतिमाओ को गहरा कटाव देकर बनाया गया है। स्तूप की इन मूर्तियों मे आराध्यो की वरद, अभय व भूमि-स्पर्श आदि विविध मुद्राये दिखलाई देती है। सभी प्रतिमाये भावमयी है और कुशल हाथों की सूक्ष्म कला-कृतिया है। पूरे बडे दात पर केवल बहुत होशियार कारीगर काम कर सकता है। जरा सा दोष आते हो समूचे दात को नष्ट कर देना पड़ता है। मामूली लोग टुकडो का तराश कर उन्हे जोड दिया करते है।

हाथीदात के(दसवीं शताब्दी के) इस स्तूप के बाद की कोई कला-कृति उपलब्ध नही होती। राजभवनो के द्वारो पर हाथीदात की पच्चीकारी का काम अवश्य दिखलाई देता है। अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर के दर्सनी-द्वार पर हाथीदात के लाल और हरे रग के टुकड़ो से पच्चीकारी की गई है। यह द्वार सन् १८०२ ई० मे उस समय बना था जब कि महाराजा रणजीत सिह ने स्वर्ण-मन्दिर का पुनरुद्वार कराया था। इस समय हाथीदात के शिल्प के जो अन्य नमूने मिलते है वे सत्रहवी शताब्दी से अब तक के है। राजस्थान मे राज भवनो मे भी इसी प्रकार का काम दिखलाई देता है।

हाथीदात की कला-कृतियो. को तैयार करने का कार्य मुर्शिदाबाद, आसाम, जयपुर, दिल्ली और दक्षिण-भारत के कई नगरो मे गत् दो-तीन शताब्दियो से होता रहा है।

उड़ीसा प्रान्त के पुरी और कटक नगरो मे हाथीदात के सुन्दर खिलौने बनते है। कलिग अथवा उत्कल, हाथीदात के व्यापार के लिये प्राचीन युग से प्रख्यात् है। तोसलिनगर इसकी एक बड़ी मन्डी था, जहाँ से योरोप व एशिया के अनेक देशो को हाथीदात जाया करता था।

कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र मे लिखा है, "कलिग, अग और कामरूप के गज श्रेष्ठ होते है।" शरीर की विशालता तथा बल मे इनकी समता सौराष्ट्र व अपरान्त आदि प्रदेशो मे पाये जाने वाले हाथी नही कर सकते। दुर्भाग्यवश उत्कल के हाथी दात के पुराने नमूने अब उपलब्ध नही है। सन् १६०२ ई० मे दिल्ली की कला-प्रदर्शिनी मे उड़ीसा की दो अतीव सुन्दर कृतियाँ रक्खी गई थी। उनमे से एक वेणु-वादक कृष्ण की मूर्ति थी और दूसरा एक कछुआ था। कृष्ण त्रिभंग-मुद्रा मे खडे हुये वशी बजा रहे थे और उनके मुख पर आनन्द छाया था। इस मूर्ति की विशेषता उसकी लुनाई और सजीवता थी। कछुये पर फूलो का कटाव था। उसकी बारीक कारीगरी आश्चर्य मे डाल देती है। सर जॉन ह्वाट ने इन दोनो कला-कृतियों के चित्र 'दी आर्ट एट दिल्ली' मे प्रकाशित किये है।

दक्षिण में ट्रावनकोर के हाथीदात के शिल्पियों ने विष्णु, शिव, सूर्य और लक्ष्मी आदि हिन्दू देवी-देवताओ की कलात्मक मूर्तिया बनाई। इन नमूनो में एक विशेषता दिखलाई देती है, वह यह कि ट्रावनकोर के शिल्पियो ने चोल और होयसल काल के प्रस्तर-शिल्प की परम्परा को गृहण किया है। जिस भू-भाग मे चिन्नकेशव और हलेबिड़ जैसे भव्य कला-मडपो का निर्माण हुआ हो, वहाँ का शिल्पी अपनी पूर्व परम्परा से प्रेरणा लिये बिना रह भी नही सकता। उसकी कृतियो मे शास्त्रीय तत्व निखरे है और प्रस्तर-शिल्प की भव्यता का समावेश हुआ है। आधुनिक वस्तुओ मे यह विशेषता कम होती हुई दिखलाई देती है।

आसाम, हाथीदात की कलात्मक वस्तुओ के लिये बहुत दिनों तक प्रख्यात् रहा है। अहोम राजाओ के शासन-काल मे यह आसाम की एक मुख्य कला समझी जाती थी। कुशल शिल्पी इन राजाओ के दरबार मे वेतनभोगी कर्मचारी के रूप मे जीवन-पर्यन्त काम किया करते थे। उनका एक समाज बन गया था जिसे 'खनिकर समाज' कहा जाता था। यह कारीगर आसाम के राजा तथा उनके सामन्तो के लिये वस्तुये बनाने मे लगे रहते थे। उन्हे अपने उदर-पोषण के लिये अधिक माल तैयार करने की चिन्ता न रहती थी। स्तर उत्तरोत्तर ऊचा उठता जावे और स्वामी प्रसन्न व सतुष्ट रहे, इसका उन्हे ध्यान रहता था। अहोम राजाओ के यहाँ हाथी रहते थे और हाथियो का जगलो मे शिकार भी होता था इसलिये कारीगरो को पर्याप्त मात्रा मे हाथीदात मिल जाता था और उनका काम कभी रुकता न था। राजा खनिकरो को भूमि और रहने के लिये स्थान भी देता था।

आसाम मे ब्रिटिश शासन स्थापित होने के साथ ही हाथीदात के गृह-उद्योग के दुर्दिन आ गये। राज्य का प्रश्रय छिन गया। जन-सामान्य कघी, पेपर कटर और चाकू आदि अल्प मूल्य की छोटी-मोटी वस्तुओ की खरीद करता था। कभी-कभी कोई अफसर नमूना देकर बड़ी वस्तु भी तैयार करा लेता था। अग्रेजी शासन मे कारीगरों को हाथीदात की उपलब्धि कठिन हो गई क्योकि कानून बन जाने से आसाम मे हाथी का शिकार वर्जित हो गया। जो हाथी स्वाभाविक मृत्यु से मर जाता है अथवा नागा लोग अपने इलाको से जो हाथी मार कर लाते उन्हे कलकत्ते के व्यापारी डिब्रूगढ के बाज़ार मे ऊची कीमत देकर खरीद लेते। इन विरोधी परिस्थितियो मे हाथीदात के कारीगरो को इस व्यवसाय से अपनी गुज़र चलाना कठिन हो गया। उन्होने उसे छोड़ दिया। राजाओ द्वारा मिली हुई भूमि में वे खेती करने लगे। वही उनका मुख्य पेशा बन गया। जिस प्रदेश का हाथीदात का शिल्प सारे भारत मे प्रख्यात्था वहा केवल इने-गिने कारीगर रह गये।

अब यह गृह-उद्योग पुन. जागृत हो रहा है और शासन द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त कर रहा है। आसाम की हाथीदात की मडी से राजस्थान व अन्य प्रान्तो मे हाथीदात और उसके टुकडे भेजे जाते है। उत्कृष्ट कोटि का कार्य अफ्रीका के हाथीदात से होता है।

मध्य-काल से जयपुर ललित-कलाओं का केन्द्र रहा है। दिल्ली के कलाकारो ने मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् जिन राज्यो मे प्रश्रय लिया उनमे जयपुर मुख्य था। दिल्ली के शाहन्शाहो और आमेर के नृपतियों की मैत्री की परम्परा अत्यत प्राचीन थी इसलिये दिल्ली व आगरे के शिल्पी जयपुर आ गये। चित्रकला, हीरो की कटाई, सगमर्मर की मूर्तियां तथा धातु की कलात्मक वस्तुओ के सृजन के साथ ही हाथीदाँत के शिल्प का भी विकास हुआ। यह परम्परा अब भी सजीव है। जयपुर के शिल्पी आसाम से हाथीदाँत मगवाते है और फिर अपनी मामूली रेती, करौती या

छोटे बर्मे से हाथीदांत के टुकडों को सुन्दर कला-कृति का रूप दे देते है। वीणापाणि सरस्वती, पद्मासना लक्ष्मी और वेणुवादक कृष्ण आदि की आठ-दस इच तक की प्रतिमाये यह शिल्पी गढते है और फिर उन मूर्तियो मे बडी बारीकी से आभूषण, रत्न-जडित मुकुट आदि बनाते है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इन मूर्तियो को भले ही कला का अति-उत्कृष्ट नमूना न समझा जावे परन्तु इनकी सुन्दरता दर्शको की दृष्टि को अनायास ही अपनी ओर खीच लेती है। अम्बारी सहित हाथी, हाथियो के पुल और सजे हुए ऊट आदि पशु न केवल भारत मे ही बहुत बिकते है वरन् विदेशो मे भी इनकी काफी माग रहने लगी है। अभिजात्य-वर्ग अपना ड्राइग-रूम सजाने मे इन वस्तुओ व खिलौनो का उपयोग करता है। हाथीदात की अलकार-मजूषा, शतरज की मुहरे, टेबिल-लैम्प और अशोक-स्तम्भ आदि की भी काफी माग रहती है।

जयपुर के हाथीदात के शिल्पियो को इस कला मे इतनी दक्षता प्राप्त है कि माला के एक खोखले दाने मे सौ हाथियो तक को स्थान मिल जाता है। राजस्थान मे हाथीदात का दूसरा केन्द्र मेडता है जो कि हाथीदात के चूडे के लिये पिछली शताब्दी से प्रसिद्ध रहा है। जोधपुर और बीकानेर के इलाको मे इन चूडो का अब भी प्रचलन है। उन्हे लाल व हरा रगा जाता है। विवाह के समय वधू का मामा उसे मेडता का बना हुआ हाथीदात का चूडा भेट करता है जिसे वधू मागलिक-चिन्ह समझ कर वर्ष भर धारण करती है। पिछली शताब्दी मे अलवर मे भी हाथीदात की कला-पूर्ण वस्तुयें बना करती थी। सन् १९०२ मे दिल्ली की कला-प्रदर्शिनी मे अलवर के किसी कारीगर के हाथ का बना हुआ ऊट और उसका सवार आया था। ऊट की हाथीदात की लगाम मनुष्य के बाल से अधिक मोटी न थी। भरतपुर मे हाथीदात का पतला तार तैयार किया जाता था। उससे चटाइयां बनती थी।

आजकल दिल्ली हाथीदात की एक प्रमुख केन्द्र बनती जा रही है। विभिन्न प्राती के कुशल कारीगर यहा के व्यवसायिक सस्थानो के द्वारा अपनी कृतिया देते जा रहे है। हाथीदात की वस्तुओ के खरीदार मुख्य रूप से विदेशी पर्यटक है। दिल्ली के हाथीदात के शिल्प की विशेषता, उसके पतले पतरो पर अकित चित्र है। मध्यकाल की कला मे इस प्रकार की हाथीदात की चित्रकारी के नमूने उपलब्ध नही होते। यह कला अठारहवी, उन्नीसवी शताब्दी मे मुगल चित्रकला की एक शाखा के रूप मे पनपी। दिल्ली के चित्रकारो ने हाथीदात के अडाकार पतरे तैयार करके उन पर मुगल बादशाहो और बेगमो के रगीन चित्र तैयार किये। दिल्ली के यह चित्रकार झीने कागज पर चित्रो के खाके तैयार करके रख लेते थे। उन्ही की सहायता से आकृति उतार कर फिर उनमे रग भरते थे। इस प्रकार के चित्र जयपुर मे भी बनने लगे है।

हाथीदात की कलात्मक वस्तुओ का एक बडा उत्पादन-केन्द्र बगाल प्रान्त का

मुर्शिदाबाद नगर समझा जाता था। कुछ शताब्दियो पहले मुर्शिदाबाद के कला-प्रिय नवाबो ने दिल्ली से हाथीदात की कला के कुछ माने हुए कारीगरो को अपने यहा बुलवाया था। मुर्शिदाबाद के कारीगरो ने उन्ही से यह शिल्प प्राप्त किया था। धीरे-धीरे वे स्वय भी इस कला मे पारगत हो गये। उनमे तुलसी नामक ब्राह्मण शिल्पी को बहुत ख्याति मिली। तुलसी ने इस शिल्प मे कुशलता प्राप्त करने के लिये उन नगरो मे अनेक वर्ष बिताये जहा हाथीदात की कारीगरी की वस्तुये बनती थी। तुलसी की कुल-परम्परा के व्यक्ति इस शताब्दी के प्रारम्भ तक हाथीदात की कलापूर्ण वस्तुये तैयार करते रहे। यह भास्कर ब्राह्मण कहलाते थे। भास्करो की आजीविका का मुख्य साधन ही हाथीदाँत की कारीगरी थी। सन् १८८३ की जयपुर की प्रदर्शनी मे लालबिहारी नामक भास्कर शिल्पी पुरस्कृत भी हुए थे।

मुर्शिदाबाद का शिल्पी अन्य स्थानो के कारीगरो की भाति टुकड़ो को जोडकर कोई वस्तु तैयार नही करता था, वरन् वह एक ही टुकडे को लेकर उसमे विविध आकृतिया उभारता था। इस टैकनिक मे बहुत ही कुशल हाथो की आवश्यकता रहती है क्योकि जरा सा दोष आ जाने पर समूचा टुकडा ही बेकार हो जाने का भय रहता है पर यह काम अधिक मजबूत रहता है।

मुर्शिदाबाद के यह कारु-शिल्पी हाथीदात के बडे टुकडो को लेकर उनसे जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा, राजाओ की शोभा-यात्रा, अलकृत बजरे व शिकार के दृश्य आदि बनाते थे। विविधता और सजीवता मुर्शिदाबाद के शिल्प की विशेषता थी। जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा मे हाथी, घोडे और ऊट आदि पशुओ के साथ दर्जनो मनुष्याकृतिया तैयार जी जाती थी किन्तु उनमे से प्रत्येक इतने मनोयोग के साथ बनाई जाती थी कि उसमे प्राण आ जाते थे। शोभा-यात्रा के हाथी, हौदो और अम्बारियो से सजे दिखलाये जाते थे।

मुर्शिदाबाद के शिल्पी देव-प्रतिमाये भी बनाते थे, विशेष रूप से दुर्गा। धीरे-धीरे इन मूर्तियो मे एक प्रकार की रूढता आ गई। दुर्गा-पूजा के समय बहु भुजा-धारिणी, महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा की एक ही प्रकार की मूर्तिया बनने लगी। मुर्शिदाबाद के शिल्प मे दिल्ली की बेल-बूटो की बारीक पच्चीकारी और कटाव न था और न उसे दक्षिणापत्य के शिल्प की भाति पाषाण-शिल्प की गौरवमयी पूर्व-परम्परा मिली थी। मुर्शिदाबाद की कला तो मन को मुग्ध कर देने वाले खिलौनो का ही एक सुन्दर रूप था।

२. बीदर के धातु-पात्र

बीदर के धातु-पात्र अपने गहरे काले रंग और उसके ऊपर चाँदी की पच्ची-कारी के लिये अत्यन्त लोक-प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है। इन पात्रो में लोहे का सम्मिश्रण

नही होता पर यह पात्र कभी तडकते नही, न धीरे-धीरे घिसते है, गिर जावे या जोर का आघात पडे तभी टूटते है। बीदर के पात्र दक्षिण भारत मे, विशेषतया हैदराबाद राज्य मे प्रत्येक सम्पन्न मुस्लिम परिवार की शोभा समझे जाते है। गृह-स्वामी आगत अतिथि का स्वागत बीदर की कलापूर्ण तश्तरी में पान के बीडे रखकर करता है। बीदर के पात्रो की यह परम्परा विगत् चार सौ वर्षो से चल रही है। श्री महमूद मिर्जा की राय मे यह कला बेहमनी और बीदर राज-वशो के शासन-काल मे पनपी और उनके शासन के अन्तिम वर्षो मे और भी निखर कर पूर्णत्व को प्राप्त हुई।[1]

कुछ कला-समीक्षक बीदर की कला के इतिहास को और भी पीछे ले जाते है और इसका श्रेय हिन्दुओ को देते है। 'एशियाटिक जनरल' मे डा० बैन्जमिन हैने ने अपने लेख का प्रारम्भ ही इस प्रकार किया है :

"The Hindus have since time immemorial not only excelled their neighbours in the management of metals for useful and curious purposes but are even acquainted with alloys unknown to our practical chemists. "[2]

अधिकाश समीक्षक इस तथ्य को स्वीकार करते है कि यह कला मूल रूप से ईरान की है। अरब और ईरान मे लौह और ताम्र पात्रो मे सोने और चाँदी से पच्चीकारी की जाती थी।[3] फिर भी बीदर की कला, धातुओ के रसायनिक मिश्रण और पात्रो की सुन्दरता आदि का श्रेय बीदर के उन कारीगरो को ही दिया जा सकता है जो पिछली चार शताब्दियो से अपनी वश-परम्परा के रूप मे इस कुटीर-उद्योग का सरक्षण कर रहे है।

यद्यपि इस शिल्प का प्रचार लखनऊ, काश्मीर तथा अन्य स्थानो मे भी हुआ फिर भी यह बीदर के नाम से जाना जाता है क्योकि इसका मूल स्रोत वही है। बीदर हैदराबाद से दक्षिण दिशा मे ७५ मील की दूरी पर स्थित है। प्राचीन काल मे बीदर हिन्दू नृपतियो की राजधानी रहा और मुस्लिमो की विजय के पश्चात् भी इसे बेहमनी राजवश के सुलतानो की राजधानी का गौरव प्राप्त होता रहा।

बीदर के धातु-पात्रो को तैयार करने की एक विशेष प्रक्रिया प्रचलित रही है और वही आज भी चल रही है। इस विधि के तीन अग किये जा सकते है, ढलाई, पच्चीकारी और पालिश। ढलाई के लिये कलाकारो के पास विविध वस्तुओ के विभिन्न आकार के लाल मिट्टी के साँचे होते है। ढलाई के पश्चात् कारीगर रेती और

---

१. हैदराबाद आर्ट, आर्क्योलाजी एण्ड हेण्डीक्राफ्टस, पृष्ठ ३४।

२. एशियाटिक जनरल, मार्च, १९१७, इडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ ४६।

३. दी हैण्डीक्राफ्टस आफ इडिया, पृष्ठ ६३।

लकडी पर पालिश करने के बालू लगे हुये कागज के जरिये वस्तु को साफ करता है। उसके बाद वह पात्र पर विविध प्रकार की नक्काशी खोदता है और उसको चॉदी के पतले तार की पच्चीकारी से भर देता है। इस कार्य मे वह लोहे के छोटे हथौडे का प्रयोग करता है। यह कार्य बडी कुशलता से किया जाता है क्योकि जोर का आघात लगने से पात्र के टूट जाने का भी भय रहता है।

पात्र पर पच्चीकारी हो चुकने के पश्चात् कारीगर उसके ऊपर सज्जीखार अथवा शोरे और मिट्टी का लेप करता है। यह मिट्टी बीदर के किले मे मिलती है और इसमे कुछ ऐसे तत्त्व रहते है जो रसायनिक क्रिया मे सहायक होते है। अन्य जगहो की मिट्टी मे यह गुण नही होता। कारीगर फिर पात्र को हलकी आग मे रखता है और उसमे इतना परिवर्तन होता है कि पात्र का रग एकदम गहरा काला हो जाता है। चॉदी की पच्चीकारी मे तपने से और भी चमक आ जाती है। उसके बाद शिल्पी उसे अन्तिम रूप देता है। वह पात्र पर यदि आवश्यक हुआ तो कुछ गहरा काला रग चढा देता है।

पात्र की धातु के सम्बन्ध मे कई लेखकों ने फार्मूला दिये है। वस्तुत· इसमे प्रधान धातु जस्ता रहता है। इसमे कुछ अन्य धातुओ को भी मिश्रित किया जाता है। कुछ स्थानो मे रागे को प्रमुख धातु के रूप मे रक्खा जाता है। डा० बैजमिन हैने ने लिखा है कि इसमे २४ भाग रागा और एक भाग ताँबा रहता है।[1] डा० विल्किन्स लिखते है कि इसी प्रकार के, बीदर जैसे पात्र बनारस मे भी बनते है किन्तु वहाँ जस्ता के साथ तॉबा मिलाया जाता है।[2] मुर्शिदाबाद मे शीशा बिलकुल नही मिलाया जाता। लखनऊ मे मुख्य धातु जस्ता रहती है और उसके साथ शीशा, रॉगा और तॉबे का मिश्रण किया जाता था। उन्नीसवी शताब्दी मे इस शिल्प के मुख्य केन्द्र हैदराबाद का बीदर, लखनऊ, पूर्णिया व मुर्शिदाबाद माने जाते थे। थोडा-बहुत काम काश्मीर में भी होता था। सभी स्थानो मे यह कला मुस्लिम कारीगरो के हाथ मे थी।

बीदर के पात्रो पर विविध पशुओ और पुष्पो आदि की आकृतियाँ तैयार की जाती थी। उनमे पोस्ता का फूल शिल्पियो को अधिक प्रिय था। अब तरहो मे वैविध्य और अधिक कलात्मकता आती जा रही है। कारीगर बीदर के प्रसिद्ध दुर्ग और अजन्ता के चित्रो से प्रेरणा गृहण कर रहे है। पहले हुक्को और पानदानो का अधिक प्रचलन था। सम्पन्न मुस्लिम परिवारो मे कन्या का दहेज तब तक पूरा नही समझा जाता था, तब तक उनमे बीदर की बनी वस्तुये, पीकदान, हुक्के, तश्तरियाँ और फूलदान आदि शामिल न हो। इसीलिये लड़की के विवाह से काफी दिनों पहले से कन्या का पिता इन वस्तुओ का सचय प्रारम्भ कर देता था।[3]

---

१. इडियन आर्ट एट दिल्ली, पृष्ठ ४६। २. वही, पृष्ठ ४६।

३. दी हैण्डीक्राफ्ट्स आफ इंडिया, पृष्ठ २६।

आजकल सिगरेट और सिगार बाक्स, ऐश ट्रे, मोमबत्तीदान, शृङ्गारदान और अनेक वस्तुये बनने लगी है। अन्य वस्तुओ के साथ बीदर के कलापूर्ण पात्रो को विदेशी पर्यटक बडे चाव से खरीदते है। यदि वे किसी विशेष डिजायन की कोई वस्तु बनवाना चाहते है तो भारतीय हस्त-कौशल बोर्ड के द्वारा आदेश देकर बनवा भी सकते है।

सर जॉन ह्वॉट ने अपने ग्रन्थ "इडियन आर्ट एट देहली" मे बीदर की कला के दो प्रकार बतलाये है—तेह निशॉ और जर निशा या जर बुलन्द। तेह निशॉ मे पात्र मे गहरा कटाव दिया जाता है और फिर उसे चॉदी के तार से भर दिया जाता है जबकि जर निशॉ अथवा जर बुलन्द मे तरह या डिजायन उभरी हुई रक्खी जाती है। इस प्रकार का काम लखनऊ मे अधिक हुआ करता था। बीदर तेह निशॉ के काम के लिये प्रसिद्ध रहा है और लगभग चार सौ वर्षो की लम्बी अवधि से शिल्पी वश-परम्परा के रूप मे इस गृह-उद्योग की रक्षा कर रहे है। अपनी नीति के अनुसार भारत सरकार और राज्य सरकार शिल्पियो को इस शिल्प-कार्य के लिये भी आर्थिक सहायता या अनुदान दे रही है। कारीगरो की वस्तुओ की मॉग देश और विदेशो मे बढती जा रही है। अन्य कुटीर-उद्योगो की भॉति इस शिल्प का भविष्य भी उज्ज्वल जान पडता है। हैदराबाद के पुरातत्व सग्रहालय मे बीदर की बनी हुई वस्तुओ का एक सुन्दर सकलन है।

३. चन्दन का काष्ठ-शिल्प

भारतीय बृक्षो मे चदन को अपनी सुगन्ध के कारण एक विशेष स्थान प्राप्त है। वैदिक युग का होता यज्ञ की आहुतियो को प्रज्वलित करने से पूर्व घृत, मधु, शर्करा, यव और समिधाओ के साथ चन्दन का चूर्ण भी अपने निकट रख लेता था। चन्दन की सुरभि से यज्ञ-धूम गन्धमय हो उठता था, दिशाये महक उठती थी। फिर चन्दन को उपासना के उपकरणो मे स्थान मिला। साधक भक्ति-भाव से चन्दन घिसकर प्रभु की प्रतिमा के तिलक लगाता। चन्दन पवित्र मानस का प्रतीक है। अविवेकी, विषयुक्त और द्वेषियो के साथ रहकर भी वह अपने गुण-धर्म को नही छोडता, "चन्दन विष व्यापै नही, लिपटे रहत भुजग।"

चन्दन के अनेक उपयोग थे। भारतीय वास्तु शास्त्र के अनुपम ग्रन्थ 'मानसार' का प्रणेता लिखता है कि देव-मूर्ति की पीठिका, रक्त चन्दन, चन्दन और वकुल आदि की रहे तो अन्य काष्ठ की अपेक्षा श्रेष्ठ रहती है। प्राचीन भारत का द्विज वर्ग पवित्रता की दृष्टि से, अपने भवनो के निर्माण मे चन्दन का यथाशक्ति उपयोग करता था।[१]

बौद्ध वाङ्मय से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत मे चन्दन की काष्ठ-

१ आर्चिटैक्चर आफ मानसार, पी के आचार्य पृष्ठ ६०

मूर्तियो का अत्यधिक प्रचलन रहा है। सातवी शताब्दी मे चीन के महापर्यटक श्यूआन् चुआङ् ने कौशाम्बी नगर के एक विशाल विहार मे भगवान् बुद्ध की एक चन्दन-मूर्ति देखी थी, जिसके बारे मे यह विश्वास प्रचलित था कि यह महाराज उदयन की बनवाई हुई है।

"विहार के भीतर बुद्ध की मूर्ति, जो चन्दन की लकडी पर खोदकर बनाई गई है, पत्थर के सुन्दर छत्र के नीचे स्थापित है। वह उदयन महाराज की कीर्ति की द्योतक है।"[1]

श्यूआन् चुआङ् ने अपने यात्रा-विवरण में 'गोशीर्ष चन्दन' का उल्लेख किया है। भगवान् बुद्ध का वह दण्ड जो उन्होने नगरहार के निकटवर्त्ती स्थान हिलो (हिड्डा) मे देखा, गोशीर्ष चन्दन का था। यह पीले रग का, अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का चन्दन होता था जो कि मकासार अथवा सेलिवीज मे मिलता था।[2]

महाराज उदयन की बनवाई चन्दन-मूर्ति की अनेक प्रतिकृतियाँ तैयार हुई। बील महोदय ने चीन मे एक मूर्ति देखी थी, जिसके बारे मे यह मान्यता थी कि यह उदयन की चन्दन-मूर्ति से सादृश्य रखती है। श्यूआन् चुआङ् की जीवनी का लेखक व उनका शिष्य ह्वइली लिखता है कि आचार्य-श्री ने जब भारत से विदा ली, उस समय ग्रथो व अन्य मूर्तियो के साथ वे तीन फुट, पाँच इंच ऊची एक ऐसी बुद्ध मूर्ति भी ले गये थे, जो उदयन की मूर्ति के सदृश थी।[3]

भारत से विदेशो को जो सामग्री जाती थी, उसमे विविध प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रो, हाथीदात तथा मूल्यवान रत्नो के अतिरिक्त चदन भी पर्याप्त मात्रा मे जाता था। यह चदन न केवल भारत के प्रदेशो से प्राप्त होता था वरन् तिब्बत, वर्मा और दक्षिणी सागर के द्वीपो से आता था। देश के भीतर व्यापारी एक जनपद से दूसरे जनपद को सोना, चादी, वस्त्र, मद्य और अन्य पदार्थो के साथ चन्दन के मुट्ठे भी ले जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि व्यापारियो को चदन पर $\frac{1}{15}$ भाग कर रूप मे देना पडता था।[4] भारत मे यो तो कई स्थानो से चन्दन आता था किन्तु सबसे उत्कृष्ट कोटि का चन्दन मध्य एशिया से प्राप्त होता था।

"एक समुद्री व्यापारी ने बौद्ध-साहित्य मे प्रसिद्ध विशाखा मृगार माता के पास चन्दन की गड्डी भेजी। चन्दन के मूल और अग्र-भाग की जाँच करने की ठानी गई। उसके लिए विशाखा ने एक मामूली-सा प्रयोग बतलाया। चन्दन का कुन्दा पानी मे भिगो देने से जड तो पानी मे बैठ जाती थी और सिरा तैरने लगता था।"[5]

---

१. हुअेनत्साग का भ्रमण वृत्तात, पृष्ठ २५४.

२ सार्थवाह, डा० गोतीचन्द, पृष्ठ १४५.

३ सुयेनच्वाग, जगन्मोहन वर्मा, पृष्ठ २५०

४ अर्थशास्त्र, कौटिल्य, पृष्ठ १७२

५. सार्थवाह, डा० मोतीचन्द, पष्ठ १४५.

काष्ठ के पारखी चन्दन की लकडी में भी भेद करते है। यह परख वृक्ष की आयु, उसके उत्पत्ति-स्थान और मूल के प्रकार पर निर्भर करती है। चन्दन की पकी हुई लकडी कुछ अधिक गहरा रग ले लेती है। वही अधिक श्रेष्ठ और मूल्यवान समझी जाती है।

दुर्भाग्य की बात है कि हाथीदात की भाति ही हमे चन्दन की कोई अधिक प्राचीन-शिल्प-कृति अथवा मूर्ति उपलब्ध नही होती। दक्षिण मे मैसूर के सिमोगा जिले, कनारा, ट्रावनकोर और कोयम्बटूर तथा गुजरात मे सूरत तथा अहमदाबाद में अब भी कुछ परिवार, वश-परम्परा से इस कला की रक्षा करते चले आ रहे है। इस शताब्दी के प्रारम्भ मे सर जॉन ह्वॉट ने लिखा था "चंदन के काष्ठ पर कारीगरी हर एक स्थान पर एक-दो परिवारो मे ही सीमित है। केवल मैसूर के सिमोगा नामक स्थान मे इस व्यवसाय मे आठ परिवारो से अधिक लगे हुए है जिनमे लगभग ३५ व्यक्ति है। वश-परम्परा से यह लोग मन्दिरो मे नकाशी और चित्रकला का काम करते है।[1]

सूरत, अहमदाबाद और बम्बई की चन्दन-काष्ठ की वस्तुओ पर जैन-कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कृति को बनाते समय उनके आगे अहमदाबाद की नक्काशी और कटावदार खिडकियाँ रहती थी। फूल-पत्ते, साफ और बडे रहते थे और कटाई इतनी गहरी की जाती थी कि आर-पार दिखलाई देने लगता था। सर जॉन ह्वॉट का अनुमान है कि इन स्थानो के काष्ठ-शिल्पियो ने अपनी पूर्व-परम्परा आबनूस की लकडी के शिल्प से ग्रहण की है।

प्रत्येक स्थान की चन्दन की कला की कुछ निजी लाक्षणिकताये है—

ट्रावनकोर की कला-कृतियो मे अधिक खुदाई या पच्चीकारी नही होती। अलकरण की अपेक्षा उसमे प्रकृति से सादृश्यता अधिक रक्खी जाती है किन्तु उससे सौन्दर्य मे किसी प्रकार की कमी नही आती वरन् सीधी और स्पष्ट होने से मन को छूती है।

सन् १९०३ ई० की दिल्ली की कला-प्रदर्शनी मे चन्दन की काष्ठ-कला के ऐसे नमूने आये जिनके ऊपर की खुदाई और कटाव ने परसी ब्राउन जैसे कला-पारखी को आश्चर्य-चकित कर दिया था। सर जॉन ह्वॉट ने उनमे से एक दृश्य, जिसमें कृष्ण की चीर-लीला दिखलाई थी, बेहद पसन्द किया। अपने ग्रन्थ मे इस कला-कृति का चित्र प्रकाशित करते हुए उन्होने यह स्वीकार किया कि वह चन्दन के काष्ठ का सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण नमूना है। इस दृश्य मे किशोर कृष्ण, यमुना के किनारे एक वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए दिखलाये गये थे। यह मैसूर के नवीन राज्य भवन के एक द्वार के ऊपर का अलकृत भाग था। इस दृश्य मे ब्रज की गोपियो, पशुओ और मछलियों तक का बडा

१. इण्डियन आर्ट एट देहली, सर जान ह्वाट, पृष्ठ १४८.

सजीव और मनोहारी चित्रण किया गया था "Nature seems to rejoice with the advent of the god on earth, every bough of the tree, every bird and animal as also the fish in the waters, sing his praise, while the contentment of the trooping homeward of the cattle is simply admirable"

मैसूर के अन्य शिल्प की भाति चन्दन की कला भी प्राचीन चालुक्य-कला से प्रभावित रही है, कनारा की चन्दन की खुदाई के नमूने से यह स्पष्ट हो जाता है। काष्ठ-शिल्पियो ने न केवल मन्दिरो मे उत्कीर्ण देवगण की वेष-भूषा व अलकरण को ज्यो का त्यों उतारा है बल्कि वे भाव-मुद्राओ मे भी अनुरूपता लाने मे सफल हुए है। अपनी विषय वस्तु भी उन्होने मैसूर के हलेबिड और चिन्न केशव आदि के मन्दिरो से ली है। (देखिये, विशाल भारत, कला अक, १९३१, पृष्ठ ७९) उनमे कला के वही प्रतीक और अभिप्राय दिखलाई देते है जो कि प्रस्तर-शिल्प मे दिखलाये गये है।

मैसूर और कनारा के चन्दन के शिल्प मे बहुधा पौराणिक कथाओ का अकन मिलता है। उसमे अलकारमयता अधिक रहती है जो कि चालुक्य मूर्ति-शिल्प का एक मुख्य लक्षण है। पुष्प-वल्लरिया घुमावदार रहती है जिनसे कलात्मकता व्यक्त होती है। पिछली शताब्दी की चदन की कला-कृतियो मे से एक अन्य मजूषा दिल्ली की प्रदर्शिनी मे रक्खी गई थी जिस पर महाभारत के युद्ध का दृश्य अकित था। उस सस्ते समय मे उस मजूषा का मूल्य १५३७) रु० निश्चित किया गया था। मैसूर मे ब्रह्मा, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की मूर्तियाँ भी बनती थी। यह परम्परा अब भी चल रही है।

चदन के काष्ठ-शिल्प की अब काफी माँग बढने लगी है। कुटीर उद्योगो को शासन द्वारा जो प्रोत्साहन मिला है, उसके कारण कारीगरो की सख्या बढने लगी है। उनकी आर्थिक स्थिति मे सुधार होने लगा है और उनकी बनी हुई वस्तुओ की देश तथा विदेश मे माग बढनी प्रारम्भ हो गई है। सम्भ्रान्त वर्ग गृहो के कक्षो, विशेष रूप से ड्राइग-रूम को चन्दन की कलापूर्ण वस्तुओ से सजाने लगा है। आधुनिक समय मे चन्दन की कारीगरी के मुख्य केन्द्र अहमदाबाद, सूरत, कोयम्बटूर, मदुराई, कनारा, मैसूर, ट्रावनकोर, ट्रिचनापाली आदि है। पिछली शताब्दी मे उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद, मे चन्दन की वस्तुये बनती थी। उनमे हाथीदॉत की पच्चीकारी की जाती थी। आज-कल चन्दन की कला की छोटी चीजो, जैसे कघे, बटनें, पखे, शतरज के मुहरे, विविध प्रकार के पशुओ, छडियो और गहनो की छोटी पिटारियो आदि की अधिक माग रहती है। चन्दन के काम की बडी-बड़ी कलात्मक वस्तुये, विशेष रूप से वे मजूषाये जिनके बनाने तथा जिनके ऊपर पौराणिक दृश्य उत्कीर्ण करने मे काष्ठ-शिल्पी महीनों लगा देता था, अब दुर्लभ हो गयी है। चन्दन, आबनूस और अखरोट आदि की

लकड़ियाँ यों ही मंहगी होती है और जन-साधारण उनसे बनी वस्तुओ का व्यवहार करने मे समर्थ नही होता, फिर शिल्पी का श्रम उसे और महंगा बना देता है।

लकडी की कारीगरी मे खुदाई की कीमत रहती है। चदन की वस्तुये अपेक्षाकृत छोटी होती है, इसलिये शिल्पी बडी चतुरता के साथ उस पर सूक्ष्म कारीगरी दिखलाता है। कारीगर सुडौल, गॉठ और रेशाहीन लट्ठे मे से लकडी निकालता है। वह रुखानी, कॉटा, गुनिया और परकार से पहले आकृति का स्थूल रूप तैयार करता है और फिर उसमे बारीक व छोटी रुखानी से सूक्ष्मता लाता है। सबसे पहले आकृति अथवा दृश्य को सीधे, चिकने काष्ठ पर उतार लिया जाता है। यदि दृश्य मे अधिक बारीकी हुई तो नक्शे अथवा ख़ाके को कागज पर उतारा जाता है और उस कागज को काष्ठ पर चिपका दिया जाता है। फिर रुखानी से उसमे आकृतियॉ स्पष्ट की जाती है। श्री जे. रुस्तम ने लिखा है :

The different effects of light and shade, every expression and curve, and every grade of texture are clearly brought out. The intricacy of good sandle-wood carving can only be equalled by ivory carving of the same high quality

४. पेपियरमेशी या कागज कुट्टी

जिन वस्तुओं को लोग व्यर्थ समझ कर फेंक देते है, उन्ही की कुशल शिल्पी ऐसी सुन्दर कलात्मक वस्तु बना देते है कि देखकर आश्चर्य होता है। घटना किशोरावस्था की है किन्तु उसकी स्मृति मानस-पटल से धुल नही सकी है। कलकत्ते की बात है। विक्टोरिया मेमोरियल के सामने के मैदान मे हम चार-पॉच मित्र बैठे हुये गन्ना चूस रहे थे। गन्ने अच्छी किस्म के थे और उनका छिलका ऊपर से नीचे तक उतरता चला जाता था। उसी समय वहॉ एक घूमता हुआ जापानी वृद्ध आ गया। वह मैदान में बैठा हमारी ओर देखता रहा। जब हम गन्ना खा चुके तो उसने निकट आकर पूछा कि क्या वह छिलके ले सकता है? हम मुस्करा दिये। भला उस व्यर्थ, फेंकी चीज के लेने पर हमे क्या आपत्ति हो सकती थी? पर यह देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसने उन्ही छिलको से एक बडी खूबसूरत टोकनी बना दी। बचपन मे कागज की लुग्दी को कूट कर तैयार की हुई टोकनियॉ देखी है किन्तु काश्मीर की बनी हुई कागज कुट्टी या पेपियरमेशी की मनोहर वस्तुये देखकर ऐसा लगा कि क्या लुग्दी की ऐसी सुन्दर चीजे भी बन सकती है?

काश्मीरी अपनी कला-कुशलता के लिये प्रसिद्ध रहे है। ऊनी शाल, लकडी की खुदाई, चादी का कलापूर्ण कार्य और पेपियरमेशी आदि उनके सौन्दर्य, रूप और रंगमयता के प्रति प्रेम की साक्षी देते है। वे उनके मन को ही तृप्ति नही देते वरन्

उनकी जीविका का एक मुख्य साधन भी है। काश्मीर मे यह व्यवसाय पैत्तिक रूप मे चलते आ रहे है।

"The skill of Kashmiri craftsman is traditional and mostly hereditary. For centuries these raftsmen have zealously guarded the secrets of their ancient and beautiful crafts and handed them down to succeeding generations"

काश्मीर का शिल्पी आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न नही रहा। विदेशी कला-समीक्षको को यह देखकर आश्चर्य होता है कि कारीगर भीड-भरे घर और अशान्त वातावरण मे, दरिद्रता के बीच ऐसी श्रेष्ठ कृतियो का सृजन कैसे कर पाता है? काश्मीर की पेपियरमेशी की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कहा जाता है कि यहाँ पेपियरमेशी का काम सुलतान जैनुलाब्दीन (सन् १४२३-१४७२ ई०) के शासन-काल मे प्रारम्भ हुआ। जैनुलाब्दीन काश्मीर के उन महान् शासको मे माने जाते है जिनके समय मे काश्मीरी कला ने प्रगति की। जैनडब महल, जैनगीर नहर, जैनाकोटा, जैना बाजार, जैना कदल पुल और डल झील मे जैना लेक उस सुल्तान के नाम की अब भी याद दिलाते है। जैनुलाब्दीन ने समरकन्द से कालीन बुनने वाले बुलवाये। उसने जिल्द साज, जीन साज, कागज बनाने वाले, पेपियरमेशी का काम करने वाले व अन्य कारीगरो को विदेशो से बुलवाकर काश्मीर मे बसाया।[1] पेपियरमेशी की कला फारस से आई। पात्रो की फूलो की विविध तरहो तथा उन पर तैयार किये जाने वाले दृश्यो से यह अब भी प्रकट है कि इस कला का मूल स्रोत ईरान का है। इस शिल्प को कुमानगीरी कहते है। श्रीनगर के मध्य मे एक मुहल्ला है, जिसे कुमानगरपुर कहते है। यह पेपियरमेशी का केन्द्र है, जहाँ कई सौ कारीगर इस काम मे लगे रहते है। उनका मुख्य व्यवसाय यही है। वे अपने-आपको फारस के उन शिल्पियो का वशज बतलाते है जो कई सौ वर्ष पूर्व काश्मीर मे आकर बस गये थे।[2]

कलाप्रिय मुगल शाहन्शाहो के शासन काल मे काश्मीर की अन्य दस्तकारियो की भाति ही पेपियरमेशी का शिल्प भी काफी विकसित हुआ। काश्मीर उत्कृष्ट कागज बनाने का केन्द्र तो था ही। वही से सिल्क के रग का चिकना कागज तैयार होकर आता था, जिस पर चित्र बनाये जाते और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज लिखे जाते थे।[3] जयपुर के पुरा-अभिलेख सग्रह मे ऐसे दस्तावेज अब भी सुरक्षित है।

काश्मीर की पेपियरमेशी के बहुत पुराने नमूने अब उपलब्ध नही होते। सन् १९०३ ई० की दिल्ली प्रदर्शनी के समय सर जान ह्वॉट ने पुराने नमूनो को खोजने की बहुत चेष्टा की किन्तु उन्हे निराशा ही मिली।

१. काश्मीर देश व सस्कृति, शिवदान सिह चौहान, पृष्ठ १६४

२ काश्मीर, इट्स कल्चरल हैरिटेज डा० कौमुदी. पृष्ठ १८४

३ हैण्डीक्राफ्ट्स आफ इडिया, पृष्ठ ७६.

"The writer was much surprised to find while in Kashmir that neither in the Palace nor in the State Museum, have there been preserved samples of the fine old forms of Kashmir papier-mache, so much appreciated by collectors of Indian Art."[1]

कुछ समय पूर्व काश्मीर के पुराने नमूनो की खोज की गई थी। जो वस्तुये उपलब्ध हुई वे श्रीनगर के महाराज प्रतापसिह राजकीय सग्रहालय मे सुरक्षित है। वस्तु-स्थिति यह है कि प्रोत्साहन की कमी के कारण न केवल पेपियरमेशी अपितु काश्मीर की सभी दस्तकारियो का स्तर गिरने लगा था। राजकीय सरक्षण खत्म हो गया था और बनी हुई वस्तुओ के खरीदार विदेशी पर्यटक रह गये थे जिन्हे सस्ती वस्तुये चाहिए थी। काबुल के पठान कारीगरो को उनकी वस्तुओ की अच्छी कीमत दे जाते थे, इसलिए उन्हे उत्कृष्ट वस्तुये मिल जाती थी। कारीगर पेपियरमेशी की अपेक्षा काठ की वस्तुये तैयार करने लगे थे और उन पर तरहे तैयार करके बेच रहे थे क्योकि वे विदेशी ग्राहको को सस्ती पडती थी। सर जान ह्वाट ने लिखा है कि आप पेपियरमेशी के किसी पुराने कारीगर के पास जाइये और उससे उस तरह की चीजे मागिये जो पहले काबुल जाया करती थी तो वह आपको जो माल दिखायेगा, वह उस सस्ते, कूडे से, जो बाजार मे पेपियरमेशी के नाम से बिक रहा है, बिलकुल ही भिन्न प्रकार का होगा।[2] "गुन ना हिरानो गुन ग्राहक हिरानो है" की उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। कागज कुट्टी तैयार करने की विधि बड़ी श्रम-साध्य है, ऐसी स्थिति मे काठ का सस्ता पडना स्वाभाविक है।

कारीगर सबसे पहले साँचे के ऊपर तहे जमाता है। बीच-बीच मे वह माड़ीदार कागज भी रखता जाता है ताकि इच्छित वस्तु मे मोटाई आ जावे। आकृति बन जाने के बाद, जब वह थोडी सूखने लगती है, तब उसे घिस दिया जाता है ताकि सतह बराबर हो जावे। फिर उसे बारीक कपडे मे लपेट कर रख दिया जाता है। पेपियर-मेशी की वस्तु सूखने के लिये कभी आग के निकट नही रक्खी जाती वरन् हवा और धूप से ही उसमे कडापन आता है। कारीगर पात्र या वस्तु को जली हुई काश्मीरी ईंट 'कुरकत' से घिसकर चिकना करता है फिर 'मानस बल' की खान से निकलने वाले पत्थर को, जिसे 'वसवतर' कहते है, पानी के साथ घिसकर उस पर पलस्तर करता है। इसके ऊपर पानी और सरेस के साथ काश्मीरी सफेदा चढाया जाता है।[3] कुछ कारीगर 'प्लास्टर आफ पेरिस' भी चढाने लगे है। फिर जिस रग को जमीन करनी होती है, हरी नीली, पीली या सुनहली, वही रग चढाया जाता है और

---

१ इडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ १६४

२. वही

३ काश्मीर, देश व सस्कृति पृष्ठ १६५.

जब वह सूख जाता है तब उस पर जर्दा से डिजायन या तरह बनाई जाती है। चिर-अभ्यस्त शिल्पी तरह अपने मन से बनाता है। उस समय वह किसी नमूने को सामने रखना भी आवश्यक नही समझता। पेपियरमेशी की डिजाइनो के कई प्रकार है। वह उन्ही मे से कोई, पोलो खेलते अश्वारोही अथवा बेल-बूटे चित्रित करता है। फूलो मे गुलाब, केसर, पोस्ता आदि के फूल बनाये जाते है। जिन जगहो पर कारीगर सोने या चाँदी का रग लगाना चाहता है, उन पर गोद और शक्कर मे जर्दा मिलाकर लेप करता है और फिर सोने या चाँदी के वर्क चिपका देता है। कुछ सूखने पर वह पात्र पर वार्निश करता है और फिर सूखने के लिये रख देता है। यह वार्निश अलसी के तेल मे राल डालकर तैयार की जाती है।

५. जयपुर की मीनाकारी

स्वर्ण, रजत, ताँबा और पीतल के अलकारो, पात्रो व अन्य वस्तुओ को विविध प्रकार के रगो से अधिक सुन्दर और शोभायुक्त बनाने की कला को ही मीनाकारी कहते है। मीनाकारी के प्रसार का श्रेय मुगलो को है। यह सच है कि मुस्लिम आक्रमणो ने भारत की श्री का अपहरण किया, उसकी रूपमयी शिल्प प्रतिमाओ को अग-भग कर विकृत कर डाला और नालन्दा व विक्रमशिला जैसे विश्व-विश्रुत विद्यालयो की ज्ञान-राशि को बड़ी निर्ममता से अग्नि-शिखाओ मे फैंक दिया पर यह भी सच है कि मुगलो ने भारत को अपनी मातृभूमि समझा और इसे वास्तुकला के श्रेष्ठतम नमूनो से सजा दिया। यह देश "सम्राट् शाहजहाँ के प्रेम के एक अश्रु, ताज" पर सदियो से गर्व करता रहा है। न केवल स्थापत्य वरन् चित्रकला, साहित्य, दर्शन और सगीत आदि के उन्नयन को भी मुगलो ने प्रोत्साहन दिया। उनका सम्बन्ध ईरान से था जो अपने युग का बड़ा समृद्ध और सस्कृत देश था। मुगलो के शासन-काल मे भारत और ईरान के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ हो गये। भारत मे मीनाकारी की कला ने ईरान के रास्ते प्रवेश किया। कला का इतिहास बतलाता है कि ईरान ने यह कला फोनेसिया से ग्रहण की। भारत मे मीनाकारी का केन्द्र लाहौर बना।

ईरान से आये हुए कारीगरो से यह शिल्प सिक्खो ने भी सीखा। महाराज मानसिह प्रथम अपने साथ लाहौर के पाच कारीगर लाए। इन्ही जोरावरसिंह, जवाहरसिंह व शोभासिंह आदि कारीगरो ने जयपुर मे इस कला का श्री गणेश किया। धीरे-धीरे मीनाकारी अन्य स्थानो मे भी लोक-प्रिय हो गयी। पिछली शताब्दी मे सोने की मीनाकारी अलवर, दिल्ली और बनारस, चाँदी की मीनाकारी मुल्तान, भावलपुर, काश्मीर, कागडा, कुलू, लाहौर, लखनऊ, हैदराबाद (सिंध) नूरपुर आदि और पीतल व ताबे की मीनाकारी, काश्मीर, तथा पजाब के अनेक नगरो मे होती थी।[1]

१. मैमोरियल्स आफ जयपुर एक्जबीशन, पृष्ठ ३५.

जयपुर मे सोना, चादी, पीतल और ताँबा सभी पर उत्कृष्ट मीनाकारी की जाती थी। भारतीय और विदेशी सभी कला-समीक्षको ने इस बात को स्वीकार किया है कि जयपुर की मीनाकारी सर्वोत्कृष्ट है। वह जगत्-प्रख्यात हो गई है और विश्व के कई प्रमुख सग्रहालयो मे उसकी वस्तुओ को स्थान मिला है। थॉमस एच० हैएडले महोदय ने विगत् शताब्दी मे लिखा था :

"The art of enamelling on metal is successfully acknowledged that the best work on gold is produced in Jeypore, in Rajputana The colours employed rival the tints of rainbow in purity and brilliancy, and they are laid on the gold by the Jeypore artists with such exquisite taste that there is never a want of harmony, even when jewels are also used they serve but to enhance the beauty of the enamel"[1]

थॉमस एच० हैएडले का यह मत उन कलात्मक वस्तुओ को देखकर बना था जो सन् १८८३ ई० की जयपुर कला प्रदर्शनी मे सकलित की गई थी।

मीनाकारी के प्राचीन, मूल्यवान नमूनो मे महाराज मानसिह की वह छड़ी समझी जाती है, जिसे लेकर वे मुगल शाहन्शाह अकबर के दरबार मे खड़े होते थे। ३३ सुनहली नलकियो की छड़ी बावन इच लम्बी है। इस पर हल्के हरे रग के जवाहरात जडे हुए है और मीनाकारी के रग इतने तेज और चमकदार है मानो यह छड़ी कुछ दिनो पहले की बनी हुई हो। छडी पर विविध प्रकार के रगीन फूल-पत्तियाँ, दृश्य और पशुओ आदि का चित्रण है जो बहुत सूक्ष्म साथ ही स्पष्ट है। इसके रग, वनस्पतियो और खनिज पदार्थों से तैयार किए गए है जो बडे शुद्ध है। कला का वह स्तर जो सोलहवी सदी की उस छडी मे दिखलाई देता है, अब लुप्त हो चुका है। मीनाकारी दो प्रकार की होती है, एक तो वह जिसमे पात्र या अलकार की सतह के ऊपर रंग भरकर उसे तपाया जाता है जिससे धातु रग को पकड ले और वह न छूटे। दूसरी रीति यह है कि जिस वस्तु पर मीनाकारी करनी हो, उसे साफ और चमकीला करके उस पर डिजायन या तरह खोद दी जावे और खुदे हुए अश मे रग भर जावे। इन्हे कच्ची और पक्की मीनाकारी कहते है। सोने के गहनो, चाँदी के पात्रो व अन्य मूल्यवान वस्तुओ पर पक्की मीनाकारी का काम होता है और कच्ची मीनाकारी पीतल के थालो, बर्तनो व अन्य वस्तुओ पर की जाती है। इस मीनाकारी की तश्तरियो, डिब्बियो और फूलदानो आदि की बडी माग रहती है। जयपुर कच्ची मीनाकारी का सबसे बडा केन्द्र है और वहाँ इस गृह-शिल्प मे अनेको व्यक्ति लगे हुए है।

पक्की मीनाकारी मे रत्नो का जडाव भी होता है। बहुधा यह मीनाकारी सोने के आभूषणो पर ही की जाती है। यह व्यवसाय जौहरियो के हाथो मे है। वे सुनारो, खुदाई करने वालो व मीनाकारो के सहयोग से मीनाकारी की वस्तु अथवा

आभूषण तैयार करते है। सुनार गहना तयार करता है। वह उसे रगडकर चिकना करता है ताकि चित्रकार अथवा चितेरा उस पर डिजायन अथवा तरह बना सके। जौहरियो का व्यवसाय बहुधा पैत्रिक होता है और उनके पास नई-पुरानी डिजायनो का सग्रह रहता है। जयपुर मे ऐसे कई जौहरी है जिनके सग्रह मे मुगल काल तक की मीनाकारी के डिजायन सुरक्षित है। ग्राहक अपनी मर्जी के मुताबिक डिजायन चुन लेता है और चितेरा उस पर तरह कोरता है। चितेरे के पास से आभूषण अथवा वस्तु खुदाई करने वाले के पास भेजी जाती है जो एक पतली नोक के लोहे के औजार "टाकले" से कुछ गहराई देकर डिजायन खोदता है। जहाँ रत्नो का जडाव करना होता है, वहाँ उसी नाप की जगह छोड दी जाती जाती है। मीनाकार के पास रगो का सग्रह रहता है। यह रग देशी रहते है और खनिज पदार्थो से तैयार किये जाते है। कुछ समय से विदेशी रग भी आने लगे है।

मीनाकार सबसे पहले आभूषण अथवा पात्र को आग मे तपाता है और रग भरने का कार्य प्रारम्भ करता है। कुछ रग कडे होते है और कुछ मुलायम। कडे रगो से उन रगों का अभिप्राय है जो देर मे पिघलते है। मीनाकार पात्र पर सबसे पहले कडे रग की पेन्सिल फेरता है। रग धीरे-धीरे पिघल कर खुदाई किए हुए रिक्त स्थान को भर देता है। फिर वह क्रमश. कम कडे रगो को भरता जाता है। इस प्रकार जब मीनाकारी का काम खत्म हो जाता है तब वह पात्र या अलकार को ऊपर से खुरच कर साफ कर देता है ताकि बाहर रग लगा न रह जावे। लाल रग का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है क्योकि सुन्दर व मनभावने होने के साथ यह सबसे मुलायम रग भी समझा जाता है। सफेद रंग सबसे कडा माना जाता है और पिघलने मे अधिक समय भी लेता है, इसलिए इसका प्रयोग यथा-सम्भव कम ही किया जाता है। इस क्रम के अनुसार सफेद, नीले, हरे, काले और लाल रग को लिया जाता है। मीनाकारी के लिए सर्वश्रेष्ठ धातु सोना समझी जाती है। इसके दो कारण है, पहला यह कि तपाई मे यह सबसे मुलायम होती है, दूसरे इसमे सभी प्रकार के रग भरे जा सकते हैं। मीनाकारी के बाद अलकार या वस्तु को हल्की आग दी जाती है और फिर उसे तेजाब से साफ कर लिया जाता है।

जयपुर हीरो की कटाई, रत्नो के जडाव व मीनाकारी के लिए प्रख्यात् है। उदयपुर के नाथद्वारा नामक स्थान मे भी मीनाकारी का काम होता है और वहाँ से प्रति वर्ष लाखो रुपयो का सामान विक्रयार्थ बाहर जाता है।

६. सींग की कारीगरी

असीरिया, बेबलोनिया और सिन्धु-घाटी की सभ्यताये इस बात की साक्षी देती है कि मानव प्राक् ऐतिहासिक समय से विविध पशुओ का भिन्न-भिन्न तरीको से उपयोग करता रहा है।

भारतीय आर्यों के प्रिय पशु वृषभ और अश्व थे। उन्होने वृषभ के द्वारा भूमि को जोत-बो कर शस्य-श्यामला बनाया और अश्व पर बैठकर अनार्यों पर विजय प्राप्त की। पशु मानव-जीवन के एक सहारे बन गये। उनके दूध, घृत, नवनीत आदि ही नही अपितु उनकी खाल, मास और अस्थियो तक का उसने उपयोग किया। भारत मे सबसे प्रधान पशु गौ माता समझी गई। पवित्र और पूजनीय मानकर उसकी हत्या को पाप माना गया, सबसे भयकर अपराध। वृषभ देवादिदेव शिव का वाहन, नन्दी बना।

भारत के उडीसा बिहार, राजस्थान, पश्चिमी बगाल, आध्र और मैसूर आदि प्रान्तो मे सीग के काम की बडी कला-पूर्ण वस्तुये तैयार की जाती है। कटक, मुगेर, हुगली, श्रीरामपुर (बगाल), जयपुर, विशाखापट्टनम्, और त्रिवेन्द्रम् आदि इस कला के प्रधान केन्द्र है। वहाँ के शिल्पी, वश-परम्परा से ऐसी वस्तुये बना रहे है जिन्हे देखकर किसी भी दर्शक का मन मुग्ध हो उठता है।

सीग के मुख्य रूप से दो प्रकार के उपयोग है, एक ड्राइग-रूम की शोभा की वृद्धि और दूसरा उसे गलाकर उससे भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुये तैयार करना। हिरन और बारहसिघो के सीगो को गलाने के काम मे नही लाया जाता वरन् उन्हे साफ करके, मसाले से पकाकर व पालिश करके ड्राइग रूम मे शोभा के लिये टाग दिया जाता है—इधर कुछ दिनो से हिरन के सीगो के पायो की छोटी-छोटी मेजे भी बनने लगी है जिनके ऊपर मीनाकारी के काम की पीतल की गोल तश्तरी रक्खी जाती है। हिरन के सीगो की नोको पर पीतल मढ दी जाती है। बारहसिघे के सीग को बैठक मे लगाकर उसकी शोभा बढाई जाती है, साथ ही उस पर टोपी, छडी, छाता या इसी प्रकार की अन्य वस्तु टागी जा सकती है।

सीग की कारीगरी मे उसको पकाने के लिए कारीगर एक विशेष क्रिया करते है। वे मृत भैस अथवा जगली भैसे के सीगो को पहले कुछ दिन तक नारियल के तेल से भीगे कपडे मे लपेट कर रखते है। फिर वे उसे आग से तपाते है। आग की गर्मी लगने से सीग एक-दो घन्टे मे ही मोम सा मुलायम पड जाता है। कारीगरो के पास विविध प्रकार की वस्तुओ के छोटे-बडे साँचे रहते है। यह साँचे काठ के होते है। मुलायम सीग को कारीगर इस साँचे मे डालकर इच्छित वस्तु तैयार करते है। वे बडी या विशेष कारीगरी की चीज के अलग-अलग टुकडे तैयार कर लेते है और फिर उन्हे जोडकर समूची वस्तु तैयार कर देते है। सीग के झूले, वृक्ष और पक्षी, शिकारी और शिकार के दृश्य इसी प्रकार तैयार किये जाते है। पक्षियो के परो को अलग साँचे मे ढाल कर बाद मे कटावो मे फसाया जाता है। कारीगर कुछ मामूली से औजार जैसे रेती, छोटी आरियाँ और बर्मे आदि का उपयोग करते है। जिस समय सीग अधिक कडापन नही लेता अथवा यो कहिए कि पूरी तरह से नही सूखता उसी समय शिल्पी उसमे कटाव देता है। सीग के काम मे केवल हल्की कटाई या खुदाई होती है, पच्चीकारी का काम

नही होता । जब वस्तु तैयार हो जाती है तब कारीगर उसे छोटी रेती से चिकना करता है। सारसो की पतली चोचे तैयार करता है। सबसे अन्त मे वह उस पर पॉलिश चढाकर 'फिनिश' देता है। तैयार वस्तु चमकने लगती है और अधिक सुन्दर लगती है।

जैसा कि हम कह चुके है, सीग के कारीगर, जिन्हे 'कघीसाज' कहा जाता है भैस या जगली भैसे के सीग को इस काम के लिए चुनते है। भैस की अपेक्षा जगली भैसे या साड को जिसे अग्रेजी मे 'बिसोन' कहा जाता है सीग के लिए अधिक पसन्द किया जाता है। उसकी बनी हुई चीजो मे अधिक सफाई आती है। सावन्तबाडी और रत्नागिरि मे सारा काम 'बिसोन' के सीग का होता है। इन स्थानो पर गत् सदी मे बडी उत्कृष्ट कोटि की वस्तुए तैयार होती थी। सन् १६०३ ई० की दिल्ली की कारु-शिल्प की प्रदर्शनी मे एक रोशनदान आया था। उसकी कलामयता पर विदेशी समीक्षक आश्चर्य-चकित तथा मुग्ध हुए थे। निर्णायक समिति ने उसके लिए शिल्पी विट्ठल गगाराम को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया था और उस सस्ते समय मे वह ६५० रु० का बिका था। इससे सीग की वस्तुओ के सम्बन्ध मे एक कल्पना की जा सकती है।

जन-रुचि बदल रही है और उसी के अनुसार कारीगरो को भी वस्तुए बनानी पडती है। इन दिनो सिगरेट केश, ऐश ट्रे, फूलदान, शृगार की मजूषाए आदि विविध प्रकार की वस्तुए बन रही है। उनकी देश तथा विदेशो मे उत्तरोत्तर खपत बढती जा रही है। राज्य-सरकारो की सामग्री क्रम-शाखाए और अखिल भारतीय हैण्डीक्राफ्ट बोर्ड इस लघु अथवा कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन दे रहे है।

कटक सीग के कलात्मक काम के लिए बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ कघे, होल्डर, मछलियाँ, सारस, वृक्ष, विविध प्रकार के पक्षी तथा फन उठाकर बैठे हुए सर्प आदि अनेक वस्तुए तैयार की जाती है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह शिल्पी कघो की ही लगभग तीस अलग अलग प्रकार को डिजाइने निकाल चुके है। बगाल के कघीसाज पहले हुक्को की नलियाँ, इत्र की शीशी, प्याले, सुघनी बनाते थे। छुरी, चाकू और छातों के मुट्ठे भी सीग के बनते थे किन्तु अब वे समय के अनुसार फैशनेबिल चीजें बनाने लगे है। सीग की बटने सभी स्थानो पर बनती है और व्यावसायिक दृष्टि से बहुत से कारीगर केवल बटने ही बनाते है। उनमे श्रम कम पडता है और माग निश्चित रहती है।

दक्षिण भारत के सीग के कारीगर शिव के वाहन नन्दी की आकृति बनाते है और उसके ऊपर सर्प बिठलाते है। पिछली शताब्दी मे भी इस प्रकार के नन्दी बना करते थे। नन्दी के ऊपर एक गोल थाली या तश्तरी रहती है जिसका व्यास सात इच का रहता है। यह तश्तरी भी सीग की रहती है और इतनी पतली रहती है कि आर-पार झलकती है। कारीगर उसके किनारे मुडे रखता है और उस तश्तरी पर बहुत

सुन्दर कटाव का काम किया करता है। तश्तरी पर एक सर्प (फन उठाए बैठा) दिखलाया जाता है। सर्प की आँखे, मुख और मुख के दात आदि बड़ी सफाई से बनाये जाते है।

गाय अथवा बैल का सीग पहले इस कार्य मे बरता नही जाता था। वह पवित्र माना जाता था किन्तु अब उसकी भी बटने बनने लगी है। गैडे का सीग बहुत मूल्यवान समझा जाता है। नेपाल के निवासी गैडे के सीग के प्याले को बहुत पवित्र समझते है और उसे अपने उपासना के उपकरणो मे स्थान देते है।

कछुये की पीठ से भी बटन, कघे, कागज काटने वाला चाकू, और इसी प्रकार की छोटी-मोटी वस्तुए बनाई जाती है। यह कुटीर-उद्योग अभी व्यवसाय के रूप मे पनपा नहीं है। विजगापट्टम और गुजरात के कुछ स्थानो मे कछुये की खाल छोटी पिटारियो के ऊपर जडी जाती है। यह कार्य काफी मुश्किल समझा जाता है।

प्राचीन भारत मे कछुये की खपडियाँ जावा, बोनियो आदि द्वीपो से आती थी। जावा से गन्ना, हाथीदात, मोती, कपूर, सौफ, लौग व इलायची के साथ[1] और बोर्नियो से कपूर, लाका की लकडी के साथ कछुये की खपड़ियाँ आया करती थी[2]। यहाँ उनको किस काम मे लाया जाता था, इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता फिर भी अनुमान है कि उनको शिल्प के उपयोग मे ही लिया जाता होगा।

उन दिनो शखो का भी व्यापार होता था। गुप्तकाल मे भारत और ईरान के व्यापारिक सम्बन्ध बढ रहे थे। ईरान भारत को सोना, चादी, मोती और मूगे भेजता था और भारत से ईरान को शंख, चन्दन, अगर और विविध प्रकार के रत्न जाया करते थे।[3] प्राचीन भारत में प्रत्येक योद्धा रणघोष के लिए अपने पास शख रखता था, जैसा कि भगवत् गीता से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त उपासना के सयय भी शख का उपयोग किया जाता था। शख हिन्दुओ और बौद्ध दोनो मे पवित्र वस्तु माना जाता था। शिल्पियो मे अन्य कारीगरो के साथ शखकार का भी उल्लेख मिलता है। वह शख की विविध प्रकार की वस्तुये बनाया करता था। विवाहित स्त्रियाँ छोटे शखो से तैयार किये हुए ककण पहनती थी। वे उन्हे विवाह के अवसर पर मांगलिक चिन्ह समझकर दी जाती थी।[4] प्रथम शताब्दी के लगभग दक्षिण भारत मे रोमवासियो की बस्तियाँ बस गई थी। उनमे कुछ कारीगर भी थे। वे अन्य शिल्प के अतिरिक्त शख पर सुन्दर व कलापूर्ण आकृतिया खोदने का काम भी करते थे। वे उसमे इतना गहरा कटाव देते थे कि आकृति उभर आती थी और शरीर के अवयव

---

१ सार्थवाह, डा० मोतीचन्द, पृष्ठ २११

२ वही पृष्ठ २१०

३ वही पृष्ठ १७३

४. इडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ १७८

स्पष्ट हो उठते थे। बृहत् कल्प सूत्र भाष्य से पता चलता है कि देश मे व्यापारी लोग कस्तूरी, अगर और इगुर आदि के साथ शख भी लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया करते थे। शखकार उनकी विविध प्रकार की मालाये, ककण आदि बनाते थे और शखो को कटाव करके अधिक सुन्दर बना देते थे। "मणिकार महत्तर को जवाहिरातो का बडा ज्ञान होता था और वह मोती, वैडूर्य, शख, मूगा, स्फटिक, लोहितांक, यशव आदि का पारखी होता था। शख वलयकार महत्तर, शख और हाथीदात की कारीगरी मे उस्ताद होता था। शख और हाथीदात से वह खूटियाँ, अजन शलाका, पेटियाँ, भृङ्गार, कडे, चूडियाँ और दूसरे गहने बनाता।[1] महावस्तु मे शख का काम करने वाले शिल्पी को 'शाखिक' कहा गया है।[2]

आजकल शख की बडी कलापूर्ण और सुन्दर वस्तुये बनने लगी है। ऐश ट्रे, प्यालियाँ, बिजली के लैम्प आदि देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

पशुओ की अस्थियो का भारत मे अधिक उपयोग नही होता। पच्चीकारी के काम मे इसे हाथीदात के स्थान पर व्यवहार मे लाया जाता है। पेशावर मे ऊट की हड्डी की सुरमादानिया बना करती थी। भारत मे अस्थि को पवित्र नही मानते और उसका स्पर्श भी बचाया जाता है। सम्भवत इसी कारण से अस्थि को कुटीर-उद्योगो मे स्थान नही मिला है। तिब्बत मे मनुष्य की अस्थियो से बडे कलापूर्ण आभूषण बना करते है जिन पर भगवान् बुद्ध और तारा देवो आदि की मूर्तिया बनती है। भारत मे मानव-अस्थि तो अग्नि-सस्कार मे समाप्त हो जाती है और पशुओं की अस्थि का उपयोग खाद बनाने मे ही होता है।

७. नारियल की कलात्मक वस्तुयें

जिन वस्तुओ की उपयोगिता पर बहुधा हमारा ध्यान नही जा पाता, वे दैनिक जीवन मे हमारे बडे काम की होती है। नारियल भी ऐसी ही वस्तु है। उसकी उपयोगिता का सही अन्दाज दक्षिण भारत मे पहुंच कर हो पाता है। जल, भोजन, तेल सभी का काम नारियल से निकल जाता है। दक्षिण मे नारियल का पेड बहुतायत से होता है। वहाँ के निवासी नारियल की पकी हुई गिरी से तेल बनाते है। वे उसी तेल मे अपना भोजन भी बनाते है। सामान्य गृहस्थ घी के स्थान पर नारियल का ही अधिक उपयोग करता है। साबुन बनाने मे तो सभी जगह नारियल के तेल को काम मे लाया जाता है।

प्रकृति ने नारियल के फल की रक्षा के लिये उसके चारो ओर जटा और कडी खोपड़ी रक्खी है अन्यथा ऊँचाई से गिर कर फल टूट कर नष्ट हो जाता और हम उस स्वादिष्ट फल से वचित ही रह जाते।

---

१. सार्थवाह, पृष्ठ १५२

२. महावस्तु, भाग ३, पृष्ठ ११३, सार्थवाह, पृष्ठ १५३.

नारियल की जटा से विविध वस्तुये बनती है। नारियल से मजबूत किसी दूसरी चीज की रस्सी नही बनती। वह बहुत टिकाऊ होती है। इसी जटा से पाँव पोश और कालीन भी बनते है। फिर उन पर रग-बिरगी छपाई कर दी जाती है। कुछ वर्षो से नारियल की जटा के फर्श अथवा मैटिग की बहुत माग बढ गई है। भारत की कई. प्रमुख्य व्यापारी सस्थाओ ने नारियल की रगीन चटाई बनाने का काम शुरू कर दिया है।

नारियल की जटा का झाड़ू बनाने और गद्दियो के भीतर भरने मे भी उपयोग होता है किन्तु जटा और गरी के अतिरिक्त नारियल को खोपड़ी का भी कोई उपयोग होता है, यह बात कम ही लोगो को ज्ञात होगी।

दक्षिण मे नारियल के पत्ते झोपडियो के छप्पर बनाने के काम मे आते है। तने की बल्लियाँ बना ली जाती है। जटा और गिरी तो मुख्य काम की चीजे है ही। नारियल के वृक्ष का कोई भाग ऐसा नही है जो किसी न किसी उपयोग मे न आता हो। इसकी ऊपर की कडी खोपड़ी को बहुधा किसी खास इस्तैमाल मे नही लाया जाता था किन्तु अब उसकी बड़ी सुन्दर चीजे बनाई जाती है। नारियल के खोपड़ी की चाय की प्यालिया, ऐश-ट्रे, कलमदान और लैम्पो के शेड आदि बडे खूबसूरत बनते है, यह बात उन्हे देखे बिना समझ मे नही आ सकती। तमिल नाद मे नारियल की खोपड़ी से कलात्मक वस्तुये बनाने का उद्योग धीरे-धीरे बहुत लोकप्रिय होता जा रहा है।

शिल्पी पहले नारियल के फल को पूरी तरह से साफ कर लेता है और उसकी जटा को अलग कर देता है फिर उसके फल को एक छोटी आरी से दो बराबर हिस्सों मे काट देता है और उस पके हुये फल की गिरी को बाहर निकाल लेता है। कारीगर फल को काटने से पहले खराद पर भी चढ़ाता है जिससे उसकी ऊपरी सतह बिल्कुल चिकनी हो जाती है। कारीगर इस बात का विशेष ध्यान रखता है कि खोपड़ी की सतह पर कोई दरार न पड़ने पावे।

गिरी को निकाल कर शिल्पी नारियल की खोपड़ी के ऊपर रांगा चढा देता है।

"नारियल की खोपडी की बाहरी सतह पर रांगा चढ़ाकर उसे सूखने के लिये धूप मे रख दिया जाता है। रागा चढी हुई सतह पर कलाकार काले सुरमे की एक तेज पेन्सिल से डिजायन बनाता है। अगर डिजायन बहुत ज्यादा कलापूर्ण हो या उसमे बारीकियाँ अधिक हो तो सफेद कागज पर डिजायन बनाकर उसे बाहरी सतह से चिपका दिया जाता है। फिर कलाकार अपनी छैनी से उसमे खुदाई शुरू करता है और इस प्रकार बड़ी होशियारी से काम करता हुआ वह उस डिजायन को नारियल की खोपड़ी की बाहरी सतह पर उतार देता है।"[1]

---

१. योजना (पाक्षिक) ६ दिसम्बर १९५९.

कभी-कभी नारियल और लकड़ी दोनो का काम साथ रहता है। पायो के स्थान पर तीन अलकृत हाथी बना कर उनके ऊपर नारियल का समूचा गोला रक्खा रहता है। इस प्रकार के गोलो को देखकर दर्शक आश्चर्य मे डूब जाता है क्योकि फल कही से कटा हुआ नही जान पडता। खोपडी मे कही कोई दरार भी नही दिखलाई देती पर उसके भीतर गिरी नही रहती और फल, फूल से भी अधिक हल्का लगता है। सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय की नारियल की कलात्मक वस्तुओ मे दो साबित नारियल एक दूसरे से बधे हुए है। उनके भीतर गिरी नही है और वे बहुत हल्के है। उनकी गिरी कैसे निकाली गई यह पता नही चलता। इस सग्रह मे ही एक आम के आकार की डिब्बी है, जिसमे भीतर जैन चित्रकला का एक सुन्दर नमूना है। इस डिब्बी को देखकर हमे इस निर्णय पर पहुचना पडता है कि यह शिल्प नया नही है, वरन् इसकी कुछ पूर्व-परम्परा भी है, चाहे वह अधिक पुरानी न हो।

इस कुटीर उद्योग के सम्बन्ध मे सन् १८८८ ई० मे श्री टी० एन० मुकर्जी ने लिखा था :

"At Trivandrum in Travancore very spirited and well excuted designs are carved on diminutive cocoa-nut shells. These may consist of entire cocoa-nut shells with lids, cocoa-nut shells inlaid with silver, tea-pots with trays, sugar-basins, cups and saucers, figures of deities and human beings, and other articles made of those shells, carved and often inlaid."

नारियल के शिल्प के केन्द्र कनारा और सामन्तवाड़ी भी माने जाते है किन्तु वहाँ इने-गिने शिल्पी ही काम करते है।

सन् १९०३ ई० की दिल्ली कला-प्रदर्शनी मे कन्ननोर, ट्रावनकोर और मैसूर से नारियल की कला के कुछ नमूने आये थे जिनमे से बहुत से पात्रो पर चाँदी का पत्र भी चढा हुआ था। कन्ननोर सेन्ट्रल जेल मे बने हुए एक दुहरे नारियल का मूल्य उसके काम की बारीकी के कारण सौ रुपये निश्चित किया गया था।

नारियल भारत का एक मागलिक फल है, जो प्रत्येक शुभ अवसर लग्न, यज्ञोपवीत, कथा-वार्त्ता मे रक्खा जाता है किन्तु उससे तैयार की जाने वाली वस्तुओ का कुटीर-उद्योग मे एक निश्चित स्थान बनता जा रहा है और उपयोगिता की दृष्टि से भी उसका महत्व स्वीकार किया जा रहा है।

८. मृत्तिका-शिल्प

मिट्टी के पात्र दैनिक उपयोग की वस्तु है। सभी वर्गो के लोग उनको व्यवहार मे लाते है—शीतल जल से परिपूर्ण कुम्भ सभी की प्यास बुझाता है इसीलिये कुम्हार अथवा कुम्भकार समाज का एक आवश्यक अग समझा गया था। व्याह-शादी, जन्म-

मरण, मांगलिक,-अमांगलिक सभी अवसरो पर उसके घडे, मटके, सकोरे व प्याले-प्यालियो की माग रहती थी इसलिये शायद ही कोई ऐसा गाव था जिसमे कुम्हारो का एक दो परिवार न बसा हो । उसका चक्का विधाना के चक्र की भाति सदा चलता ही रहता था, नित-नई सृष्टि करता ही रहता था । मृत्तिका, पात्र मे अपनी परिणति पाती थी, मगल-घट का सृजन होता था—राष्ट्र-कवि गुप्त जी ने लिखा है—

तू ही मेरा चादी-सोना,
आघातो से खिन्न न होना,
रूप बनेगा सुघर-सलोना,
पहले पिण्ड बनाऊ ।
मेरी मिट्टी मै बलि जाऊँ ।।

कुम्भ भारत का एक सास्कृतिक प्रतीक बन गया । वह जीवन के पात्र का प्रतीक बना जिसमे प्राण-रस परिपूरित है । अमरावती के शिल्प मे मगल घट का ऐसा मनोहारी अकन हुआ है कि उसकी शोभा देखते ही बनती है ।

मानव-मन मे मृत्तिका-पात्रो की कल्पना कब उगी, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता किन्तु मोहे जोदडो, हडप्पा और रोपड के कलापूर्ण पात्रो को देखने से इस गृह-शिल्प का इतिहास बहुत पुराना जान पडता है । मोटे-रूप से मृत्तिका-शिल्प के दो प्रकार माने जाते है—मृण्मूर्तियाँ और मृत्तिका-पात्र । अग्रेजी मे इन्हे 'टैरा कोटा' और 'पॉटरी' कहा जाता है । मृण्मूर्तियाँ से पुरुष-नारियो की विविध वेश-भूषा, अलकार आदि के अध्ययन मे पाषाण-शिल्प या कास्य मूर्तियो की भाँति ही सहायता मिलती है अत वे पुरातत्व की निधि समझी जाती है । मौर्य, कुषाण और गुप्त आदि कालो की मृण्मूर्तियाँ हमे मथुरा, पटना, कौशाम्बी, राजगृह, भीटा, अहिच्छत्रा व राज-घाट आदि मे उपलब्ध हुई है । वे राष्ट्रीय सग्रहालय दिल्ली तथा देश के अन्य प्रमुख सग्रहालयो मे सुरक्षित है । भारत-कला-भवन काशी के सौजन्य से सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय को भी राजघाट की मृण्मूर्तियो के कुछ सुन्दर नमूने मिल गये है। मृण्मूर्तियों के सम्बन्ध मे हम पृथक् अध्याय मे चर्चा कर रहे है ।

भारत मे मृत्तिका-पात्रो का प्रारम्भ अत्यन्त प्राचीन युग मे ही हो चुका था । कुम्भ के सम्बन्ध मे कई पुराण-कथाये भी प्रचलित है । जिस समय देव और दानव अमृत-प्राप्ति के लिये सागर का मथन कर रहे थे, उस समय अमृत के लिये एक पात्र की आवश्यकता का अनुभव किया गया । विश्वकर्मा ने जो कि देवगण का स्थपति अथवा वास्तु-शास्त्री था, वहा एकत्रित हुए देवगण की कला अथवा उस वस्तु का अश ले लिया जिससे उनके शरीर निर्मित थे और उसे मिलाकर 'कलश' को बनाया । एक अन्य पुराण-कथा के अनुसार सती के विवाह के समय शिव को एक मृत्तिका-पात्र की आवश्यकता हुई क्योकि कुम्भ के बिना कोई मागलिक कार्य पूर्ण ही नही हो सकता

था। शिव ने अपने हार मे से एक दाना निकाला और उससे एक पुरुष का सृजन किया। इसी प्रकार दूसरे दाने से नारी का सृजन करके उन्होने उन दोनो को कुम्भ बनाने का आदेश दिया। बगाल मे प्रचलित मान्यता के अनुसार यह दम्पत्ति ही कुम्भ-कारो अथवा कुम्हारो के पूर्व-पुरुष है और इसीलिये बगाल के कुम्हार अपने को 'रुद्रपाल' कहते है। वे इसी नाम के पूर्व-पुरुष की पूजा भी करते है। वे उसकी प्रतिमा वर्ष के प्रारम्भ मे (चाक के मध्यवर्त्ती भाग मे) बनाते है और फिर उसको सागर अथवा नदी मे विसर्जित कर आते है।[1]

इतिहास से ज्ञात होता है कि मृत्तिका के पात्रो की परम्परा सिन्धु-सभ्यता काल मे प्रारम्भ हो गई थी वरन् यह कहिये कि उस युग के लोग मृत्तिका-पात्रो के बनाने मे बडे कुशल थे। मोहे जोदड़ो नगर सस्कृति और सभ्यता की पराकाष्ठा को पहुँच गया था, जिसमे अनेक वर्गो और जातियो के लोग रहा करते थे। वहा के कारीगर अथवा कलाकार मुद्राओ, ताम्र-पट्टियो, मिट्टी के खिलौनों, धातु-प्रतिमाओ आदि सभी कारु-शिल्पो मे बडे निपुण थे। मोहे जोदडो की खुदाई मे आधे इच तक ऊँचे पात्र उपलब्ध हुए है जिससे वहां के मृत्तिका-शिल्पियो के असाधारण कौशल का पता चलता है। डा० मैके का मत है कि नगर के एक भाग मे कुम्भकार जाति के लोग रहा करते थे। मोहे जोहड़ो के एक खुदे हुए भाग को उन्होंने कुम्हारो का मुहल्ला निश्चित किया है। मोहे जोदडो, हडप्पा, आम्री तथा सिन्धु घाटी के अनेक स्थानो से मृण्मूर्तियो के अतिरिक्त मृत्तिका-पात्र भी उपलब्ध हुए है। सर जॉर्ज व्हॉट ने चमकीले मृत्तिका-पात्रो का प्रारम्भ मुगल-काल से माना है और इस कला का केन्द्र दिल्ली बतलाया है किन्तु अब सिन्धु-सभ्यता के नगरो की खुदाई के पश्चात् उनकी राय निर्मूल सिद्ध हो जाती है। मोहे जोदड़ो मे चमकीले, पॉलिशदार बर्तन भी मिले है।

सिन्धु घाटी के नगरो से प्राप्त होने वाले मृत्तिका पात्र मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखलाई देते है एक सादे और दूसरे चमकीले—

चमकाये हुए बर्तनो के टुकडे भी खुदाई मे प्राप्त हुए है। इस प्रकार के बर्तन बनाने मे विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। सभ्यता के इस युग मे न तो इलम और न सुमेर के ही निवासियो को बर्तनो पर चमक लाने का ऐसा ढंग ज्ञात था।[2] सिन्धु-प्रान्त मे खुदाई मे ऐसे पात्र मिले है जिन पर हल्की लाल या पीले रग की पाँलिस दिखलाई देती है। उन पर काले या चाकलेट रग से रेखागणित के वृत्तो और कोणो से विविध प्रकार की 'तरहों' मे कारीगरी की गई है। कुछ बर्तन खूब पकाई हुई मिट्टी के बने है और उन पर ओप या चमक भी है। इन पर लाल रग की पॉलिस है जिसके ऊपर काले रग से अलकरण किया गया है। इनके ऊपर न केवल बीजो, मनको,

१. हैण्डीक्राफ्ट्स एण्ड इडस्ट्रियल आर्ट आफ इडिया, पृष्ठ ८०.
२. मोहें जोदड़ो तथा सिन्धु सभ्यता, सतीशाचन्द्र काला, पृष्ठ १८१.

पत्तियो और ज्यामिति के वृक्षो तथा कोणों का अलकरण किया गया है, वरन् विविध प्रकार के दृश्य भी अकित किये गये है। इस प्रकार के पात्र हडप्पा से अधिक मिले हैं। हडप्पा से प्राप्त एक पात्र के खड पर मनुष्याकृति चित्रित दिखलाई देती है। मोहे जोदड़ो मे इस प्रकार की मानवाकृति नही मिलती। हडप्पा से प्राप्त मिट्टी के पात्रो के टुकडो पर पीतल, सिरीष और ताड की पत्तियो का चित्रण दिखलाई देता है। किसी-किसी पात्र पर उस युग की प्राचीन लिपि मे कुछ लिखा भी हुआ है, जिसे अब तक पढा नही जा सका है। मोहे जोदडो के निवासी चमकीले, अच्छी तरह पकाये हुए पात्रो को ही अच्छा समझते थे। बर्तन को पहले गेरू से रंग लिया जाता था और फिर उस पर कूची से चित्रकारी या अलकरण किया जाता था। सिन्धु घाटी के नगरो मे ऐसे पात्र भी मिले है, जिनमे गहरी, कटावदार नक्काशी है किन्तु इस प्रकार के पात्र कम ही मिले है। आम्री, हडप्पा, मोहे जोदडो और चन्हूदडो आदि के मृत्तिका-पात्र यह सिद्ध करते हैं कि प्राक्-ऐतिहासिक काल मे भी मृत्तिका-पात्रो की कला उत्कर्ष को पहुंच चुकी थी।

"It is fully recognized now that there is nothing primitive about the arts and crafts of the Harapans Their earth ware exhibits varied shapes, with sophisticated and developed sensibility and aesthetic appeal entailing an advanced technique. They are famliar with polychrome and their paintings on pottary include firm geometric and naturalistic designs includings figures of animals and birds."[1]

अलकृत मृत्तिका-पात्रो की यही परम्परा रोपड़ की (खुदाई मे उपलब्ध) वस्तुओ मे भी दिखलाई देती है। दक्षिणी बलूचिस्तान मे नाल से जो प्राक्-ऐतिहासिक काल के मृत्तिका के पात्र मिले है उनका रग पीला है। उन पर नीले, लाल, हरे या पीले रग चित्रकारी की गई है।

प्राचीन गुहा-मन्दिरों मे अजन्ता, बाग और सितन्नवासल आदि मे भित्तियो पर बडे मनोहारी चित्र अङ्कित किये गये है। उस युग की सस्कृति तथा कला उनमे बिम्बित होती है। उन मृत्तिका-पात्रो मे विविध प्रकार की सुराहियाँ, कलश, तश्तरियाँ और धूप-पात्र आदि दिखलाई देते है। पूर्ण कलश का अमरावती, साँची और भरहुत के शिल्प आदि मे भी बडा मनोरम चित्रण हुआ है। पूर्ण-कलश को मेखला और फूल-मालाओ से सजाया गया है। साँची के उत्तरी तोरण मे बायी ओर के खम्भे मे पूर्ण-घट मे से पद्मलता निकलती दिखलाई गई है। भरहुत के प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के शिल्प मे पूर्ण कलश और कमलो के साथ गज-लक्ष्मी भी समन्वित हुई है। दुर्भाग्य से आज हमे मृत्तिका-शिल्प के मध्यकाल के नमूने उपलब्ध नही है। पुराने नमूनो मे लगभग

१. ललित कला, न० १-२, डा० वाई_डी बर्मा, का लेख पृष्ठ १२३.

सभी खुदाइयों मे मिले है। मृत्तिका-शिल्प के नमूनो के न मिलने का प्रधान कारण यह है कि उन्हे घर की स्थायी वस्तु नही समझा जाता। बिना चमक के पात्र, जैसे कुल्हण, प्याले, रकाबिया आदि व्यवहार करने के तुरन्त बाद ही जूठे समझ कर फैंक दिये जाते है। मृत्तिका-शिल्प एक कुटीर-उद्योग के रूप मे पनपा। कुम्हार के घडे विशेष पर्वो पर बदल दिये जाते थे। शायद इसका कारण यह भी है कि पुराने पड जाने पर उनमे जल इतना शीतल नही हो पाता। मिट्टी की बनी हुई वस्तुओ के नष्ट होते रहने से और नई चीजो की माग रहने से कुम्हार की आजीविका चलती रहती थी। विगत शताब्दी मे मृत्तिका-शिल्प के कई बडे केन्द्र थे। उन स्थानो की बनी हुई वस्तुये दूर-दूर तक जाती थी। सर जार्ज व्वाट ने उन स्थानो के नाम, जिनमे बहुत अच्छी प्रकार की वस्तुये बनती थी, इस प्रकार गिनाये है—

हजारा, बन्नू, जालन्धर, गुजराँवाला, भावलपुर, जयपुर, जोधपुर, अलवर, सिवनी (मध्य प्रदेश), अहमदाबाद, पाटन (गुजरात), कोल्हापुर, भडोच, रत्नागिरि, कनारा, अलीगढ, आजमगढ, चुनार, जबलपुर, ढाका, खुलना, मदुरा, मालाबार, ट्रावनकोर, कुर्ग आदि।

इनमे से कुछ स्थानो मे अब भी बहुत अच्छे बर्तन बनते है और वे दूर-दूर तक भेजे जाते है। मिट्टी के बर्तनों का पहले भी दूर-दूर तक व्यापार होता था। वाराणसी का एक कुम्हार अपने खच्चरो पर मिट्टी के घडे लाद कर सुदूरवर्त्ती नगर तक्षशिला तक बेचने गया था, यह एक जातक-कथा से ज्ञात होता है। निश्चित रूप से वे पात्र सुलंकृत और बडी उत्कृष्ट कोटि के होगे।

सिन्धु प्रान्त का हला नामक स्थान मृत्तिका-शिल्प का एक बडा केन्द्र था। वहाँ के बने हुये बर्तन सन् १८०१ ई० की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी मे गये थे और वहाँ उनकी बडी सराहना भी हुई थी। गुजराँ वाला, अलवर, भावलपुर आदि नगरो मे इतने पतले पात्र बनते थे कि देखकर आश्चर्य होता था। इन्हे 'कागजी बर्तन' कहा जाता था। अलीगढ भी इस प्रकार के कागजी बर्तनो के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। जिस समय मिट्टी का पात्र चाक पर रहता, उसी समय कुम्हार उसमे तरह-तरह की डिजायनें बना देता था। जिस समय पात्र अधसूखा रहता, उस समय भी वह उसमे नक्काशी करता था।

मिट्टी के काले रग के पात्रो की माग भी कम नही थी। इस प्रकार की वस्तुये अब भी काफी बनती है। बगाल मे सेवान और खुलना, उत्तर-प्रदेश मे अलीगढ और आजमगढ मे, बम्बई प्रान्त मे रत्न-गिरि और मद्रास मे मदुरा मे काले रग के बर्तन विशेष-रूप से बनाये जाते थे। पकाने से पहले पात्रों पर पालिश चढा दी जाती थी, उन्हे रंगा जाता था। पकाते समय उसमे धुवा भी अधिक देना पड़ता था। रग मे

आम की छाल, पीली मिट्टी, सज्जी मिट्टी आदि डाली जाती थी। यह विधि बिना चमक के बर्तनो को तैयार करने के लिये थी।

जयपुर की चमकीली सुराहियाँ आदि जिन पर नीली और हरे रग से चित्रकारी की जाती थी, पिछली सदी से बहुत प्रसिद्ध रही है। इस शिल्प पर दिल्ली की मुगल कला का स्पष्ट प्रभाव था।

कहा जा चुका है कि जयपुर ने मृत्तिका-शिल्प की पूर्व-परम्परा दिल्ली से ग्रहण की। दिल्ली के शिल्पियो मे भोला का नाम उल्लेखनीय है। पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण मे भोला ने ब्रह्मा से आये 'मर्तबानो' को देखकर, उनके जैसे ही 'मर्तबान' तैयार किये जिनमे आचार, मुरब्बे आदि रक्खे जा सकते हो। धीरे-धीरे वह मर्तबान बहुत लोकप्रिय हो गये। सर जार्ज ब्लॉट् का मत है कि दिल्ली के कारीगरो का शिल्प पहले भावना और 'तरहो' मे हिन्दू था—

At first the designs and colouring adopted by the Delhi potter were strongly Hindu in coloration, but later on they became (perhaps in imitation of Multan) much more Muhammdan and then consisted of rich shades of pale blue (occasionally also green) on a granular but pure white surface."

दिल्ली मे इन दिनो जो चीजें तैयार की जाती है वे यहाँ की मिट्टी की बनी हुई ही रहती है। पात्र के तैयार हो जाने पर उस पर खनिज पदार्थो से तैयार किये नीले रग को चढाते है और उसे पकाते है। बाद मे उसे चमकीला कर दिया जाता है। अब नीले रंग की जगह अन्य रगो का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया है। दिल्ली की काले रग की 'पॉटरी' जिस पर सुनहली या रुपहली वार्निश से चित्रकारी की जाती है, दिनोदिन लोकप्रिय होती जा रही है। दिल्ली की इस प्रकार की 'पॉटरी' बीदर के कलापूर्ण पात्रो जैसी लगने लगती है।

उत्तर प्रदेश मे मृत्तिका-शिल्प के प्रमुख केन्द्र चुनार, खुर्जा, बनारस और लखनऊ है। चुनार के कारीगर पहले साचो से वस्तु को तैयार करते है और फिर उसे पकाकर उस पर वार्निश चढा देते है। इस वार्निश से जो गहरे कत्थई रग की रहती है, पात्र पर एक चमक आ जाती है। चुनार की बनी हुई चीजो मे फूलदानो को जोड़ कर, उसमे आगे की ओर दावाते और कलम को रखने का स्थान भी बनाया जाता है। स्वाधीनता के वाद अशोक स्तम्भ का ऊपर का भाग भी बहुत बनाया जाता है।

खुर्जा और रामपुर विगत शताब्दी मे ही मृत्तिका-शिल्प के प्रमुख केन्द्र माने जाते थे। खुर्जा के सुन्दर फूलदान, जिन पर फूल-पत्तियो और गुलदानो आदि का मनोमोहक चित्रण रहता था, अब दुर्लभ हो चुके है। वस्तुत: खुर्जा के शिल्प की अपनी एक विशेषता थी। उसमे आकृति अथवा डिजायन को उभार देकर बनाया जाता था।

भूमि का रङ्ग और आकृति का रङ्ग अलग-अलग होने से पात्र मे एक खिलावट आ जाती थी। जमीन अक्सर कुछ नारङ्गीपन लिए हुए कत्थई रङ्ग की या पीली रहती थी और उस पर सफेद और नीले रङ्ग की 'तरह' रहती थी। इसके रङ्ग भी खनिज पदार्थो से तैयार किये जाते थे। धीरे-धीरे खुर्जा और रामपुर का स्तर गिरता गया। खुर्जा की पुरानी लोककला अब लुप्त हो चुकी है और उसका स्थान अब वहाँ की एक फैक्टरी ने ले लिया है।

मुल्तान और पेशावर पश्चिमोत्तर भारत के प्रख्यात केन्द्र थे। वे सिन्ध की गौरवशालिनी परम्परा से जिसकी चर्चा इस लेख के प्रारम्भ मे ही हम कर चुके है प्रभावित थे। मुल्तान के रंग-बिरगे, विविध प्रकार की चित्रकारी-युक्त टाइल्स दूर-दूर तक जाते थे। मुल्तान के शिल्पी 'कशीगार' थे, जो स्वय वस्तुये नही बनाते थे, वरन् कुम्हारो की बनाई हुई वस्तुओ पर अलकरण करते थे। कुम्हार पॉलिश किये हुये पात्र तैयार करके लाते थे। शिल्पी 'कशीगार' उन पर काँच, गोद और लैड कारबोनेट से तैयार किया हुआ लेप चढाते थे। उनके बाद पात्र पर हल्के और गहरे नीले व हरे रंग से चित्रकारी की जाती थी। बर्तन के सूख जाने पर उसे एक बार फिर काँच और गोद के घोल मे डुबोया जाता था। नीला रग वैदूर्य नामक नीले रग के रत्न से प्राप्त किया जाता था और स्थायी रहता था इसी प्रकार हरा रग भी खनिज पदार्थो से उपलब्ध किया जाता था। यह दोनो नगर अब पाकिस्तान की सीमा मे हैं।

बम्बई और उसके निकटवर्त्ती स्थानो मे बम्बई, पाटन और खानपुर का नाम लिया जाता है। बम्बई के मृत्तिका-शिल्प के विकास का श्रेय 'बम्बई स्कूल आॅर्ट' को है। इस कला-विद्यालय मे 'मृत्तिका-शिल्प' की भी एक कक्षा खोली गई थी। हल्ला नामक स्थान (सिन्ध प्रान्त) के कुशल कारीगर विद्यार्थियो को इस विषय की शिक्षा दिया करते थे। उन दिनो ग्रिफिथ साहब इस विद्यालय के प्रिसिपल थे। ग्रिफिथ भारतीय कला के विख्यात समीक्षक समझे जाते है। उनका 'अजन्ता' नामक ग्रन्थ अपने विषय की प्रथम पुस्तक समझी जाती है। ग्रिफिथ साहब ने अजन्ता के अभिप्रायो को मृत्तिका-शिल्प मे उतारने की चेष्टा कराई।

जयपुर को दिल्ली के कारीगरो द्वारा मृत्तिका-शिल्प की एक पूर्व-परम्परा मिली। इस मृत्तिका-शिल्प से 'स्टोन पॉटरी' से अभिप्राय है जो फेलसस्पार, सगमर्मर, कॉच, सुहागा आदि वस्तुओं को मिश्रिय करके बनाई जाती थी। सामान्य उपयोग मे आने वाले मिट्टी के सादे पात्र, घट, सुराहियाँ व प्याले-प्यालियाँ तो सभी स्थानो मे ग्रामीण कुम्हार तैयार करते ही है। अलवर और जयपुर की सीमा पर बसे बसुआ ग्राम के कुम्हार उम्दा बर्तन बनाने के लिए प्रसिद्ध थे।

सन् १८६० ई० मे जब जयपुर मे 'जयपुर स्कूल ऑफ आर्ट' नामक कला-विद्यालय खुला तो अन्य ललित तथा कारुशिल्प के साथ मृत्तिका-शिल्प को भी प्रोत्साहन

का समय लगता था[1]। इस शताब्दी के प्रारम्भ के कुशल कलाकार श्री विश्वेश्वरनाथ ने दूसरा फार्मूला बतलाया है[2]।

बीकानेर भी मृत्तिका-शिल्प का एक केन्द्र है। वहाँ पात्रो के ऊपर पॉलिश चढ़ाते है, जिससे कि वे दमकने लगते हैं।

राजस्थान का, विशेष रूप से बीकानेर खण्ड का मिट्टी की वस्तुओ के बनाने का एक बड़ा केन्द्र नौहर है। ऑल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट्स बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'हैण्डीक्राफ्ट्स' ऑफ इण्डिया' मे नौहर राजस्थान के मृत्तिका-शिल्प का सबसे प्रमुख केन्द्र माना गया है। नौहर के मिट्टी के पात्र लाल नही बल्कि सफेदी लिये हुए रहते है। उनके ऊपर किसी प्रकार की पॉलिश या वार्निश नही रहती। चाय के प्याले, धूपदानी, छोटी हाँडियाँ और तश्तरियाँ आदि वस्तुये 'नौहर भादरा' के कुम्भकार तैयार करते है। उनकी चीजो मे सफाई रहती है। साथ ही वे बडी हल्की भी रहती है। निकटवर्ती सग्रहालय होने के कारण सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय मे नौहर के मृत्तिका-शिल्प का प्रतिनिधि सकलन है।

ग्रिफिथ साहब ने 'बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट' मे मृत्तिका-शिल्प को स्थान दिया। उसके शिक्षक सिध के थे, जोकि मिट्टी के सुन्दर पात्रो तथा टाइल्स के लिये कई सदियो से प्रसिद्ध था। सिध के पात्रो मे रगो के हल्के व गहरे 'शेड्स' दिये जाते थे और फूल-पत्तियो के बडे सुन्दर कटाव रहते थे। रग-बिरगे भाँति-भाँति के नमूनो से सिध के टाइल्स अलकृत रहते थे और वे मस्जिदो तथा राजभवनो के वास्तु मे उपयोग मे लाये जाते थे। बम्बई मे इस कला विद्यालय की स्थापना से पहले चमकदार, मिट्टी की वस्तुये नही बनती थी।

बम्बई मे बिना चमक के, लाल और भूरे रग के पात्र भी बनते है। इनके कई प्रकार है। पात्र को तैयार करके शिल्पी उसके ऊपर फूल-पत्तियाँ तथा मयूर आदि पंछी अकित करता है, जिससे पात्र बडे सुन्दर लगते है। रेखाकन सरल और स्पष्ट होता है किन्तु वह मन को छूता है। सम्भ्रान्त वर्ग के नागरिको के ड्राइग रूम इन पात्रो के सुशोभित रहते है। बम्बई के शिल्पी जिस मिट्टी के पात्र तैयार करते है,वह कुछ सफेदी लिये रहती है किन्तु वे उस पर हल्के लाल रग को चढाते है और फिर उसके ऊपर गहरे लाल, कत्थई या काले रग से डिजायन बनाते है। बम्बई मे ऐसे पात्र भी बनते है जिनमे डिजायन पृष्ठ-भाग से उभरी हुई रहती है और उन रगो से पात्र बहुत सुन्दर और शोभायुक्त लगने लगता है। उन पर हल्की पॉलिश भी रहती है।

बगाल की मृत्तिका-कला के मुख्य केन्द्र, कलकत्ता, कृष्णनगर, नवद्वीप, शाति-पुर और सीतारामपुर समझे जाते है। कृष्णनगर के कुम्भकार खिलौनो को तैयार

१. मैमोरियल आफ जयपुर एक्जबीशन, पृष्ठ ५७.

२. हैण्डीक्राफ्ट्स एड इडस्ट्रियल आर्ट आफ इडिया, पृष्ठ ८३

करने मे बडे सिद्धहस्त समझे जाते है। वहां के सजीव और मनोमोहक खिलौने देश भर मे जाते है। बगाल मे मृत्तिका-पात्र पर पहले आकृति तैयार कर ली जाती है और फिर उनको सुखाया या बहुत हल्की आँच मे पकाया जाता है। पात्र के सुशोमन और अलकरण की डिजायने स्पष्ट, बडी किन्तु आकर्षक रहती है। वे बहुधा लोक-कला के अभिप्रायो से युक्त होती है।

६. भारतीय मृण्मूर्तियाँ और खिलौने

शिशु चाहे किसी देश अथवा काल का क्यो न हो, खिलौनो का प्रेमी रहता है। भाति-भाति के पशु और पक्षियो आदि की आकृतियाँ जहाँ एक ओर उसका मनोरजन करती है, वहाँ दूसरी ओर उसकी ज्ञानवृद्धि का साधन भी बनती है। दक्षिण अमेरिका की मय संस्कृति, प्राचीन मिश्र की कला आदि मे, उत्खनन के फलस्वरूप, अन्य वस्तुओ के साथ खिलौने व मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई है। भारत की प्राचीन स्मृतिया अनेक प्रकार की है। उनमे वास्तु, भास्कर, शिल्प व सिक्को आदि के साथ मृण्मूर्तियो का भी स्थान है। प्राचीन मृण्मूर्तियाँ व खिलौने पुरातत्व की निधि समझे जाते है। मृण्मूर्तियो को अंग्रेजी मे 'टेराकोटा' कहा जाता है। पुरातत्व-शास्त्री इन मूर्तियो मे प्रदर्शित आभूषण, वेशभूषा आदि का अध्ययन करते है, क्योकि वे तत्कालीन समाज की कला और संस्कृति पर प्रकाश डालती है।

इस पुस्तक के अन्य अध्यायो मे हम सिन्धु-घाटी सभ्यता की चर्चा कर चुके है, जिसका समय इतिहासकारो ने २५०० ईसा-पूर्व से १७०० ईसा-पूर्व तक निश्चित किया है। मोहे जोदडो और हडप्पा की खुदाई मे मृण्मूर्तियो का विशाल भडार मिला है। श्री राय कृष्ण दास ने मूर्ति-कला के दो उद्देश्य बतलाये है—"एक तो किसी स्मृति को या अतीत को जीवित बनाये रखना, दूसरे अमूर्त को मूर्त-रूप देना, अव्यक्त को व्यक्त करना अर्थात् किसी भाव को आकार प्रदान करना।[1] मृण्मूर्तियो के दो प्रयोजन है—उपासना और बालको का मनोरंजन। मोहे जोदडो, हडप्पा, चन्हूदडो व सिन्धु-घाटी के अन्य स्थानो मे ऐसी अनेको मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई है, जिन्हे 'मातृ देवी' माना जाता है। प्राचीन युग मे फारस, मैसोपोटामिया, मिश्र और सीरिया सभी स्थानो मे मातृ देवी की उपासना प्रचलित थी। सिधु-घाटी की यह मृण्मूर्तियाँ नग्न दिखलाई गई है किन्तु वे विविध प्रकार के आभूषणो से लदी हुई है—

उनके अतिरिक्त पशु-पक्षियो के अनेक खिलौने भी मिले है। यह खिलौने अच्छी तरह पकाये हुये है और उन पर लाल रग भी चढ़ाया गया है। कला की दृष्टि से यह नमूने अधिक उत्कृष्ट नही ठहरते। कुछ समीक्षक उन्हे स्वय बालको के हाथो का बना हुआ मानते है। इनमे वस्त्र, आभूषण, और नेत्रादि अलग से बनाकर,

१ भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ४.

बाद में चिपकाये गये है—

"ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल मे भी कुम्हारो की अलग-अलग मृण्मूर्तियो की दूकाने थी। स्वय कुछ कुम्हारो के बच्चे मिट्टी के खिलौने बनाया करते होगे। अनेक खिलौनो का निर्माण बच्चो के हाथो से हुआ है। प्राचीन यूनान मे भी कई खिलौने बच्चो द्वारा बनाये जाते थे। फिर भी हमारे सम्मुख एक विडम्बना उपस्थित होती है। यदि इन मृण्मूर्तियो मे अधिकतर बच्चो के खिलौने थे, तो यह प्रश्न होता है कि बच्चे इन कुरूप खिलौनो को कैसे पसन्द करते रहे होगे ? बच्चो की स्वाभाविक प्रवृत्ति सुन्दर वस्तुओं की ओर लपकने की होती है। हमारा अनुमान है कि उस काल में मृच्छिल्प अपने शिशु काल मे था और इसलिये भद्दे होने पर भी उस काल के बच्चे इन खिलौनो को अपना लेते थे।"

सिन्धु घाटी सस्कृति के नगरो की खुदाई मे पशुओ की मृण्मूर्तियाँ बडे परिमाण मे उपलब्ध हुई है। उनमे से अधिकांश बच्चो के खिलौने है। सबसे अधिक आकृतियाँ बैल की है, जिसके सीग छोटे-छोटे दिखलाये गये है। उसके अतिरिक्त, भैंस, शेर, कुत्ता, सुअर और बन्दर भी मिले है। पक्षियों में हस, बतके, मुर्गियाँ और मोर आदि प्राप्त हुये है। कुछ ऐसे पशु और पक्षी है, जिन्हे पहचाना नही जा सका है।

भारतीय मृण्मूर्तियो और मिट्टी के खिलौनो की कहानी यही से प्रारम्भ होती है। फिर इतिहास मे एक अन्धकार-युग आता है, जिसे चीर कर नही देखा जा सकता क्योकि बीच की खोई हुई शृखलाये अभी तक मिली नही है। मौर्य काल से मृण्मूर्तियाँ पुन. प्राप्त होने लगती है। पटना, मथुरा, कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, राजघाट (काशी) आदि अनेक स्थानो की खुदाई मे मृण्मूर्तियाँ मिली है। अहिच्छत्रा की मृण्मूर्तियाँ गुप्त काल की है और उनमे उस कला की सारी लाक्षणिकताये विद्यमान है।

मृत्तिका-शिल्प की दृष्टि से शुगो का समय अत्यन्त समृद्ध समझा जाता है। इस युग के नमूनो की विषय-वस्तु तत्कालीन लोक-जीवन को स्पर्श करती है। शुग और मौर्यो से पहले की भी कुछ मूर्तियाँ उपलब्ध होती है जिनका समय श्री राय कृष्ण दास जी ने ७वी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर मौर्य-काल तक का माना है।[1] उन्होने एक मृण्मूर्ति का चित्र भी प्रकाशित किया है जिसमें एक यक्ष अपनी पत्नी के साथ खडा हुआ दिखलाई देता है। यह मृण्मूर्ति पकाई हुई काली मिट्टी की है और जिला गाजीपुर के मसौन नामक स्थान मे प्राप्त हुई है।" शिल्पी ने पुरुष तथा नारी के अवयव तथा वस्त्रालकार बडी सफाई से बनाये है। गहरा कटाव देने के कारण आकृति स्पष्ट व सुन्दर जान पडती है।[2] मौर्य काल या उससे पूर्व की मातृदेवी की कुछ मृण्मूर्तियाँ मथुरा मे उपलब्ध हुई है। मृण्मूर्तियो की दृष्टि से मथुरा का सग्रहालय

१ भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ३५

२. वही, फलक ११ क.

बहुत समृद्ध है। उसमे कई सहस्र मृण्मय प्रतिकृत्तियाँ है। प्रयाग के सग्रहालय मे कौशाम्बी से प्राप्त हुई पाँच सहस्र से भी अधिक मृण्मूर्तियाँ है। पटना सग्रहालय मे मौर्य काल से पहले से लेकर गुप्त काल तक की मृण्मूर्तियाँ है जो कि मथुरा, कौशाम्बी भीटा, राजगृह और अन्य स्थानो से प्राप्त हुई है। पटना सग्रहालय मे पाटलिपुत्र से ही उपलब्ध मौर्य काल की मृण्मयी नागिनी तथा स्त्रियों की मृत्तिका मूर्तियाँ है।[1] इनं मृण्मूर्तियो मे अगो का सौष्ठव और लुनाई दिखलाई देती है। इनकी भंगिमाये बडी आकर्षक बन पडी है।

शुंग काल की मृण्मूर्तियाँ मथुरा, कौशाम्बी, राजघाट (काशी) तामलुक, भीटा प्रयाग और पटना से प्राप्त हुई है। तामलुक प्राचीन ताम्र-लिप्ति है जिसका फाह्यान तथा श्यूआन् चुआङ् आदि चीनी महापर्यटको ने अपने भ्रमरण-वृत्तान्तो मे जिक्र किया है। शुग-काल की इन मृण्मयी प्रतिकृतियो मे नारियाँ विविध प्रकार के रत्न-जडित आभूषरणो से लदी हुई दिखलाई देती है। प्रत्येक काल मे प्रस्तर-शिल्प का मृत्तिका-शिल्प पर गहरा प्रभाव पडा है। कुम्भकारो ने भास्कर-शिल्पियो की कृत्तियो से अपनी प्रेरणा प्राप्त की है। इस युग की पाषारण-मूर्तियो की भाति ही हम इन मिट्टी के नमूनो को मूर्ति का नाम नही दे सकते क्योकि यह चारो ओर से कोर कर नही बनाये गये वरन् एक ओर इतना उभार देकर काटे गये है कि आकृतियो मे स्पष्टता आ गई है। पीछे का भाग खाली तथा सपाट है। चिपटा डौल शुग कला की लाक्षरिएकता है जिससे वह सहज ही पहचानी जाती है।

शुग काल की मृण्मूर्तियो मे दम्पति, नारियो के ऊर्ध्वांग व खिलौने आदि विविध प्रकार की वस्तुये दिखलाई देती है किन्तु नारी अकन अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। एक मृण्मूर्ति मे एक रमरणी अपने शुक को आम खिलाती दिखलाई देती है। एक अन्य मूर्ति को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह दीदार गज की सुप्रसिद्ध यक्षिरणी मूर्ति की प्रतिकृति है। कही किसी सौन्दर्यवती के हाथो मे लीला-कमल दिखलाई देता है तो किसी के हाथो मे दर्पण। व्यजनधारिरणी और चवरधारिरणी दासियो की मृण्मयी प्रतिकृतियाँ भी मिली है। कही कोई रमरणी अजलि-मुद्रा मे हाथ जोडे हुये दिखलाई देती है। पशु-मूर्तियो में हाथी, सिंह, अश्व और वृषम आदि आँके गये है। इडियन हिस्ट्री काग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन (सन् १९३८) मे एक कला प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया था। उसमे प्रदर्शित मृत्तिका-मूर्तियो मे पशुओ के के बडे सजीव चित्ररण थे। किसी मे हाथी और सिह युद्ध करते हुये दिखलाये गये थे तो कही कोई शृगाल शिकार की खोज मे भटकता हुआ दिखाया था। कही चार अश्व रथ के जुते हुये उसे खीच रहे थे।[2]

---

१ गगा पुरातत्वाक-चित्र १२५ १२८.

२ इडियन हिस्ट्री काग्रेस इलाहाबाद (१९३८) एक्जबीशन सौवेनिर, पृष्ठ १८.

प्राचीन भारत मे खिलौनो का अत्यधिक प्रचलन था। सस्कृत व पाली ग्रथों मे अनेक स्थान पर उल्लेख आये है। कालिदास ने लिखा है कि बालिका पार्वती मिट्टी की गेद बनाकर खेला करती थी। सस्कृत के प्राचीनतम नाटक मृच्छकटिक मे, जिसका समय प्रथम शताब्दी ईसा-पूर्व माना जाता है, महाराज शूद्रक ने मिट्टी की छोटी गाडी की बात लिखी है। इस प्रकार की छोटी-छोटी मिट्टी की गाडियाँ कौशाम्बी मे मिली भी है। चम्पा, राजगृह, स्रावस्ती, साकेत और वाराणसी की भाति कौशाम्बी भी बौद्ध युग का एक महा नगर था। यह उज्जैन और राजगृह के मार्ग पर था। प्रयाग विश्व विद्यालय और म्युनिस्पल सग्रहालय इलाहाबाद मे कौशाम्बी (कोसम, जिला इलाहाबाद) से उपलब्ध असख्य ठीकरे है जिन पर मूर्तियाँ उभरी हुई है। मभिझम निकाय के उपलि सुत्त मे महल्लक नामक वृद्ध ब्राह्मण अपनी नव-वयस्का पत्नी को रिझाने के लिये मर्कट-शावक (बानर का बच्चा) खिलौना खरीद कर लाया था क्योकि वह आसन्न-प्रवसा थी। इस उल्लेख से यह भी प्रकट है कि उन दिनो खिलौनो को रगा जाता था और उनपर पॉलिश भी की जाती थी।[1]

प्राचीन वाङ्मय मे उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कथा अत्यत प्रसिद्ध रही है। कला भवन मे पकाई मिट्टी का एक टिकरा है जिसपर उस समय का दृश्य अकित है जब कि वत्स जनपद का राजा उदयन, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी, अवति-राज चण्ड महासेन की पुत्री वासवदत्ता को अपनी हथिनी पर ला रहा था। हथिनी पर तरुण उदयन बैठा है और उसके हाथ मे सुर मडल नामक वाद्य है, जिसे बजाकर वह हाथियो को मोहता था। उसके साथ बैठी वासवदत्ता तनिक झुकी हुई अकुश से से भद्रावती हथिनी को चला रही है। राय कृष्ण दास ने इस टिकरे के सम्बन्ध मे लिखा है, 'कला की दृष्टि से भी यह एक सुन्दर चीज है। इसका डौल चिपटा होते हुये भी कायदे से है। इसकी प्रत्येक रेखा सुनिश्चित है, उसमे बारीकी है, साथ ही दम-खम भी।[2]

हथिनी के पीछे एक व्यक्ति सिक्के बिखरा रहा है और दो आदमी उन्हे बटोर रहे है। टिकरे का विषय ऐतिहासिक होने के कारण उसका अत्यधिक महत्व है। सर जॉन मार्शल को भीटे की खुदाई मे ऐसा टिकरा मिला था, जिस पर शकुतला दिखलाई गई थीं। पहले मृण्मूर्तियाँ हाथ से बनाई जाती थी और साँचे का प्रचलन न था। मौर्य काल तक की मृण्मूर्तियाँ हाथ की बनी हुई है। इस प्रकार की अनेक मृण्-मूर्तियाँ न केवल पाटलिपुत्र अपितु सुदूरवर्त्ती उज्जयिनी और विदिशा से भी प्राप्त हुई है।[3]

१. बुद्धचर्या-राहुल साकृत्यायन, पृष्ठ ४५३

२ भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ६५.

३. यह भारत का इतिहास, हरिहर निवास द्विवेदी, पृष्ठ ३३१.

दक्षिण भारत मे यद्यपि उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी, मथुरा, सारनाथ और भीटा की भाँति मृण्मूर्तियो का विशाल भण्डार नही मिला किन्तु जो मृण्मूर्तियाँ व मृत्तिका-शिल्प की अन्य वस्तुये पाण्डिचेरी के निकटवर्त्ती स्थान आर्किमेडु, चन्द्रावली, ब्रह्मगिरि (मैसूर) और कोण्डापुर मे उपलब्ध हुई है, वे इस कला का पूर्ण-रूपेण प्रतिनिधित्व करती है। इन सब मे कोण्डापुर की मृण्मूर्तियाँ अधिक सुन्दर है। वहाँ प्राप्त हुये बोधि-सत्व और यक्ष-मस्तक मन को अपनी ओर आकर्षित करने मे समर्थ है। उनकी पग-डियो पर रत्न जडे हुये है। कोण्डापुर से प्राप्त हुई एक यक्ष मृण्मूर्ति मे जटा-मुकुट व केश-विन्यास दर्शनीय है। कोण्डापुर मे नारी-मस्तक और बैल व घोडा आदि खिलौने भी उपलब्ध हुये है। पशुओ को गहनो से सजाया गया है। इसी प्रकार के कुछ नमूने आर्किमेडु और कोण्डापुर मे भी प्राप्त हुये है। यह मृण्मूर्तियाँ सातवाहन काल की है।[1]

मृण्मूर्तियो का अध्ययन अत्यन्त मनोरजक है। कला-समीक्षको का ध्यान पाषाण-शिल्प की ओर अधिक होना स्वाभाविक था इसीलिये मृत्तिका-शिल्प पर सर्वाग-पूर्ण ग्रन्थ अब तक नही लिखा जा सका। यह कार्य सरल नही है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है—

"मिट्टी की भाँति-भाँति की मूर्तियाँ बनाने की कला भारतवर्ष मे बहुत पुरानी है। मृण्मूर्तियो के काल-निर्णय का कार्य सरल नही है। यह मूलतः लोक-कला है, और जिस रूप मे मोहेंजो डेरो तथा कन्नौज आदि स्थानो के प्राग्वैदिक स्तरो से प्राप्त हुई है, उसी रूप मे वह आज मिल जाती है। अन्य लोक-कलाओ की भाँति वह शाश्वत् और काल-सीमा के बन्धनो से परे है। उत्खनन के स्तर और उसके साथ प्राप्त अन्य सामग्री से ही उनके काल का निर्णय हो सकता है।"

सभी युगो मे मृण्मूर्तियाँ बनती रही है किन्तु गुप्त काल मे यह कला मानो अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई है। अहिच्छत्रा, राजघाट, सारनाथ व पहाडपुर आदि की खुदाई मे अनेको मृण्मूर्तियाँ मिली है। इस युग के मृत्तिका-शिल्प मे पात्रो और खिलौनो की नई-नई डिजायने देखने मे आती है। गुप्त काल के टिकरे मिले है जो पट पर है। उन्हे हल्के लाल रग से रग दिया जाता था। ऐसी मृतिका-मूर्तिया भी बहुतायत से मिली है, जो ठोस है और जिन्हे भरावदार साचो द्वारा तैयार किया गया है। राजघाट (काशी) की खुदाई मे जो मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई उनमे स्त्रियों के केश-विन्यास और आभूषण आदि के विविध प्रकार आश्चर्य मे डाल देते है। सौदर्य-युक्त मुख, तीखे नाक-नक्शे, बडी-बडी आँखे, गुप्त-कालीन मृण्मय मूर्तियाँ अपने समकालीन पाषाण-शिल्प की भाँति ही अलग दिखलाई देती है। गुप्त काल से पहले की कृत्तियो मे इतना लावन्य नही है। गोद मे शिशु लिये हुये माता, सिर पर मटकी

१. हैदराबाद, आर्ट, आर्क्योलौजी एण्ड हैण्डीक्राफ्ट्स, फलक ८-९

साधे स्त्री, शुक-क्रीडा, गान-वाद्य, प्रेमरत दम्पति आदि विषय-वस्तुओ का प्रदर्शन इन टिकरो और मृण्मूर्तियो मे दिखलाई देता है। सौन्दर्य-निरूपण के साथ जीवन के विविध पहलुओ को उनमे उतार दिया गया है। राजघाट की खुदाई मे कुछ खिलौने भी निकले है। हाथी, शेर, कुत्ता आदि पशु भी इन खिलौनो मे दिखलाई देते है। कुछ खिलौने बडे मनोरजक है—

राजघाट के एक मृत्तिका-फलक पर सर्कस का मनोरजक दृश्य दिखलाया गया है। फलक मे ऊपर किनारे की ओर दो मुर्गे लडते हुए दिखलाये गये है। जातक-कथाओ से ज्ञात होता है कि बौद्ध युग मे कुक्कुट अथवा अरुण-शिख पाले जाते थे। तक्षशिला के एक आचार्य के पास एक मुर्गा था, जो उसके शिष्यो को बाग देकर बहुत तडके जगा देता था। उस मुर्गे पर झुझला कर एक दिन शिष्यो ने उसकी गर्दन मरोड दी! कुक्कुट युद्ध, मेढो का युद्ध आदि जनता का मनोरजन था। अजता के एक भित्ति-चित्र मे कुछ बालक अपने-अपने मेढो को लडाते हुये चित्रित किये गये है। राजघाट के इस मृत्तिका-फलक मे मुर्गो के नीचे दो बैल लड़ रहे है और दूसरे कोने मे दो मल्ल मुष्टिका-युद्ध कर रहे है। नीचे एक गाड़ी दिखलाई गई है जिसमे चार हाथी जुते हुये है। महावत के स्थान पर एक हाथी ही है जो चार हाथियो के मुख की लगाम अपने मुँह मे थामे हुए है। उसकी सूँड मे अकुश भी है। राजघाट मे बैल, गाडियो, घोडो, व अन्य पशुओ के मिट्टी के खिलौने भी पर्याप्त सख्या मे मिले है जो कि बालको की क्रीडा के लिये बनाये गये है।

सारनाथ के मृत्तिका-शिल्प पर उसके मूर्ति-शिल्प की भाँति ही भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रसग अकित किये गये है। यह अधिकाँश मृत्पट्टिकाये (terracotta plaques) है जो टूट चुके है, कुछ अभी तक साबित है। इनमे भगवान् बुद्ध पर मार का आक्रमण, श्रावस्ती नगरी का चमत्कार दिखलाया गया है। श्रावस्ती के चमत्कार मे भगवान् बुद्ध का विश्व-रूप दिखलाया गया है। वे छ शिष्यो को शिक्षा दे रहे है और एक ओर राजा बैठा है। सारनाथ की मृण्मूर्तियो मे बुद्ध की भूमि-स्पर्श, अभय, वरद आदि मुद्राये दिखलाई देती है।

गुप्त काल की सबसे सुन्दर मृण्मूर्तिया अहिच्छत्रा मे बनी। सम्भवत· इन्हीं को देख कर राय कृष्ण दास जैसे कला-समीक्षक को यह लिखना पड़ा कि "गुप्तकाल मे बडी-बड़ी मृण्मूर्तियाँ और पकाई मिट्टी के फलक भी बनते थे, जिनका सौन्दर्य और सजीवता पत्थर या धातु की मूर्तियो से भी इक्कीस है।" अहिच्छत्रा के गुप्त-कालीन मंदिर में पुराण-कथाओ को बडी सजीवता के साथ मृत्पट्टिकाओ मे शिल्पाकित किया गया है। समूचे मन्दिर को मृत्पट्टिकाओ से सजाया गया था। यह मृच्चित्र बडे सुन्दर तथा मूर्ति-विधान की दृष्टि से उतने ही महत्वपूर्ण भी है।

अहिच्छत्रा की परम्परा ही पहाडपुर के स्तूप और मन्दिर में भी उतरती दिखलाई देती है। बगाल के राजशाही जिले के इस कला-मडप की खुदाई के फल-स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई है। पहाडपुर मे हिन्दू और बौद्ध-धर्म का शिल्प समान-रूप से मिलता है। हिन्दू मूर्तियो मे से अधिकाँश वैष्णव और शैव सम्प्रदायो की है। कृष्ण की बाल-लीला की पाषाण-प्रतिमाये, राधा और कृष्ण का युग्म, यमुना और बलराम की मूर्तियाँ आदि बडी मनोरम है और उनमे गुप्त कला की समस्त लाक्षणिकताओं का समन्वय दिखलाई देता है। इन्द्र, यम और अग्नि आदि की मूर्तिया हिन्दू मूर्ति-विधान को एक देन है। बौद्ध प्रतिमाओ मे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रस्तर-प्रतिमा उल्लेखनीय है। पहाड़पुर के इस कला मन्दिर मे प्रस्तर-प्रतिमाओ की सख्या तो कुल मिलाकर ६३ ही है किन्तु मृच्चित्रो की सख्या कई सौ है। पहाडपुर का मन्दिर तथा स्तूप ईटो का बना हुआ था। उसमें शोभामयी पाषाण प्रतिमाओ के नीचे, दीवार मे आयताकार दग्ध मृण्मय पट्ट जडे हुये थे। मिट्टी के चित्रो के इतने अधिक प्रकार कही उपलब्ध नही हुये। इन पट्टो मे पशु-पक्षियो, नर-नारियो और देवी-देवताओ के मनोहारी चित्र है। इस मृत्तिका शिल्प मे पचतत्र की कथाये भी शिल्पाकित हुई है।

"पहाडपुर की मृच्चित्र पट्टिकाओ मे प्राणियो की कितनी ही मूर्तियो मे बहुत अच्छी कारीगरी की गई है। एक भैसे का चित्र, चरते हुए हिरण का चित्र, परस्पर लिपटे तीन बानरो का चित्र, हाथियो के अनेक लीलाओं वाले चित्र, हस, मयूर, कोकिल शुक, आदि पक्षियो की विविध गति दिखलाने वाले चित्र विशेष उल्लेखनीय है। मनुष्यो मे ढाल और खग लिये हुये योद्धा, रथ तथा घोडे पर सवार सैनिक, हर प्रकार का शरीर-विन्यास करने वाले नट, ढोल, करताल, शहनाई तथा वाद्य बजाने वाले वादक, ध्यान मे निमग्न ककाल-शेष योगिजन, गवाक्ष से देखती ललनाये इत्यादि विविध प्रकार के चित्र है।"[1]

सारनाथ के अतिरिक्त नालन्दा मे भी नवी-दशवी शताब्दी के कुछ मृत्तिका-फलक मिले है। नालदा के पुरातत्व सग्रहालय के मृत्तिका-फलको मे बुद्ध और बोधि-सत्व आदि का अकन है। एक फलक मे बुद्ध और वज्रपाणि बैठे है, एक मे तारादेवी है। कुछ फलको मे स्तूप आदि दिखलाये गये है। नालन्दा मे पकाई मुहरो की अच्छी छापे भी मिली है। इनमे से एक मुहर मे हरिण और धर्म-चक्र का प्रतीक बना है तथा 'श्री नालन्दा महाविहारीय भिक्षु सघस्य', शब्द अकित है। बगाल के 'वीरभूमि टैराकोटाज' पर अभी एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। मिट्टी के खिलौनो के जो भी नमूने प्राप्त हुये है, वे विभिन्न स्थानो के उत्खनन मे ही प्राप्त हुये है। भीटा का समूचा मन्दिर ही, मृत्तिका-फलको से सजा हुआ था—

---

१ गगा पुरातत्वाक, पहाडपुर के विचित्र मन्दिर की खुदाई, पृष्ठ १३३

"The temple at Bhitagaon which was entirely decorated with terracotta figures should have been one of the richest, of which most figures practically disappeared except for a few specimens"

मिट्टी की कला एक लोक-कला है जिसकी परम्परा शताब्दियो से चलती आ रही है। मिट्टी एक ऐसी चीज है जिसके बने हुये अल्पमोली खिलौने सभी वर्गो के लोग क्रय करते है। दीपावली के दिन गणेश-लक्ष्मी का पूजन होता है। उनकी मूर्तियाँ भी मिट्टी की बनी हुई रहती है। महाराष्ट्र मे प्रति वर्ष गणेशोत्सव बडी धूम-धाम से मनाया जाता है। लेखक ने पूना, नागपुर और कोल्हापुर मे गणेश की विशालकाय किन्तु सर्वांग-सुन्दर मृण्मूर्तियाँ देखी है जिनके बनाने मे शिल्पी महीनो तक सतत् श्रम करते है और जिनका मूल्य हजारो मे कूता जाता है। किन्तु गणेश पूजा के पश्चात् ही उन प्रतिमाओ का नदी, सरोवर आदि मे विसर्जन कर दिया जाता है। जहाँ तक मै समझ सका हूँ, इसका उद्देश्य यह है कि मूर्तिकारो को बराबर काम मिलता रहे और उन्हे बेकारी की व्याधि न सतावे—

बगाल मे दुर्गा पूजा मनाई जाती है। इसी प्रकार सरस्वती पूजा भी होती है। जहाँ भी बगालियो के थोडे-बहुत परिवार है वहाँ यह दोनो उत्सव बडे उल्लास और उत्साह के साथ मनाये जाते है। इन देवताओ के साथ अन्य देवगणो की भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनती है। "मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती है और कला की दृष्टि से कहे तो अच्छे से अच्छे भास्कर्य से मुकाबला कर सकती है। मूर्तियो के साथ भित्ति-चित्रण का एक रूप देखने मे आता है, जिन लोगो ने मिट्टी की बनी हुई दुर्गा-मूर्तियाँ देखी है, उन लोगों ने यह देखा होगा कि मूर्तियो के ठीक पीछे बल्कि मूर्ति के हिस्से के रूप मे एक लम्बी-चौडी भूमि बनी रहती है। यह पृष्ठ-भूमि समतल होने के कारण इस पर चित्रकारी की गुजाइश रहती है। इस प्रकार जो चित्र बनाये जाते है, उनको 'चालचित्र' कहते है। चाल-चित्रो के विषय के रूप मे पौराणिक कहानियाँ और देवी-देवताओ की मूर्तियाँ रहती है। उनके चित्रण मे बडी निपुणता दृष्टिगोचर होती है।"

आजकल सभी छोटे-बडे नगरों मे खिलौनो की दूकानो मे रबर, टीन अथवा लोहे के चाबीदार खिलौनो की भरमार दिखाई देती है। इधर कुछ दिनों से नाइलोन के खिलौने भी आने लगे है। पहले जापान और ब्रिटेन से चाबीदार खिलौने आया करते थे। अब इस देश मे भी तरह-तरह के चाबीदार खिलौने बनने लगे है। दौडने वाली मोटरे, झूले, नाचते हुए साहब-मेम या घुटनो के बल चलने वाला शिशु आदि, अपने देश की फैक्टरियो मे ही बनने लगे है। इस प्रकार की वस्तुओ से बालक का घडी भर का मनोरजन भले ही हो जावे किन्तु न उनसे बालक की सौन्दर्य-वृत्ति मे विकास होता है और न उसका ज्ञान-वर्द्धन ही होता है।

शिशु स्वाभाविक-रूप से जिज्ञासायें करता है। मै जब कोई पुस्तक लेकर पढने बैठता हूं तो मेरी दो वर्ष की बालिका पुस्तक के चित्रो को देखकर पूछती जाती है, "यह क्या है ? यह क्या है ?" अपने अध्ययन मे विघ्न पडते हुये देखकर मै झुझला उठता हू तभी ध्यान आता है कि बालिका का अध्ययन चल रहा है। विश्व की विविध वस्तुओ के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूप मे उसका परिचय होता जा रहा है। बालक सुनी हुई या पढी हुई वस्तु की अपेक्षा देखी हुई वस्तु को अधिक आसानी से याद कर लेता है। खिलौने का उद्देश्य यह है कि बालक के ज्ञान और परिचय का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जावे। जिस सिंह, गैंडे या कँगारू को बच्चे ने कभी नही देखा और जिसकी परिकल्पना वह केवल पुस्तक का पाठ पढने मात्र से नही कर सकता वही जब उसके सामने खिलौने के रूप मे जाता है तो सहज-रूप मे बोधगम्य हो जाता है। लखनऊ मे कुम्हार लोग मिट्टी के ऐसे सुन्दर फल और सब्जियाँ बनाते है कि उनके सादृश्य पर आश्चर्य होता है। उनके आकार-प्रकार और रंगो को मूल आकार व प्राकृतिक रग से इतना मिला दिया जाता है कि बच्चा लपककर उसे उठा लेता है और पूछने लगता है कि, 'यह क्या है ?' यह जिज्ञासा ही उसके ज्ञान की जननी है। लखनऊ मे विभिन्न पेशो के लोगो के छोटे-छोटे खिलौनो के सेट आदि बना करते है। मुझे अपने बचपन की याद है, मेरे लिये एक खिलौनो की पिटारी आई थी। उन छोटे-छोटे खिलौनों को जमाकर लगा देने से लखनऊ के नबाब का दरबार बन जाता था जिसमे नबाब मसनद लगाये बैठे दिखलाई देते, सामने दरबारी लोग रहते। दरबान या सिपाही दण्ड लिये खडे रहते। एक ओर नृत्य और सगीत का आयोजन चलता रहता।

सगारिया मे बाल सग्रहालय का एक कक्ष तैयार करते हुये मेरे एक मित्र ने, जो शिक्षा-शास्त्री है, खिलौनो से ही गाँव का दृश्य, रेलवे स्टेशन का दृश्य और मेले का दृश्य तैयार किया था और बच्चो ने उसे बेहद पसद किया था।

डा० सत्य प्रकाश जी ने लिखा है :

"प्रायः देखा गया है कि बच्चे बूढो की अपेक्षा अधिक सवेदनशील होते हैं। वे एक बार जो भी वस्तु देख लेते है उसे समझ-बूझ कर याद कर लेते है। यो भी देखा गया है कि कान की अपेक्षा आँख शिक्षा ग्रहण करने का अधिक सच्चा माध्यम है। शिक्षा-विशारदो का परीक्षण भी इस परिणाम पर पहुंचा है कि पढी हुई या सुनी हुई बात की अपेक्षा देखी चीज ही बच्चो को अधिक आसानी से समझ मे आ जाती है और देर तक याद रहती है। यही कारण है कि इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान की शिक्षा मे दृश्य-सामग्री का प्रयोग सब कुशल अध्यापक करते है और इनके बिना इन विषयो का ज्ञान-दान अधूरा समझा जाता है। बाल सग्रहालय का भवन तो आकर्षक होना ही चाहिए साथ ही साथ उसमे सामग्री तथा सामग्री के प्रदर्शन के सभी

व्यवधान भी बहुत आकर्षक होना चाहिए। इस संग्रहालय मे सभी विषयों की जानकारी के लिये जो चीजे जुटाई जावे, वे सब बच्चो का मनोरजन करने वाली होने के साथ-साथ ज्ञानोत्पादक भी होनी चाहिए। इस देश मे स्कूल न जाने वाले छोटे बच्चो के लिये सग्रहालय खोलने की नितान्त आवश्यकता है। इन सग्रहालयो मे देश-विदेश के गुड्डे-गुडियो तथा नाना प्रकार के खिलौने होने चाहिए। खिलौनो द्वारा नित्य-प्रति काम मे आने वाली वस्तुओ का प्रदर्शन होना चाहिए। साथ ही साथ भारत और उसके बाहर के महापुरुषो आदि के चित्र होने चाहिए तथा दैनिक जीवन मे काम मे आने वाली वस्तुओ के प्रदर्शन द्वारा ज्ञान-दान देने की सुविधाये होनी चाहिए।"

सौभाग्यवश देश मे बाल-सग्रहालयो की उपयोगिता का अनुभव किया जा रहा है। भारत का प्रथम बाल संग्रहालय अमरेली (गुजरात) का है जो श्री प्रताप राय गिरधारी लाल मेहता के सद् प्रयासो द्वारा स्थापित हुआ था। उसके पश्चात् सागानेर का बाल-सग्रहालय खोला गया जो देश मे अपने ढग का अनूठा सग्रह है। विज्ञान, देश और विदेश की विभूतियाँ, भारत के कला-तीर्थ व लोक-नृत्य आदि सभी विषयो को इसके कक्षो मे स्थान मिला है। इसके एक पृथक् कक्ष मे प्लैनेटेरियम नामक यंत्र रक्खा है। इस यत्र को चालू करने पर बालक के आगे तारो से भरा नीला आकाश, पर्दे पर चल-चित्र को भाति आ जाता है। शिशु को खगोल विद्या का ज्ञान कराने के लिये इस यत्र का आविष्कार किया गया है। श्री मेहता के प्रयत्नो के फलस्वरूप ही आज राजस्थान सरकार ने अपने प्रान्त मे छोटे-वडे, पचास से भी अधिक सग्रहालयो की स्थापना की है।

लखनऊ मे प० मोतीलाल नेहरू स्मारक समिति के तत्वावधान तथा श्री चन्द्रभानु गुप्त के सरक्षण मे एक अत्यन्त सुन्दर व सफल बाल-सग्रहालय चल रहा है। इसके स्वास्थ्य-कक्ष मे विभिन्न रोगो और उनके बचाव आदि को चार्टो तथा अन्य वस्तुओं द्वारा समझाया गया है। खिलौनो के कमरे मे देश और विदेश से चुने हुये खिलौने रक्खे है।

श्री स्वामी केशवानन्द ने भी भारत के विभिन्न प्रान्तों के खिलौनो का संकलन किया था। बनारस, लखनऊ, कृष्णनगर, कोण्डापल्ली व अन्य स्थानो के मिट्टी, कपडा, खाल, काष्ठ, पेपियरमेशी व धातु आदि के विविध सुन्दर खिलौने इस सग्रह मे थे। स्वामी जी महाराज कुछ खिलौने चीन, ब्रह्मा, श्री लका तथा अन्य देशों से लाये थे। सग्रहालय के कक्षो के पुनर्गठन के पूर्व यह सामग्री सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय के कक्षो मे भी रखी थी, धातु की वस्तुयें, धातु कक्ष मे, काष्ठ को काष्ठ-कला विभाग मे आदि—किन्तु उसी सामग्री से लगभग दो वर्ष पूर्व मैने बाल-सग्रहालय का उद्घाटन सुश्री इन्दुबाला सुखाडिया अध्यक्षा समाज कल्याण विभाग राजस्थान के करकमलो द्वारा कराया था। भारत मे बाल-संग्रहालय के आन्दोलन के अग्रणी श्री प्रताप

राय गिरधारी लाल मेहता से इसमे परामर्श मिला और उन्ही के द्वारा स्वामी जी महाराज ने बाल-सग्रहालय का कई सहस्र का अन्य उपयोगी सामान खरीदा। अब एक नये भवन मे बाल-सग्रहालय की स्थापना हो गई है। उसे पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य श्री विनोवा भावे, श्रीमती इदिरा गाधी तथा श्रीमन्नारायण आदि नेताओ ने देखा है और उस सग्रहालय की भूरि-भूरि सराहना की है।

भारतीय खिलौनो को वर्गीकरण की दृष्टि से कई प्रकारो मे बाटा जा सकता है। कुछ खिलौनो मे विविध प्रान्तो के लोग दिखाये जाते है, जैसे बगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठा आदि। उनकी वेशभूषा, उनके प्रान्त की परिचायक होती है। कुछ खिलौनो मे विभिन्न पेशो के लोग दिखलाये जाते है। इस प्रकार के छोटे खिलौने लखनऊ मे बनते है और बडे कृष्णनगर, नागपुर तथा इन्दौर आदि मे। इस प्रकार की मानवाकार मृण्मूर्तियो के कई चित्र श्री रुस्तम जे. मेहता ने अपने ग्रन्थ 'हैण्डीक्राफ्टस् एन्ड इंडस्ट्रियल आर्ट ऑफ इडिया' मे प्रकाशित किये है। श्री स्वामी केशवानन्द जी इन्दौर के किसी कारीगर की बनी हुई कथावाचक की एक सुन्दर और प्राणवान मानव-आकार की मृण्मूर्ति लाये थे। यह मूर्ति अब भी सुरक्षित है। वे इसी प्रकार की वीणा पाणि सरस्वती की भी एक अन्य सजीव मृण्मूर्ति लाये थे।

खिलौनों का दूसरा प्रकार देवी-देवताओ की मिट्टी की मूर्तियाँ है जिन्हे कुशल और अकुशल सभी कुम्हार बनाते है। इनमे लक्ष्मी और गणेश मुख्य है जिनकी मिट्टी की मूर्तियो की दीपावली के विशेष-पर्व पर पूजा की जाती है। बगाल की दुर्गा और महाराष्ट्र की गणेश-मूर्तियो की चर्चा हम कर चुके है। कृष्ण, गोपियाँ, शिव व अन्य देवताओ की मूर्तियाँ भी यह कुम्भकार बडे चाव से बनाते है और फिर उन्हे भाति-भाति के रगो से रगते है।

कुछ खिलौने ऐसे भी बनाये जाते है जिन्हे देख कर बच्चा हसता-हसता लोट-पोट हो जाता है, जैसे मोटे पेटवाले सेठ-सेठानी, लम्बी चुटिया वाले, माथे पर चन्दन की खौर लगाये, कृष्ण-वर्ण ब्राह्मण देवता आदि। कुछ खिलौनो मे समूचे दृश्य ही मिट्टी मे ढाल दिये जाते है, जैसे विवाह के दृश्य मे वर-वधू तथा सखियाँ, मणिपुरी नर्तन मे गोपिकाये तथा नृत्यरत श्रीकृष्ण, अपनी मडली के साथ नाचते-गाते हुये चैतन्य महाप्रभु।

देश के कुछ प्रख्यात शिल्पियो ने मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस के मॉडल भी बनाने प्रारम्भ कर दिये है। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री सुधीर खास्तगीर ने मृत्तिका के माध्यम से कुछ प्रयोग किये है। श्री खास्तगीर द्वारा बनी गांधी जी की मूर्ति ग्रामोत्थान विद्यापीठ के पुस्तकालय मे शोभित है। श्री श्रीधर महापात्र ने मिट्टी की बड़ी सुन्दर व सफल कला-कृतियाँ बनाई है।

देश के अनेक स्थानों मे आज मिट्टी के खिलौने बनते हैं। उनके अतिरिक्त काष्ठ, पेपियरमेशी, धातु, चन्दन, काष्ठ व हाथीदात के भी खिलौने बनते रहते हैं।

मिट्टी के कलापूर्ण खिलौनो के लिये पिछली शताब्दी से लखनऊ प्रख्यात रहा है। वहा दो अगुल के छोटे खिलौनो से लेकर आदमकद खिलौने तक बना करते है। लेखक को भली भाति स्मरण है कि उसके बचपन मे मैनपुरी के राजा के यहां प्रति वर्ष श्रावण मास मे लखनऊ के कोई उस्ताद आया करते थे। वे झाँकियाँ तैयार करते थे और प्रतिदिन एक नई आदमकद मिट्टी की प्रतिमा तैयार करते थे। उसी दिन वह सूखती थी और उस पर रग भी चढाये जाते थे। उन मूर्तियो की सुन्दरता और सजीवता को देखने के लिये नित्य हजारो स्त्री-पुरुषो की भीडे आया करती थी। लखनऊ का मृत्तिका-शिल्पी अब भी नवाब, दास-दासिया आदि बनाता है और वे अपने रगो के कारण बडे सजीव प्रतीत होते है। खिलौने पर सबसे पहले खडिया से सफेद रग चढाया जाता है और फिर केश, नेत्र, मास-पेशियाँ आदि विविध रगो से दिखलाई जाती है। जो कारीगर अपने फन मे जितना उस्ताद होगा उसे अपनी कृति मे स्वाभाविकता लाने की उतनी ही चिन्ता रहेगी। लखनऊ के मिट्टी के फल, सेव, अनार, अगूर, बेर और केले आदि इतने सच्चे मालूम होते है कि बच्चे उन्हे ललक कर उठा लेते है। चिडियो, फलो और विभिन्न पेशे के लोगो के २४ खिलौनो के सेट की न केवल देश मे माग रहती है, वरन् उन्हे विदेश मे भी भेजा जाता है। लखनऊ के शिल्पियो के कई घराने वश-परम्परा से यह काम कर रहे है।

"भारतवर्ष मे लखनऊ की मिट्टी की कला सर्वश्रेष्ठ रही है। नवाब वाजिद-अली शाह के समय स्वर्गीय श्री गज्जनलाल जी इस कला के विख्यात् कलाकार थे। उनके पुत्र श्री गुलाबदास, निजाम हैदराबाद के यहाँ से पेन्शन पाते थे। सर्वश्री छेदीलाल, हीरालाल, गगाराम और भगवान दास जी लखनऊ के प्रसिद्ध कलाकारों मे गिने जाते थे। लखनऊ मे स्वर्गीय श्री मथुराप्रसाद जी ऐसे कलाकार हो गये है जो माडलो मे नाजुकपन लाने मे अद्वितीय थे। वे लदन भी हो आये थे ? लखनऊ आर्ट स्कूल के मास्टर जानकीप्रसाद जी इस समय देश के एक नामी मिट्टी के खिलौने के कलाकार है।"

बगाल मे कलकत्ता, नूतनग्राम, शातिनिकेतन, राज नगर और जय नगर आदि आदि मृत्तिका शिल्प के मुख्य केन्द्र हैं जिनमे कृष्ण नगर का नाम अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है। कृष्ण नगर मे मृत्तिका-शिल्पियो के परिवार है जो वश-परम्परा से इस कला द्वारा जीविका उपार्जन कर रहे हैं। कृष्णनगर के एक शिल्पी के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि एक बार बगाल के गवर्नर का उस ओर दौरा लगा। जब वे उत्सुकता-वश कृष्ण नगर मे बगाल की इस लोक-कला को देखने गये तो उस शिल्पी ने देखते-देखते ही उनकी मृण्मूर्ति तैयार कर दी। गवर्नर उसके हस्तलाघव और कार्य-कुशलता को देखकर आश्चर्य से चकित रह गये और उन्होने उसे पुरस्कृत किया। बगाल की

मृत्तिका-शिल्प की लोक कला की अपनी प्राचीन परम्परा है, जिसका परिष्कृत रूप ही कृष्ण नगर की कला है। बगाल मे कपडे, बेत, पत्तियां, काष्ठ और मिट्टी से गुडियाँ बना करती थी। अब केवल काष्ठ और मिट्टी का ही माध्यन शेष है। माता और पुत्र, कुमारियाँ, साधु लोग और अन्य भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने, बगाल की रमणियाँ अपने बच्चो के खेलने के लिये घर पर ही बना लेती थी। बहुधा यह खिलौने धूप मे सुखाकर रग लिये जाते थे। श्री अजितकुमार मुकर्जी ने इस लोक कला के सम्वन्ध मे लिखा है :

"Endowed with traditional lore, the women of Bengal easily shape such dolls and toys by pinching with their hands the pure clay free from any other foreign element. To mark the eyes, the ornaments or the pointed breasts of the hand made figures, pellets are stuck into the body. Sometimes the apple of the eye or the ornaments of the limbs are shown either by perforation or by grooves"

कृष्ण नगर के शिल्पी एक आकृति ही नही वरन् समूचे दृश्यो को तैयार करते है। उनमे विविध प्रकार की कई सजीव आकृतियाँ दिखलाई जाती हैं। नृत्य मे विभोर गौराग महाप्रभु और उसके साथ सकीर्तन करने वालो की टोलियाँ, गोपियो से घिरे कृष्ण; ढोल और वन्शी बजाते हुये सथाल युवक और थिरकती हुई आदिवासी तरुणियाँ, कृष्ण नगर के शिल्पियो के प्रिय विषय है। वे शिव और लक्ष्मी व सरस्वती की विशाल और मनोहारिणी मूर्तिया भी बनाते है।

"The potters of Krishan Nagar produce admirably modelled figures and toys, perfect in detail, and brilliant in colouring, the most popular representations being Lakshmi, the goddess of wealth, Ganesh with his elephant head, Saraswati with her veena, fishermen, peasents, farmers, shepherds, all in their typical costumes, however little that may be"

कृष्ण नगर ही क्या सभी स्थानो के शिल्पी एक ही प्रकार की वस्तु के बहुत से नमूने तैयार करने के लिए 'प्लास्टर आफ पेरिस' के साँचे तैयार करके रख लेते है। तैयार कला-कृति पर पहले खडिया चढा ली जाती है फिर उस पर नीला, हरा, लाल या वस्तु के सादृश्य के अनुकूल अन्य रग चढा लिया जाता है। रग मे गोद मिला रहता है ताकि अधिक दिनो तक ठहरे। उसके पश्चात् मृत्तिका की उस मूर्ति पर वार्निश भी चढ़ाई जाती है जिससे उसमे एक चमक आ जावे।

पूना, नागपुर, इन्दौर तथा अन्य स्थानो मे तैयार की जाने वाली विशाल-काय गणेश मूर्तियो की चर्चा की जा चुकी है। जिस समय शिल्पियो को अवकाश रहता है, वे अन्य देवी-देवताओ की भी बडी सुन्दर व भावमयी मूर्तिया बनाते रहते है। नागपुर इस प्रकार के शिल्प का एक बडा केन्द्र है और अभी कुछ दिनो पहले ही शासन ने एक बडी निधि स्वीकृत करके इस कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन भी दिया है।

१०. भारतीय काष्ठ-कला

भारतवासियों ने अपने उपास्य देवगण मे एक शिल्पी देव, विश्वकर्मा की भी परिकल्पना की है। वही देवी-देवताओ के रथो का निर्माण करता है, उनके आभूषण गढता है और वही उनके लिये शिल्प की सारी वस्तुये तैयार करता है। वह देवगण का बढई माना जाता है। रूपावलीय के शास्त्रकार के मानव-चक्षुओ के सम्मुख विश्व-कर्मा इस प्रकार साकार हुआ है—

"हे विश्वकर्मा! मै तुम्हे प्रणाम करता हूँ। तुम प्रख्यात हो, तुम स्वतन्त्र हो, तुम महान् हो और न्यायपूर्ण हो। तुम्हारे भाल मे पॉच तिलक लगे हुए है। तुम्हारे दस हाथ है। एक हाथ मे पुस्तक है, दूसरे मे कलम है, तीसरे मे तलवार है, चौथे मे कुठारिका है, पांचवे मे जुम्बीर है, छठे मे प्याला है, सातवे मे जलपात्र है और आठवे मे माला है। तुम्हारे गले पर नागराज और एक पाश है। तुम्हारे भाल से दृढता टपकती है, तुम्हारी मुद्रा से दया प्रकट होती है। तुम स्वर्णिम यज्ञोपवीत पहने हुए हो"[१]

काष्ठ-कला का शिल्पी विश्वकर्मा के प्रतीक-रूप मे औजारो और अस्त्रो का अक्षत और चन्दन लेकर पूजा किया करता है।

काष्ठ-कला भारत की अत्यन्त प्राचीन कला है। कुछ विदेशी कला-समीक्षकों की राय है कि काष्ठ का 'फर्नीचर' के रूप मे इतना उपयोग नही था जितना कि आज-कल हो गया है। घर अथवा बगले मे फर्नीचर का आधिक्य विदेशी शासको की देन है। यदि उनकी यह राय सच भी समझ ली जावे तो इसका अर्थ यह नही कि प्राचीन भारत मे गृह-शोभन या उपयोगिता के लिये काठ की सुन्दर व कलात्मक वस्तुयें न बना करती थी। तत्कालीन साहित्य में विविध प्रकार की चौकियों व शैयाओं का उल्लेख आया है जिनसे प्राचीन भारत के भवन सुसज्जित रहते थे। खेती के औजार तथा रथ व गाडियो आदि तो काष्ठ-शिल्पी गढते ही थे। उत्तर-मध्य-कालीन कोणार्क के मन्दिर के प्रस्तर-शिल्प मे सूर्य के रथ के पहिये उत्कीर्ण किये गये है। उनकी खुदाई की बारीकी देखते ही बनती है। उनको किसी रथ के अलकृत पहिये के आधार पर ही बनाया गया होगा अथवा उस प्रकार के कलापूर्ण रथों के पहिये उन दिनो बनते होगे।

---

१. भारतीय सस्कृति और शिल्प-कला, डा० राधाकुमुद मुकर्जी, विश्ववाणी, सस्कृति अक, पृष्ठ १४१.

हिमालय और उसके सघन वनों के कारण इस देश मे लकडी का अभाव कभी नही रहा। इन वनो मे सैकड़ो किस्म की, अच्छी से अच्छी लकड़ियाँ उपलब्ध हो जाती है। कौन सी लकड़ी खुदाई के लिये उत्तम रहेगी, कौन सी मज़बूती के कारण भवन-निर्माण मे अधिक उपयोगी है, इसका निर्णय अपने अनुभव के आधार पर कुशल काष्ठ-शिल्पी ही कर सकता है। एक समीक्षक की राय मे हमारे देश मे ईधन की लकड़ियो को छोडकर सोलह सौ प्रकार की लकड़ियाँ मिलती है।

वाराह मिहिर की वृहत् सहिता मे निम्नलिखित प्रकार की लकड़ियो का उल्लेख प्राप्त होता है—

आसन (चिरौजी) स्पन्द, चन्दन, हरिड, देवदारु, तेदू अथवा आबनूस, शाल, शीशम, सागौन, पद्मक और अजन आदि। सुगन्धित वस्तुओ के लिये चन्दन और कर्पूर की लकडी को व्यवहार मे लाया जाता है। चन्दन पर हम एक पृथक् लेख मे चर्चा कर चुके है। द्वारो और चौखटो आदि मे पहले शीशम की लकड़ी को ही अधिक व्यवहार मे लाते थे। खेल के सामान तथा ब्लॉक्स के लिये बक्स-काठ अधिक उपयोगी समझा जाता है। विलायती लकडियो मे मेहगनी, ओक, पाइन, ऐश, विलो आदि बहुत प्रसिद्ध है। इनमे स्पेनिश मेहगनी बहुत सुन्दर लकडी समझी जाती है और इसका बना हुआ सामान काफी मूल्यवान भी होता है।

श्रेष्ठ लकडी की पहचान यह है कि वह व्यवहार मे तो मजबूत हो ही, रग मे भी सुन्दर हो। उसमे रेशे अथवा गाठे न हो और कील ठोकते समय फट न जाय।

काष्ठ-शिल्पी बहुधा विविध प्रकार की लकड़ियो पर प्रयोग नही करते वरन् दो-तीन प्रकार की लकडिया चुनकर उन्ही पर काम करते है। उन्हे उन लकड़ियो की मज़बूती का अन्दाज हो जाता है और उनका हाथ उस लकडी पर उसी प्रकार से अभ्यस्त हो जाता है। कुछ शिल्पी विशेष रगो के लिये अलग-अलग प्रकार के काष्ठ का उपयोग करते है। यो तो सभी प्रकार के काठ पर रग चढाया जा सकता है किन्तु स्वाभाविक रग ही अधिक पक्का और शोभायुक्त रहता है। कुछ विशेष रगों के लिये यह लकड़ियाँ उपयोग मे लाई जाती है।

"सफेद रग के लिये—मेरा, सेवँ और बुक। पीले रग के लिये—हलदू और कट-हल। लाल रक्ताभ रग के लिए—लाल चन्दन, वर्मा और अडमान का पाडौक और हिमालय का तुन। काले रंग के लिये—आबनूस (तेदू)। पीताभ गुलाबी रग के लिये—सागौन, चम्पा, जारूल।

अखरोट रंग के लिये—काश्मीरी अखरोट। गहरे लाल रंग के लिये—शिशु, सीतसाल (काला रुख)

गहरे बैगनी रग के लिये—सीतसाल सफेद और काला मिश्रत तथा पीला और काला मिश्रित रगो के लिये—सिरस और अडमान का जेब्रा आबनूस।"[1]

समस्त हस्त-उद्योगो मे लकडी का उद्योग सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। बढई गाँव की एक प्राथमिक आवश्यकता है क्योकि वही खेती के औजार, गाड़ियाँ, घरो की चौखटे आदि तैयार करता है। भारत मे शायद ही ऐसा कोई बड़ा गाव होगा जिसमे बढई लोगो के थोडे न बहुत घर न हो। नगरो मे काम अधिक होने से उनमे से बहुत से परिवार गावो को छोड़कर चले गये है। कुछ ने शहरो मे फर्नीचर के दूकानदारो के यहाँ काम तलाश कर लिया है।

अखरोट की लकडी का जितना सुन्दर काम काश्मीर मे होता है, उतना किसी अन्य स्थान मे नही होता। श्रीनगर काष्ठ-शिल्पियो का एक बडा केन्द्र है। अखरोट की लकड़ी, जो काश्मीर मे बहुतायत से पाई जाती है, न अधिक कडी होती है और न मुलायम इसलिए उस पर कटाई बहुत सधे हुए हाथो से होती है। कटावदार पर्दे, सदूकची, छोटी मेजे, टेबिल-लैम्प, पुस्तको के आधार, नाविक के साथ शिकारा, चिनार के सुन्दर पत्ते, सिगरेट-केश आदि हस्त-कला की विशेष वस्तुए है जिनकी भारत के अलावा विदेशो मे भी माग बढी है। काश्मीर वनो और सुन्दर वृक्षो का देश है। यहा की घाटी मे अखरोट बहुतायत से उगता है। वनो मे पहले अखरोट के इन वृक्षो का पोषण होता है और उनकी सुरक्षा की जाती है। जब वृक्ष का काठ पक जाता है तभी उसे काटा जाता है। काश्मीर मे अखरोट की इस लकड़ी पर उभरा हुआ काम भी किया जाता है खुदाई भी। श्रीनगर के हज़ारों मुसलमान कारीगर इस शिल्प द्वारा उदर पालन कर रहे है। उनके हाथ के बने चिनार और कमल पैटर्न बड़े शोभायुक्त लगते है।

उत्तर प्रदेश मे काष्ठ-कला के मुख्य केन्द्र नगीना (बिजनौर) अलीगढ, बरेली, बुलन्दशहर, लखनऊ व मैनपुरी आदि नगर रहे है। इन स्थानो मे शीशम का ही अधिक व्यवहार होता है। नगीना और बरेली का फर्नीचर सारे उत्तर-प्रदेश में जाता है इन स्थानो मे बनी हुई वस्तुए काफी टिकाऊ और मजबूत रहती हैं किन्तु उन्हे दूसरे स्थान पर ले जाना कठिन ही होता है क्योकि वे काफी भारी होती है।

मैनपुरी तारकसी के काम के लिए प्रसिद्ध है और यह पुरानी लुप्त कला वहाँ फिर से पनपने लगी है। शीशम के तश्तरी, सन्दूकची के ऊपरी भाग अथवा खडाऊँ को लेकर उसके ऊपर बारीक खुदाई की जाती थी और उसमे बारीक कीलों के सहारे ही पतला तार भरा जाता था। आकृति मे इतनी सूक्ष्मता रहती थी कि देखकर आश्चर्य होता है। नगीना मे आबनूस का काम भी बहुत सुन्दर होता था। छोटी-छोटी गोल

१ विशाल भारत, कला अक, (१९५१) पृष्ठ ७५.

मेजो की बारीक खुदाई नगीना की विशेषता थी। बरेली मे शीशम के बड़े-बड़े द्वार बना करते थे, जिनमे मूर्तियाँ उभरी रहती थी।

योरोप के अनेक देशो मे कठखुदाई की कला बहुत लोक-प्रिय हुई है। इसे 'वुड-कट' कहते है। शिल्पी लकडी का एक टुकड़ा लेकर उस पर पेन्सिल से रेखा-चित्र बनाता है और फिर एक तेज़ रुखानी से उस चित्र को रेखाओं को काट-काट कर तैयार करते है। यदि उस चित्र पर स्याही फेर दी जावे तो चित्र की रेखाए स्पष्ट हो उठेगी तथा बिना कटी हुई पृष्ठ-भूमि काली दिखाई देगी। काले रग मे से सफेद रेखा-चित्र उभर कर सामने आ जावेगा। रेखाओ मे जितना प्रवाह और दृढता होगी चित्र उतना ही सफल आवेगा। चित्रकार को रगो की सहायता प्राप्त रहती है किन्तु कठखुदाई के चित्रकार के पास प्रकाश और रगो का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए केवल काली व सफेद रेखाए हो होती है। शिल्पी कभी कभी काले रग मे हल्के हल्के विन्दु बना देता है, जिससे प्रकाश का आभास दिखलाई देने लगता है। सूर्य की किरणे, जल की लहरो की चमक आदि दिखलाने के लिए काष्ठ-शिल्पी इसी प्रकार के विन्दु छाटता है।

भारतीय कला के पुनरुद्धार के बाद बगाल चित्र-शैली के कलाकार आचार्य श्री नन्दलाल और उनके शिष्यो ने काष्ठ पर भी प्रयोग किए। उनमे रामेन्द्रनाथ चक्र-वर्ती को इस प्रकार के चित्र तैयार करने मे विशेष ख्याति मिली। 'सथाल-परिवार', 'यमुना तट का आश्रम' आदि उनके कठखुदाई के ही सुन्दर व सफल रेखाकन है। इस माध्यम मे तूलिका के स्थान पर तेज चाकू या रुखाई का व्यवहार करना पड़ता है इस लिए अधिक सावधानी भी बरतनी पडती है। यदि कोई रेखा अधिक कट थाय तो उसका प्रवाह और वेग तो नष्ट होता ही है, सारी कृति ही प्रभावहीन और व्यर्थ हो जाती है, इसलिए इसमे सधे हुए अभ्यस्त हाथो की जरूरत रहतो है। गुजरात के चित्र-कार श्री कनु देसाई ने भी कुछ 'वुड कट' तैयार किए हैं।

काष्ठ को मूर्ति के माध्यम रूप मे भी अपनाया गया है। काष्ठ की प्रतिमाओ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ग्रीक इतिहासकार मेगस्थनीज ने लिखा है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र के काष्ठ-प्रासाद के स्तम्भो पर पक्षियो आदि की बड़ी ही मनो-हर मूर्तियाँ बनी हुई थी। फाहियान, स्यूअम् चुआङ् और इत्सिग आदि चीनी महापर्य-टको ने अपने भ्रमण-वृत्तातो मे बुद्ध, बोधिसत्व और तारा देवी की मानवाकार से भी बड़ी काष्ठ प्रतिमाओ का उल्लेख किया है। श्यूआन् चुआङ् के वर्णन के अनुसार पहिली बुद्ध-मूर्ति चन्दन काष्ठ की ही बनी थी। चीन मे भी काठ की बुद्ध मूर्तियो का अधिक प्रचलन था। न्यूयार्क के एलिस बोनी कलैक्शन मे बोधिसत्वो की दो काष्ठ-प्रतिमाए है जिनका समय चन् वश का काल (सन् ६१८-९०६) निश्चित किया गया है। चीन मे अब भी बड़ी काष्ठ-प्रतिमाएं बनती है, जिनके ऊपर लाख चढाकर चित्रकारी की

जाती है । इस प्रकार की दो काष्ठ-मूर्तिया सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय मे भी सुरक्षित है, जिनकी चर्चा हम 'चीन की कला' मे कर रहे है । सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय ही 'माता और पुत्र' की एक काष्ठ-प्रतिमा है, जिसका समय अत्यन्त पुराना माना गया है । यह सौराष्ट्र की एक अत्यन्त सुन्दर काष्ठ-मूर्ति है ।

वर्तमान काल मे भी काष्ठ की भावमयी मूर्तिया बनने लगी है । इसमे मुख, नेत्र और अन्य अवयवो की स्पष्टता और स्वाभाविकता की ओर उतना ध्यान नही दिया जाता जितना कि भाव-व्यजना और प्रतीकात्मकता की ओर—

पिछले अध्याय मे हम मिट्टी के खिलौनो की चर्चा कर चुके है । लकड़ी के खिलौने भी मिट्टी के खिलौनो की भाति ही लोक-प्रिय है । इन खिलौनों मे मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि रहते है किन्तु इनमे वस्तु के सादृश्य की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता । हाथी हरा भी हो सकता है, लाल भी । खिलौने के चटक रग बालक को अपनी ओर आकर्षित करते है और उसकी कल्पना की उडान शुरू करते है ।

बगाल के लकड़ी के खिलौने लोक-कला के अन्तर्गत ही रक्खे जा सकते है । कालीघाट, बर्दवान और टिपेरा आदि मे लकडी के हाथी, घोडे और रथ आदि बनते है । उनमे नीचे पहिए लगा दिए जाते है । वहा लकडी की गुड़ियाए भी बनती है जिनका पीछे का एक ओर सपाट रहता है और आगे मोटा सा कटाव करके वस्त्र, तथा मुख आदि अवयव चित्रित कर दिए जाते है ।

उत्तर प्रदेश मे बनारस या वाराणसी लकडी के खिलौनो का बडा केन्द्र है । लकड़ी के खिलौनों के यह दूकानदार विश्वनाथ मन्दिर की गली मे बैठे रहते है । रंगीन पछी, डिब्बिया और डिब्बे आदि की यात्री लोग खरीद करते रहते है । वाराणसी धातु के खिलौनो के लिए भी प्रसिद्ध है ।

दक्षिण के कोण्डापल्ली के खिलौने अपनी सुन्दरता तथा रगों के लिए बडे प्रसिद्ध है । यह बहुत हल्के रहते है । यहा के काष्ठ-शिल्पी विष्णु के अवतार, मन्दिर, नृत्य-दृश्य, किसान जीवन के अकन, अम्बारी सहित हाथी बनाते है जिनकी भारत ही नही अन्य देशो मे भी माग रहती है । विदेशी, कुटीर उद्योग के केन्द्रो से इन्हे बडे चाव के साथ ले जाते है ।

काठ की कला के मुख्य प्रकार पच्चीकारी, खुदाई व लुक का काम आदि हैं । काष्ठ कला मे पच्चीकारी का एक विशेष मान है, जिसे वही कारीगर कर सकता है जिसने उसमे सतत् अभ्यास द्वारा दक्षता प्राप्त कर ली हो । पच्चीकारी से वस्तु के सौन्दर्य में वृद्धि होती है और उसका मूल्य बढ जाता है । कुछ कला-समीक्षक पच्चीकारी की कला को अति प्राचीन मानते हैं और उसकी प्रारम्भिक कड़ियाँ मोहेंजो दड़ो और हड़प्पा की प्राक्-ऐतिहासिक कला में खोजने का प्रयत्न करते है । कुछ इसका श्रेय मुगलो को देते है जिनके युग में वास्तु-कला मे इस शिल्प का प्रवेश हुआ, संगमर्मर

श्रौर पाषाण मे मूल्यवान श्रौर साधारण रत्न जडे गए। कुछ विद्वानो की राय है कि काष्ठ पर पच्चीकारी की यह कला फारस के शीराज नगर से भारत मे सबसे पहले सिन्ध में श्राई। इस शिल्प कला के प्रवर्तक पुरुषोत्तम हीरालाल, देवीदास श्रौर बली-राम माने जाते है। यह तीनो कारीगर भाई थे। बाद मे इसका प्रचार बम्बई श्रौर सूरत मे हुश्रा। इस कला के निष्णात शिल्पियो मे लालचन्द, मनोहरलाल व रतनचन्द श्रादि का नाम लिया जाता है।[1] सर जॉन बर्ड वुड ने 'पैटर्न' की दृष्टि से पच्चीकारी के कई प्रकार बतलाए है जिनको टिनकोनिया गुल, चक्कर गुल, चौरस गुल श्रौर एक दाना नाम दिए जाते है।[2] यदि इस तकनीकी बारीकी मे न भी जाया जाय तो भी पच्चीकारी के मुख्य दो प्रकार माने जा सकते है। एक प्रकार मे मेज, सन्दूकची या तश्तरी श्रादि पर श्रन्य प्रकार के काष्ठ, हाथीदात, श्रस्थि, शख या धातु के टुकडे को पच्चीकारी मे जडा जाता है। शख, सीपी, हाथीदात या श्रन्य वस्तु को, जिसकी पच्ची-कारी करनी होती है फूल, पत्ती या श्रन्य श्राकृति के रूप मे काट लिया जाता है। काष्ठ की वस्तु मे तराशी करके उतना स्थान रिक्त रक्खा जाता है। उसमे लाख द्वारा वह टुकडा जमा दिया जाता है। दूसरी प्रकार की पच्चीकारी 'तारकशी' कहलाती है। इसमे श्रत्यन्त सूक्ष्म, बारीक डिजायन को रेखा-चित्र की भाति काष्ठ पर उतार लिया जाता है। यह कार्य सरल नही है। इन शिल्पियो की वस्तु की 'तरह' पर ही दृष्टि टिक नही पाती श्रौर न यह समझ मे श्राता है कि इतना बारीक काम कैसे किया गया? डिजायन या श्राकृति पर पतली कीलो के सहारे पीतल का तार जडा जाता है। उत्तर प्रदेश का मैनपुरी नगर इस 'तारकसी' का बडा केन्द्र था।

पजाब मे जालन्धर श्रौर होशियारपुर पहले प्रकार की पच्चीकारी के प्रख्यात् केन्द्र रहे है।

इन स्थानो के शिल्पी शीशम श्रौर देवदार श्रादि पच्चीकारी (inlaying) करते है। इस कार्य के लिए सभी स्थानो के शिल्पी (काश्मीर को छोड़कर) शीशम को श्रधिक पसन्द किया करते है। होशियारपुर की बनी हुई शीशम की एक ऐसी ही सुन्दर प्लेट सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय के श्राधुनिक कला-कक्ष मे सुरक्षित है।

भारत मे काष्ठ पर सबसे सुन्दर पच्चीकारी मैसूर मे की जाती है। मैसूर मे श्राबनूस पर भी हाथीदात की पच्चीकारी होती है। टीपू सुल्तान के मकबरे के द्वार पर ऐसा ही काम है। श्री रुस्तम जे मेहता ने लिखा है।

"The designs adopted at Mysore are realy artistic and the Craftsmenship excellent, perhaps superior to that of the ivory workers of Hosiarpur and Jallunder. The Mysore work has a

---

१. हैण्डीक्राफ्ट्स एण्ड इन्डस्ट्रियल श्रार्ट श्राफ इडिया, पृष्ठ ६४.

२. वही पृष्ठ ६४.

simple chaste dignity, the surface of the article being decorated never overloaded with ornamentation"

मैसूर की हाथीदात की पच्चीकारी की कला कितनी प्राचीन है यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। मैसूर के नृपतियो ने अन्य चारु-शिल्प और कारु-शिल्प की भाति इसे प्रोत्साहन दिया। सन् १९०२ ई० को दिल्ली की कला-प्रदर्शनी मे मैसूर का एक 'कैबिनेट' आया था जिस पर हाथीदात की पच्चीकारी की गई थी और विष्णु आदि देवगण अकित किए गए थे। उसका मूल्य उस सस्ते समय मे भी बारह सौ रुपये कूता गया था। आधुनिक समय मे लकड़ी पर हाथीदात के टुकडे जडकर विविध आकृतियाँ तथा दृश्य तैयार किए जाते है। सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय मे महाराज मैसूर का एक काष्ठ-चित्र पच्चीकारी का एक श्रेष्ठ नमूना समझा जा सकता है जिसमे महाराज के शरीराग और आभूषणों के स्थान पर हाथीदात जडा गया है। हाथीदात पर, (आकृति मे स्पष्टता आने के लिए) रगीन रेखाएं भी खीची गई है। सग्रहालय की एक अन्य कला-कृति, बीन को बजाकर सर्प को नचाता हुआ सपेरा भी इसी शिल्प का नमूना है।

उत्तर प्रदेश मे बिजनौर के निकट नगीना नामक कस्बा है। नगीना के बढ़इयों की कुछ परिबार, वश-परम्परा से काष्ठ की दस्तकारी, विशेष-रूप से पच्चीकारी द्वारा अपना जीवन यापन कर रहे थे। वहा आबनूस की लकडी पर हाथीदात की पच्चीकारी की जाती थी। रग के विरोधाभास के कारण काले रग पर सफेद रग खिल उठता था। सन् १९०२ ई० की कला-प्रदर्शनी मे नगीना का लगभग दो सहस्त्र रुपयो के मूल्य का पर्दा रक्खा गया था।

आबनूस का काम मुगेर मे भी होता था। मुगेर के आबनूस के बक्से, छोटी मेजे और दैनिक उपयोग की पच्चीकारी की अन्य वस्तुयें दूर-दूर तक भेजी जाती थीं। सर जार्ज व्हॉट ने लिखा है कि इस प्रकार की वस्तुयें औरगाबाद और रत्न गिरि मे भी बना करती थी।[1] दक्षिण भारत मे पच्चीकारी के शिल्पियो के कुछ परिवार विजगापट्टम मे भी रहते थे किन्तु वे चन्दन की छोटी छोटी वस्तुये बना कर उन पर कछुए की खपडी या सीपी से पच्चीकारी किया करते थे।

शिल्पी पच्चीकारी से पहले एक खाका तैयार करता है, जिसमें वह कटाव अथवा स्थान दिखला लिया जाता है, जिसमें उसे पच्चीकारी करनी होती है। फिर हाथीदात, सीपी, धातु या अन्य काष्ठ का उसी के बराबर टुकडा काटता है। यह कटाव बडी कुशलता से किया जाता है क्योकि ज़रा सा बडा या छोटा हो जाने के पश्चात् वस्तु के रिक्त छोड़े हुये स्थान मे वह पूरा नही बैठता और वस्तु की शोभा नष्ट हो जाने का भय बना रहता है। कटे हुये टुकडे या डिजायन को रिक्त छोड़े हुये

१. इंडियन आर्ट एट दिल्ली, पृष्ठ १४१.

स्थान पर लाख या अन्य किसी मसाले से चिपका दिया जाता था। बाद मे ऊपर लगी लगी हुई लाख एक तेज चाकू से साफ कर दी जाती थी। फिर वस्तु-विशेष पर 'पॉलिश' कर दी जाती थी जिससे उस पर एक चमक आ जाती थी।

काष्ठ पर धातु, विशेष रूप से पीतल की पच्चीकारी यो तो पंजाब मे होशियारपुर और जालन्धर, दोनो स्थानो मे होती थी किन्तु चिनौट (पजाब) का काम सबसे अच्छा होता था। चिनौट का काष्ठ भी कुछ अच्छा होता था।

लेखक का जन्मस्थान मैनपुरी नगर 'तारकशी' के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है। मैनपुरी मे काष्ठ-शिल्पी यह काम वश-परम्परा से कर रहे थे। तारकशी की खड़ाऊँ बहुत दूर दूर जाती थी। दुर्गा मिस्त्री और मदन मोहन मिस्त्री इसी घराने के कुशल शिल्पो थे। दुर्गा मिस्त्रो के हाथ की बनी हुई शीशम की तारकशी की हुई मेजे, मन्दिर का मॉडल, दावात आदि सन् १८९३ ई० की जयपुर प्रदर्शनी मे मि० ग्राउस सी० आई० ई० द्वारा भेजी गई थी। समीक्षको ने इन वस्तुओ की सराहना भी की थी।[1] दिल्ली की कला प्रदर्शनी मे कन्हैयालाल मदन मोहन के हाथ की बनी तारकशी को मेज रक्खी गई थो और वह पुरस्कृत भी हुई थी। ग्राउस महोदय को इस लुप्त होती हुई कला मे बडी दिलचस्पी थी। उन्होने अपने समय के प्रसिद्ध पत्र 'इण्डियन आर्ट एण्ड इन्डस्ट्री' मे इस विषय पर सचित्र लेख भी प्रकाशित कराया था। प्रोत्साहन के अभाव मे यह कला नष्ट होती गई। अब पिछले कुछ वर्षो से इसे फिर जाग्रत करने का प्रयास किया जा रहा है।

काठ पर लाख, रगीन चपडे या अन्य वस्तुओ से लेप कर दिया जाता है और फिर उस पर विविध प्रकार की चित्रकारी को जाती है। काठ की वस्तु पर लाख की विविध रगो की तहे चढाकर उनको रुखाई से तराशा जाता है जिससे विभिन्न रंग उभर कर दिखलाई देने लगते है। इस काम को 'लुक' कहा जाता है। लुक का काम भारत के लगभग सभी प्रान्तो मे किया जाता है। इस शताब्दी के प्रारम्भ से फिरोजाबाद की कॉच की चूडियो का प्रचार बढ गया है अन्यथा इससे पहले सारे भारत मे लाख की चूडियाँ ही चलती थी। चपड़ा मध्य प्रदेश और बगाल मे तैयार किया जाता है। लाख के अलावा अन्य वस्तुओ को भी इस काम मे लाया जाता है।

"राजपूताने के शाहपुरे नामक कसबे मे शिल्पियो के कई घर है। वे ऊँट और गैडे की खाल की बनी हुई ढालो और तलवार आदि शस्त्रो के म्यानो पर लुक का काम करते है। इन लोगो की कारीगरी का ढग निराला है। रगीन लाख से उनका कोई सम्बन्ध नही है। वे पेड़ो से निकली हुई राल या गोद के समान अनेक चीजों को

---

१. मेमोरियल्स आफ जयपुर एक्जीबिशन, थामस एच० हैन्डले.

मिश्रित करके कई प्रकार की वार्निश तैयार करते है। इस वार्निश मे तरह-तरह के रग मिलाकर वे रग-बिरगे लुक का काम करते है। मद्रास प्रान्त के गजाम, कृष्णा और कर्नूल जिलो के कुछ कारीगरो की प्रथा इससे भिन्न है। वे हरिण की खाल के टुकड़ो को पानी मे भिगोकर तथा उन्हे उबाल-छान कर एक तरह का सरेस तैयार करते हैं। इस सरेस में एक प्रकार की पिसी हुई राल पानी के साथ मिलाकर एक लेई सी तैयार करते है। इस लेई मे मिट्टी की हाडी की टुकड़ियो की महीन चूर तथा घीग्वार का रस मिलाकर एक लेप बनाया जाता है। जिस चीज पर चित्रकारी करनी होती है, उसे साफ करके कूची के द्वारा इसी लेप से चित्रकारी की जाती है। इसमे चित्र की रेखाये उभरी हुई रहती है।"[१]

लुक का काम काष्ठ और पेपियर मेशी दोनो की वस्तुओ पर किया जाता है। इसका उद्देश्य पात्र या वस्तु को अधिकाधिक सुन्दर बनाना है। लुक का काम चीन और जापान मे सबसे अच्छा होता है। इन देशो की लुक की कला के कुछ सुन्दर नमूने सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय मे भी सुरक्षित है जिन पर हम अगले अध्यायो मे चर्चा कर रहे है।

लुक का काम भारत के लगभग सभी प्रान्तो मे होता है। उत्तर-प्रदेश मे आगरा, बनारस, फतहपुर, लखनऊ, मिर्जापुर, सहारनपुर, अमरोहा, राजस्थान मे बीकानेर, इन्द्रगढ, जयपुर, जोधपुर, मारवाड, कोटा, बूँदी, टोक, अलवर, मध्यप्रदेश मे शिवपुर और रीवाँ, पश्चिमी बगाल मे मुर्शिदाबाद, इलम बाजार आदि तथा पजाब मे फिरोजपुर और होशियारपुर लुक की कला के प्रसिद्ध केन्द्र रहे है।

दक्षिण भारत मे लुक का काम मैसूर, चेन्ना पट्टनम्, बैगलोर, मदुराई, हैदराबाद और रायचूर आदि अनेक स्थानो मे होता है।

काठ की सुरक्षा और वस्तु की सुन्दरता दोनो ही दृष्टियो से लुक के काम का महत्व है। यों कुछ स्थानो के कारीगर काठ की वस्तु पर किसी भी रग की 'जमीन' तैयार करके उसके ऊपर फूल-पत्तियो, पक्षियो या अन्य प्रकार का रग-बिरगा सुशोभन करते है। उसमे भी वे लाख मिश्रित रंगो का ही प्रयोग करते है। किन्तु इस प्रकार का काम स्थायी नही होता। लुक का कारीगर सबसे पहले वस्तु को खराद पर चढा कर साफ कर लेता है और फिर उसके ऊपर तेजी से लाख की रगीन बत्ती घिसता है। घिसाई से जो गर्मी पैदा होती है, उससे लाख पिघल उठती है और वस्तु के ऊपर उसका रगीन लेप चढ जाता है। फिर तेल लगाकर काठ को मला जाता है। इसी प्रकार शिल्पी एक-एक करके कई रगो की तह जमाता चला जाता है। शिल्पी को जो तरह

---

१. विशाल भारत, कला अक, पृष्ठ ६६.

या डिजायन बनानी होती है उसका खाका उसके पास तैयार रहता है। कारीगर खाके के डिजायन के अनुसार, रुखानी से एक के बाद दूसरे स्तर पर रेखायें खोदता चला जाता है, इस प्रकार काठ की वस्तु पर चढाये गये सारे रंग लाह की तहों मे से प्रकट हो जाते है और पात्र पर खुदाई की हुई बहुरगी आकृति स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगती है। यह कार्य बहुत कठिन समझा जाता है क्योकि इसके लिए बहुत सिद्धहस्त शिल्पी की आवश्यकता रहती है। इस कारीगर का हाथ इतना सध जाता है कि वह रग की जिस तह को कुरेदता है, उसी की रेखाये झलक उठती है।

कक्ष का कारु-शिल्प : विवरण

ई. १—हाथीदांत का भारतीय शिल्प

इस सग्रहालय मे हाथीदात की नई और पुरानी पचपन कला कृतिया हे जिनमे मुख्यत जयपुर और मैसूर की कला का समावेश हुआ है। आधुनिक कारु-शिल्प का वर्गीकरण प्रान्तो के आधार पर किया गया है।

मैसूर के हाथीदात के पुराने नमूनो मे पिछली शताब्दी की, हाथियो की पक्ति एक विशेष उल्लेखनीय वस्तु है, जिसमे हाथियो के ऊपर महावत अकुश लिए हुए बैठे है। हाथियो को लकडी के कटे हुए गट्ठे ले जाते हुए दिखलाया गया है। कारीगरो ने इस शिल्पाकृति मे विलक्षण दक्षता प्रदर्शित की है। उसने एक-एक बारीकी को बडी सफाई के साथ दिखलाया है। हाथियो के पुल जयपुर और मैसूर दोनो केन्द्रो मे बनाये जाते थे। इस कक्ष मे इस ढग की तीन शिल्पाकृतिया है।

मैसूर की बनी हुई अन्य कृतियो मे हाथीदाँत की दो अत्यन्त कलापूर्ण डिब्रिया ह। उनमे से एक मे ढक्कन और गोलाई मे हाथियो के दृश्य उभार कर तैयार किए गए है। हाथी अपनी हथिनियो और बच्चो के साथ बन मे विहार करते हुए दिखलाई देते है। ऐसी ही एक अन्य गोल डिबिया मे बन्दरो के दल बडी स्वाभाविक मुद्रा मे दिखलाये गये है। मैसूर की हाथीदात की कलात्मक वस्तुओ मे बडे और छोटे मनको की मालाओ और पतले पतरे से तैयार किये गये सुन्दर हल्के परतो के अतिरिक्त एक छडी भी है। हाथीदाँत की इस कलापूर्ण छडी की विशेषता उसकी मूँठ है, जिस पर एक रूपसी रमणी को वस्त्र से बधा दिखलाया गया है।

स्त्री का अग प्रत्यग लावण्ययुक्त है। हाथीदात की गोल डिब्बी या पतरा तैयार करने मे नीचे का हिस्सा काम मे लाया जाता है, जोकि मोटा और अपेक्षाकृत महगा होता है। उसे तराश कर गोलाई लाई जाती है। उसमे फिर आकृतियो को उभारा जाता है। इस प्रकार की श्रम-साध्य सामग्री का महगा होना स्वाभाविक है।

जयपुर का हाथीदात का सबसे सुन्दर नमूना अलकार-मजूषा है। हाथीदात की बहुत ही पतली जाली तैयार कर ली जाती है और फिर उन टुकडो को रगकर लकडी की सन्दूकची मे जड दिया जाता है। इस अठपहलू अलकार-मजूषा मे ढक्कन और सभी ओर इसी प्रकार की जाली लगाई गई है। इसके हाथी दात के खुरे शेर की आकृति के है। बैलो को लेकर खेत की ओर जाता हुआ वृद्ध किसान, त्रिभग मुद्रा में वशीवादन करते हुए कृष्ण, अलकृत पाये, नक्काशीयुक्त पूरा हाथी-दात, बाजूबन्द और डिब्बियाँ आदि वस्तुए इस कक्ष की शोभा है।

ई. २—बीदर के धातु-पात्र

काली धातु पर चादी की पच्चीकारी के बीदर पात्रो की प्राचीन परम्परा की चर्चा हम पिछले पृष्ठो मे कर चुके हैं। सग्रहालय के इस कक्ष मे हुक्के, तश्तरियाँ और प्याले आदि तेरह वस्तुएँ है जिनको दैनिक उपयोग के लिए तैयार किया गया होगा। पात्रो के ऊपर फूल-पत्तियो की वे तरहे है जो मुस्लिम वास्तु मे बहुतायत से दिखलाई देती है। एक छोटी तश्तरी मे बीदर की इतनी बारीक दस्तकारी है कि बारीकी पर आश्चर्य होता है। बीदर के यह समस्त धातु-पात्र शोभायुक्त हैं।

ई. ३—चन्दन का काष्ठ-शिल्प

मैसूर, ट्रावनकोर, मदुराई और कनारा आदि स्थानो की चन्दन की खुदाई की वस्तुओ की चर्चा हम सम्बन्धित लेख मे कर चुके है जिनमे पौराणिक कथाओ को उभार देकर अर्ध-चित्र की भाति तैयार किया जाता है। इस प्रकार की कोई उत्कृष्ट कलाकृति इस सग्रहालय मे नही है। इस कक्ष मे चन्दन की छोटा सन्दूकची, तश्तरी, कृष्ण की चन्दन मूर्ति व पखे आदि अठारह वस्तुएँ है। चन्दन की लकडी के आध इन्च से भी छोटे ऊँटो के शरीर के एक-एक अग को बडी सफाई के साथ तराशा गया है। मैसूर के चन्दन के शिल्प की एक विशेषता लकडी के ऊपर सधे हुए हाथ का कटाई का काम है जोकि इन सामान्य वस्तुओ मे भी दिखलाई देती है।

ई ४—काश्मीर की पेपियरमेशी

स्वामी केशवानन्द जी ने काश्मीर की पेपियरमेशी के ६८ पुराने और नये नमूने सग्रह किये है। काश्मीर की पेपियरमेशी के पुराने नमूने दुर्लभ है किन्तु इस सग्रह के कलमदान, फूल-दान आदि कुछ नमूने गत शताब्दी के जान पडते है। कागज की कुट्टी के इस हस्त-शिल्प मे फूल-दान, तश्तरियाँ, डिब्बियाँ, व कलमदान आदि वस्तुऍ है जिनके ऊपर गुलाब, केशर व अन्य फूलो की तरहो से अलकरण किया है। कुछ वस्तुओ पर सोने और चाँदी का भी काम है। जैसी कि सम्बन्धित लेख मे चर्चा की जा चुकी है, काश्मीर मे टीन और लकडी के ऊपर भी पालिश की जाती है जिससे वे वस्तुएँ कागज-कुट्टी की प्रतीत होने लगती है। सग्रहालय की इन वस्तुओ मे काठ की डिबियाँ व फाइल आदि है।

ई. ५—जयपुर की मीनाकारी

जयपुर मे सोना, चाँदी, ताँबा और पीतल के पात्रो को शोभायुक्त बनाने के लिये उन पर मीनाकारी का काम किया जाता है। इस सग्रहालय मे जयपुर की मीनाकारी की अनेक वस्तुये है जिन पर कच्ची और पक्की मीनाकारी, दोनो प्रकार का काम किया गया है। कच्ची व पक्की मीनाकारी का अन्तर हम सम्बन्धित लेख मे स्पष्ट कर चुके है। सग्रहालय की मीनाकारी की लग-भग सभी वस्तुये आधुनिक है। उनमे तश्तरियो, फूलदानो व डिबियो की सख्या अधिक है। शेष वस्तुओ मे मीनाकारी का सुन्दर मयूर, वर, मधू व अन्य कलात्मक शिल्प-कृतियाँ है।

ई. ६—सींग की कारीगरी

सीग की वस्तुओ का मुख्य केन्द्र कटक है। कटक की बनी हुई ४५ विविध प्रकार की वस्तुओ से सग्रहालय के इस आधुनिक कला-कक्ष मे इस शिल्प का प्रतिनिधित्व हुआ। फन उठाये बैठे हुए बडे-बडे सर्प, सीग की तलवारे, चिडियाँ और लम्बी गर्दन के सारस अपनी सुन्दर बनावट से दर्शक का ध्यान अपनी ओर खीच लेते हैं। सीग का झूला, शिकारी और पक्षी, हवाई जहाज आदि वस्तुये बालक बडे चाव से देखते हैं।

ई ७—नारियल की कलात्मक वस्तुयें

नारियल की कला के यह २७ नमूने, मैसूर, बगाल और तामिलनाड मे बने हुए है। इस सामग्री मे फूलदान, चाय का कप और तश्तरी, दवात और अन्य विविध प्रकार की वस्तुयें है। एक शिल्पाकृति मे तीन लकडी के छोटे-छोटे हाथी एक नारियल को अपनी पीठ पर लिए है। इस शो-केस मे ही पान के आकार की एक डिब्बी है, जिसमे किसी जैन तीर्थंकर की एक छोटी सी

तस्वीर है। नारियल के खाली फल साबित पडे है किन्तु वे फूल से भी हल्के है। नारियल की खोपडी जैसी व्यर्थ की वस्तु से बडी सुन्दर वस्तुये बनाई गई है।

ई. ७—मृत्तिका-शिल्प

कक्ष के मृत्तिका-शिल्प के पुराने नमूनो मे जयपुर और बीकानेर के फूलदान व सुराहियां है। जयपुर के पात्र गत शताब्दी के है और उन पर हरे और नीले रग का फूल-पत्तियो का अलकरण है। एक मृत्तिका-पात्र के ऊपर देवी तथा शिव के चित्र है। बीकानेर के पात्रो के लाल रग के ऊपर सुनहली पॉलिश चढाई गई है। एक पृथक् शो-केस मे खुर्जा व ग्वालियर के चीनी मिट्टी के पात्र है। दिल्ली की काली मिट्टी की वस्तुयें अत्यन्त सुन्दर है। काले फूलदानो के ऊपर रग-बिरगे फूल ऐसे लगते है मानो पत्थर पर रत्नो से पच्चीकारी की गई हो।

बम्बई की बनी हुई मिट्टी की वस्तुओ मे प्याले, दीपाधार, तश्तरियाँ व अन्य वस्तुये है। उनको लाल रग से रग दिया गया है और फिर काले रग से सुशोभित किया गया है।

राजस्थान के नौहर नामक स्थान के मृत्तिका-शिल्प मे तश्तरियाँ प्यालियाँ व अन्य उपयोगी वस्तुये है। इसकी मिट्टी कुछ सफेदी लिये हुये है और उस पर अलकरण नही है। चुनार के मिट्टी के सामान मे कलमदान और फूलदान अधिक है जिनके ऊपर गहरे कत्थई रग की चिकनी पॉलिश है।

ई. ८—भारतीय मूर्तिया और खिलौने

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में शुग, कुषाण और गुप्तकालीन मृण्मूर्तियो से लेकर आधुनिक समय मे लखनऊ व कृष्ण नगर मे तैयार होने वाले खिलौने तक है। अब तक यह सब सामग्री इस सग्रहालय मे ही थी किन्तु सन् १९५८ ई० मे बाल-सग्रहालय का पृथक् रूप से श्री गणेश हो जाने के कारण अधिकाश खिलौने व मिट्टी के फल आदि वहाँ स्थानान्तरित कर दिये गये।

प्राचीन मृण्मूर्तियाँ मे जिनकी कुछ सख्या ८४ है, अधिकाश राजघाट की खुदाई की है।

राजघाट की इन मृण्मूर्तियो मे शुग और कुषाण-कालीन यक्ष-मस्तक अधिक है और गुप्त-कालीन मूर्तियो मे खण्डित नारी-मस्तक अधिक है। लगभग सभी शिल्पाकृतियाँ टूटी हुई हैं। एक भग्न मृण्मूर्ति मे माता अपने शिशु को गोद मे लिये हुये है। किसी स्त्री के सिर पर मटकी है। इन समस्त मृण्मूर्तियो मे सौन्दर्य और रूप-सज्जा की भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। रमणियो के केशो मे लहरिये, छल्लेदार बाल, बालो का फूला हुआ जूडा, पट्टेदार केश, बालो का जटा-मुकुट, सीधी मॉग, पीछे की ओर किया हुआ जूडा, कन्धो पर लहराते केश-पाश आदि दिखलाई देते है। उन केशो मे मोतियो की लडियाँ, मणिया, रत्न, माल्य, बल-पार्श्व आदि आभूषण दिखलाई देते है। किसी-किसी स्त्री के सिर पर मुकुट और उष्णीष भी रक्खा है। उनके कानों मे मणि-कुण्डल, श्रीखल, कर्णिक और कर्णफूल आदि आभूषण है, जिनको प्राचीन भारत की रमणियाँ बडे चाव से पहना करती थी। गले मे नाभि तक लटकती हुई माला प्रलम्बिका, मुक्ता-हार और मालाये दिखाई पडती है। गुप्त-कालीन शिल्प की सभी विशेषताये और लाक्षणिकताये इन मृण्मूर्तियो मे झलकती है।

राजघाट की इन मृण्मूर्तियो के अतिरिक्त १४ मृण्मूर्तियाँ मध्यकालीन जान पडती है। यह किस स्थान की है, यह निश्चय नही हो सका है किन्तु वेश-भूषा और सिर के मुकुट आदि पर

मुस्लिम प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इन मूर्तियो की सख्या चौदह है किन्तु उनमे स्त्रियों के मस्तक-भाग ही अधिक है। इनका केश-विन्यास अत्यत मनोरजक है। एक स्त्री ने अपने सिर के बालो को शिव के जटा-मुकुट की भाति लपेट लिया है। बालो के ऊपर अर्ध-चन्द्र भी है। कुछ मृण्मूर्तियो मे स्त्रियाँ पत्र-मुकुट धारण किये हुए है जैसे कि दक्षिणापत्य की नटराज की कास्य-मूर्तियो मे दिखलाई देते है। एक स्त्री सिर पर लम्बी टोपी पहने है। वह बिलकुल वैसी ही है जैसी कि आजकल फर्रुखावाद के साध-सम्प्रदाय के लोग लगाये दिखलाई देते है।

मुगल या मुस्लिम स्त्रियो के सिर पर जैसा ताज दिखलाई देता है लगभग उसी प्रकार का ताज या मुकुट इन स्त्रियो के सिर पर लगा हुआ है। बेगमो जैसी पत्तेदार नुकीली टोपी भी किसी-किसी स्त्री के सिर पर लगी हुई दिखलाई देती है।

लाल रग की तीन मृण्मूर्तिया बगाल की जान पडती है जिनमे भिन्न-भिन्न मुद्रायें प्रदर्शित की गई है। यह समस्त मृण्मूर्तियाँ पृथक् कक्ष न होने के कारण इस समय पाषाण प्रतिमाओ के साथ ही एक शीशे के शो-केस मे रक्खी हुई है।

नेपाल भी अपने मृत्तिका-शिल्प के लिए प्रख्यात् रहा है। एक काठ के लम्बे चौखटे मे छ मृत्तिका-फलक है जिनमे गणेश, वरुण आदि हिन्दू देवता तथा तारा व बोधिसत्व आदि दिखलाये गये है। यह काम साँचे अथवा ठप्पे का नही जान पडता क्योकि आकृतियो मे इतनी अधिक गहराई दी गई है कि वह साँचे की ढलाई मे आ सकना सम्भव नही है। ऐसा जान पडता है कि इस मृत्तिका शिल्प को पहले पतली नहन्नी, तेज चाकू व अन्य हथियारो से तैयार करके बाद मे पकाया गया है। इसी प्रकार की नेपाल की एक अन्य मृत्तिका-मूर्ति मे भगवान् बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए दिखलाये गये है। श्वेत खडिया मिट्टी से तैयार की हुई एक सुन्दर मूर्ति बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की है। नेपाल मे चीनी मिट्टी का भी काम होता है। वहा के दो सुन्दर हाथी जिनके ऊपर फूलो की रगीन डिजायन की झूले पडी दिखलाई गई है, इस शिल्प के श्रेष्ठ नमूने है।

मृत्तिका-शिल्प के आधुनिक नमूनो मे कथा-वाचक और वीणापाणि सरस्वती की इन्दौर की बनी हुई आदम कद मूर्तियाँ है। रूप, वस्त्र, परिधान व अलकार सभी दृष्टियो से यह दोनो मूर्तियाँ भारतीय मृत्तिका-शिल्प के सुन्दर तम नमूनो मे रक्खी जा सकती है। अन्य कृत्तियो मे माता और शिशु, बुद्ध, सरस्वती व लक्ष्मी आदि की मूर्तियाँ है।

ई. १०—भारतीय काष्ठ-शिल्प

सग्रहालय मे काष्ठ-शिल्प के नमूनो मे भारतीय, नेपाली, तिब्बती, ब्रह्मदेशीय, श्रीलका के, चीन के तथा अन्य योरोपीय देशो की सुन्दर कला-कृतियाँ है, जिन्हे विभिन्न देशो के शिल्प के साथ सग्रहालय के पृथक् कक्षो मे सजाया गया है। कोण्डापल्ली व अन्य स्थानो के खिलौनो तथा लकडी के बने हुए फलो व शाको आदि को बाल-सग्रहालय मे भेज दिया गया है।

आधुनिक कला-कक्ष मे काश्मीर की लकडी की अत्यन्त सुन्दर सामग्री है जिसमे शाहजहाँ का काष्ठ-चित्र, हबशी स्त्रियाँ, खुदाई का काम की हुई तश्तरिया, चिनार के पत्ते, शिकार की आकृतियाँ सन्दूकचियाँ आदि वस्तुयें है। काश्मीर की काष्ठ-कला और उसकी विशेषताओ की चर्चा सम्बन्धित लेख मे की जा चुकी है।

पजाब की काष्ठ कला का प्रतिनिधित्व होशियारपुर के लुक के काम की वस्तुये करती है। उनमे फूलदान, कलमदान धूपदान और इसी प्रकार की सुशोभन की अन्य वस्तुये है। काली जमीन पर हरे, नीले, पीले और लाल आदि रग विभिन्न तहाँ से झाक कर डिजायन को सुन्दर बना रहे है। होशियारपुर की तश्तरियो और छोटी सन्दूकचियो पर पच्चीकारी का काम भी है।

मैसूर की काष्ठ-कला मे चन्दन के अतिरिक्त काठ की वस्तुओ मे वे चित्र हे जिनमे लकडी के ऊपर हाथीदात से पच्चीकारी की गई है। महाराज मैसूर के चित्र मे शरीर के मुख, हाथ व अन्य शरीराग हाथीदात की पच्चीकारी द्वारा दिखलाये गये हे। इसी प्रकार की एक आकृति 'सपेरा' भी है।

नेपाल की काष्ठ की कलात्मक वस्तुओ मे बौद्ध स्तूप, भगवान् बुद्ध की प्रतिमा, अलकृत प्याले, पक्षी आदि वस्तुये है।

सग्रहालय मे हस्त-शिल्प की इस सामग्री के अतिरिक्त मुरादाबाद के पीतल के बर्तन राजस्थान के धातु-पात्र, आगरे के ताज की बडी प्रतिकृति व श्वेत खडी की डिबियाँ, कलमदान आदि वस्तुये है। पत्थर की तश्तरियो मे रग-बिरगे फूलो की पच्चीकारी भी आगरा की ही कला है। कुल २१ नमूने इस कक्ष मे रक्खे गये है। वनारस की काठ की वस्तुये व ताबे के छोटे-चित्र भी इसी कक्ष की शोभा है।

चतुर्थ कक्ष

शस्त्रागार

इस अणु-युग मे मध्य-कालीन अस्त्र-शस्त्र की भले ही कोई उपयोगिता न हो किन्तु इतिहास की दृष्टि से उनका महत्व स्वीकार करना पडता है, इसीलिए भारत के अनेक सग्रहालयो मे शस्त्रागार का विशेष कक्ष दृष्टिगोचर होता है। विगत् युग की इन स्मृतियो, लम्बे-लम्बे भारी भालो, बोझिल जिरहबख्तरो, खांडो, दुधारे तेगो और तलवारो से हम अपने पूर्व-पुरुषो के बल और पौरुष का अनुमान लगाते है, इसीलिए सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय मे शस्त्रागार का एक पृथक् कक्ष है जिसमे हिन्दू, सिक्ख और मुस्लिम आयुधो का मूल्यवान संग्रह किया गया है। विविधता की दृष्टि से भी इसका अपना महत्व है।

सिक्ख हथियारो का एक अनूठा सकलन श्री स्वामी केशवानन्द को पेप्सू सरकार द्वारा मिला है। सिक्ख एक योद्धा जाति है और वीरत्व के लिए देश मे प्रख्यात् है। उनके भारी दुधारे तेगो को देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे थ वे बलशाली जो इन शस्त्रो को बिना रोके घंटो ही नही दिवसो तक चलाते रहते थे ? इस सग्रह मे विविध प्रकार की तलवारें, किरचें, खँजर, कटारें, पेशकब्ज, कृपाण, खाँडे, तेगे, गुर्ज, नेजे, बरछे और चक्री आदि अनेक शस्त्र है।

स्वामी जी को राजस्थान के शस्त्र अलवर, बीकानेर, व अन्य रियासतो के नृपतियो के सौजन्य से प्राप्त हुए है। उनमे सिरोही की सोने य चादी की मीनाकारी की तलवारें हस्त-कौशल और अलँकरण की दृष्टि से देखने योग्य है। मुस्लिम हथियारो मे फारस की ढालें, तलवारे और सिरस्त्राण भी है जिन पर शिकार के दृश्य बनाये गये है और जिन पर अरबी लिपि मे लेख भी है। कुछ शस्त्र अलभ्य वस्तुओ को व्यापारियो से भी खरीदे गये हैं।

यह समस्त हथियार शीशे की बडी-बडी अलमारियो मे इस प्रकार प्रकार प्रदर्शित किये गये है कि दर्शक की दृष्टि उनकी ओर आकर्षित हो। तलवारो के मखमली कामदार म्यान एक अलग शो-केस मे रक्खे है।

भारतीय अस्त्र-शस्त्र

आदि-मानव ने वन्य-पशुओ को मारकर अपनी उदर-पूर्ति करने के लिए ही सम्भवतः नुकीले धातु-खडो और पाषाण-खडो का प्रयोग किया होगा। मनुष्य मे ज्यो-ज्यो ईर्ष्या, द्वेष, प्राण-नाश की भावना आदि बढती गई, त्यो-त्यो आयुधो का विकास होता चला गया। पहले उसने उन शस्त्रो को चलाना सीखा, जिनसे वह निकट रहकर प्रति-पक्षी पर वार कर सकता था फिर उसने ऐसे अस्त्रो की कल्पना की जिनसे वह शत्रु का दूर से सहार कर सकता था। इस प्रकार आयुधो के दो प्रमुख भेद है—शस्त्र और अस्त्र। जो आयुध काटने का काम करते है, वे 'शस्त्र' कहलाते है।[1] तलवार, कटार, वर्छा, फरसा और दुधारी आदि इसी प्रकार के शस्त्र है। धनुष, वाण, तोप, बन्दूक, तमचे और शक्ति आदि 'अस्त्रो' की श्रेणी मे आते है। आयुध किसी युग मे पुरुषार्थ के चिन्ह थे। प्रत्येक तरुण के लिये उनका व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक था इसलिये गाव के युवक अपने ग्राम-वृद्धो से लाठी, तलवार, बर्छी, धनुष-वाण व अन्य आयुध चलाना सीख लेता था ताकि शत्रु के आक्रमण या विपत्ति के अन्य समय पर अपने गाव की रक्षा कर सके। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे लिखा है कि प्रत्येक ग्रामवासी को अपनी रक्षा करने मे स्वय समर्थ होना चाहिए।[2] कुछ गावो के निवासी इस शिक्षा मे इतने पारगत हो जाते थे कि राज्य की ओर से उन गावो को कर-मुक्त कर दिया जाता था। सेना की भर्त्ती के समय उन गावो को प्राथमिकता दी जाती थी।

राजस्थान मे सैनिक की शिक्षा की समाप्ति के समय एक विशेष सस्कार सम्पन्न किया जाता था, जिसे खड्ग-बँधाई या छुरिका-बध कहते थे। उस समय तरुण योद्धा को एक खड्ग प्रदान किया जाता था, जिसके मान की वह जीवन-भर रक्षा करता था। इसका उल्लेख वीरमित्रोदय सस्कार प्रकाश नामक ग्रन्थ मे मिलता है। राजपूताने मे छुरिका बध सस्कार पिछली सदी तक प्रचलित रहा है।[3]

भारत मे प्राक् ऐतिहासिक काल से शस्त्रो का प्रयोग मिलता है। मोंहे जोदड़ो और हड़प्पा मे आयुधो के भी कुछ नमूने उपलब्ध हुए है।

आर्यो को भारत की भूमि पर अधिकार करना था इसीलिए उन्हें अनार्यों से युद्ध करना पडा। उस युग मे न केवल वज्र, कुठार, धनुष-वाण, परशु, वर्छा आदि अस्त्र-शस्त्र बनने लगे थे वरन् योद्धा अपने शरीर की रक्षा के लिये सिर पर शिरस्त्राण, वक्ष पर लौह-कवच तथा हस्त-रक्षा चर्म आदि धारण करने लगे थे। इन्द्र और वृत्र के युद्ध मे इन्द्र ने अपने शत-धार युक्त वज्र से वृत्र का मस्तक खड-खड कर डाला।[4]

१ शुक्र नीति सार, ४, ७ १९२

२ अर्थ शास्त्र २, ३४.

३. डा० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति, पृष्ठ २२१

४. ऋग्वेद ८, ६, ६

महा-काव्य काल मे इतने प्रकार के आयुधो की सृष्टि हो चुकी थी कि इस युग में भी उनका वर्णन पढकर आश्चर्य होता है। वाल्मीकि रामायण मे आग्नेयास्त्र, पर्जन्यास्त्र और वायब्यास्त्र आदि के उल्लेख है जो अग्नि, जल और वायु आदि से सम्बन्ध रखते थे। विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर इसी प्रकार के आयुधो का प्रयोग किया था किन्तु वे उनके ब्रह्मास्त्र के आगे निष्फल हो गये थे। राम-लक्ष्मण के शिक्षा-काल मे विश्वामित्र ने उन्हे विविध प्रकार के चक्र, गदा, शक्ति, पाश और बाणो आदि का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया था, रामायण और महाभारत मे आयुधों के विभिन्न प्रकारो को पढकर पाठक आज भी चकित रह जाता है।

अर्जुन ने शिव की कठोर साधना करके उनसे पाशुपत नामक अस्त्र प्रा त किया था। इसके प्रयोग से दिशाये काप उठती थी, पर्वत हिल उठते थे और सूर्य की ज्योति धूमिल पडने लगती थी। अर्जुन ने देवराज इन्द्र से भी कुछ दैवी आयुध प्राप्त किये थे। ऐन्द्रास्त्र के प्रयोग से सर्वत्र प्रकाश छा जाता था। योद्धा निष्चेष्ट हो जाते थे क्योकि उनके नेत्र उसकी तीव्र ज्योति को सह न पाते थे। सम्मोहन नामक शस्त्र के प्रयोग से योद्धा सज्ञा-हीन हो जाते थे। अर्जुन ने इसका प्रयोग भीष्म और द्रोण जैसे महारथियो पर किया था।

महाभारत के उद्योग-पर्व और द्रोण पर्व आदि मे अनेक युद्ध-यत्रो तथा आयुधो का वर्णन मिलता है। जलोघास्त्र से मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो जाती थी। केवल आदित्यास्त्र ही उसके प्रभाव को व्यर्थ कर सकता था। पर्जन्यास्र पृथ्वी से शीतल जल की धार फूट निकलती थी। कृष्ण का आयुध सुदर्शन चक्र था जो प्रतिपक्षी का बध करके उन्ही के पास लौट जाता था।

चक्र वस्तुत विष्णु के आयुधो मे से है। वैदिक परिभाषा के अनुसार चक्र सूर्य का प्रतीक है और विष्णु सूर्य का ही एक रूप है। कृष्ण विष्णु के अवतार माने गये है और इसीलिये उनका आयुध भी चक्र ही है। वाल्मीकि रामायण मे चक्र के विष्णु चक्र, काल-चक्र, धर्म-चक्र, दण्ड चक्र और इन्द्र-चक्र आदि प्रकार वर्णित है।[1]

चक्र अथवा चकरी का प्रयोग वर्तमान काल मे सिक्खो द्वारा किया गया है। अकाली दल का यह एक प्रमुख आयुध माना गया है। चक्र अथवा चकरी गोलाकार इस्पात की बनी हुई होती है। उसका व्यास ११-१२ इच का रहता है और उसके हल अथवा किनारो की चौडाई १॥ इच या २ इच रहती है। किसी चक्कर या चकरी की किनारी सीधी व तेज और किसी की कँटीली रहती है। सिख इसे अपनी पगडी मे रख लेते है या बाहो मे लटका लेते है।

प्राचीन व मध्य-युगीन आयुधो मे धनुष-बाण को इतना महत्व दिया गया था कि समग्र युद्ध विद्या को ही 'धनुर्वेद' का नाम दिया गया है। भारतीय ऋग्वैदिक काल

१ वाल्मीकि रामायण, बाल काड, सर्ग, २१.

से ही धनुष-बाण से भली-भाति परिचित हो गये थे। बाण को अधिक ध्वसकारी बनाने के लिये उसे विषाक्त भी कर लिया जाता था। दिग्विजयी आर्य धनुप-बाण को धारण करके मदोन्मत्त शत्रु-सेना का सहार करते थे और विजय-श्री को वरण करते थे। यो सामान्य बाण विपक्षी को अधिक हानि नही पहुँचा सकते, वे उसके लौह वर्म से टकरा कर भू-लुठित हो जाते थे किन्तु इन बाणो को इतने वेग से चलाया जाता था कि उनका लक्ष्य अभेद्य नही रहता था। बाण-विद्या न केवल युद्ध मे वरन् स्वयवर आदि में भी योद्धा को विजेता बनाती थी। सीता स्वयवर मे धनुष द्वारा बल-परीक्षण किया गया था और द्रौपदी स्वयंवर मे अर्जुन ने मत्स्य भेद किया था। मध्यकाल तक मे धनुष बाण का युद्ध के समय प्रयोग होता रहा है। महाराज पृथ्वीराज का शब्द-भेदी बाण इतिहास-प्रसिद्ध है।

यूनानी यात्री ऐरियन ने अपनी इडिका मे लिखा है कि "सैनिक तलवार और ढाल के अतिरिक्त धनुप और बाण का भी उपयोग करते थे। धनुप की माप सैनिक की लम्बाई के बराबर होती थी। बाण तीन गज का होता था। उसके बाण के आधात को रोकने मे न चर्म, न वर्म और न कवच ही समर्थ थे।"

धनुष-बाण का प्रचलन अब केवल भील, मीना या आदिवासियो मे है। उनके निशाने बडे अचूक होते है। उनका धनुष बॉस का बना रहता है और तीर बेत का, जिसकी नोक पर लोहा चढा रहता है। सर छोटूराम स्मारक-सग्रहालय के इस शस्त्रा-गार मे भी इसी प्रकार का एक धनुष है।

"The long bow of the Bhil is made from the bamboo, even the string is of bamboo, except the ends which is gut"[1]

भारतीय आयुधो मे सबसे प्रधान शस्त्र तलवार मानी गई है। महाकवि भूषण ने महाराज छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा मे लिखा था—

"भुज-भुजगेश की वे सगिनी भुजगिनी सी,
खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।"

वस्तुतः तलवार को शस्त्रो का राजा कहा गया है। सैनिक तलवार लेकर अपने विपक्षी से आमने-सामने युद्ध करता है और इस युद्ध मे ही उसे अपनी शक्ति और रण-कौशल को दिखाने का अधिकाधिक अवसर मिलता है। घमासान युद्ध मे सूर्यास्त के समय सैनिको की तलवार की धार ही युद्ध की विजय और पराजय का निर्णय करती है। युद्ध-प्रिय राजपूतो की तलवार प्रिय शस्त्र रही है। वे उसे कभी अलग न करते थे। वह उनकी प्राण-रक्षक थी इसलिये वे उसका अधिक से अधिक मूल्य चुकाते थे। तलवार की इस्पात जितने अच्छे प्रकार की होती, उसका मूल्य उतना

१. मेमोरियल्स ऑफ जयपुर इक्जबीशन, पृष्ठ ५

ही अधिक होता। भारत इस्पात तैयार करने की कला से बहुत पुरातन काल से परिचित है। गोदावरी के किनारे पर निर्मल की खाने थी। उनसे बहुत बढिया किस्म का लोहा निकलता था, जिसका इस्पात बनाया जाता था। यह इस्पात यूनान और फारस को भी भेजा जाता था।

तलवार का फल उसके इस्तेमाल पर निर्भर करता है, इसलिये उसके अनेक प्रकार है। अबुल फजल ने आइनरी अकबरी मे कितनी ही प्रकार की तलवारो का जिक्र किया है और उनमे बनेह, एकबन्दी आदि नाम भी दिये है। उनको शाहनशाह अकबर स्वय चलते थे। राजस्थान मे सिरोही मे सबसे अच्छी तलवारे बना करती थी। यो प्रत्येक राजा अपने यहाँ तलवार बनाने वाले कुशल कारीगर रखता था। सिरोही के सुनार तलवारो की मूठो पर सोने के तार से पच्चीकारी करते थे। वे उन पर फूल-पत्तियाँ आदि बडी सफाई से निकालते थे। मजाल कि तलवार की मूठ के दोनो बाजुओ मे तिल भर भी अन्तर आ जाय। सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय मे भी सिरोही की बनी हुई सोने की मूठ की अनेक तलवारे है। तलवारो का सबसे अच्छा सग्रह इस देश मे अलवर सग्रहालय मे है। सालार जग सग्रहालय हैदराबाद मे औरगजेब की तलवार, तानाशाह की रत्नजडी तलवार और नूरजहाँ व जहाँगीर की कटारे सुरक्षित है। मुगलो के समय मे तलवारो पर बहुत उम्दा किस्म का मीनाकारी का काम होता था। उनकी मूठ पर जैड पत्थर और मूल्यवान रत्नो का जडाव भी होता था।

युद्ध के समय काम आने वाली तलवारो का फल मजबूत, चौड़ा और तानक तिरछापन लिये रहता था। राजपूतो की तलवारो मे ऐसी भी मिलती है, जिनमे युद्ध करने वाले की विजय की कामना को गई है। मुसलमानो की तलवारो पर कुरान की आयते या अली की प्रशसा लिखी रहती थी। यह मूलत. फारस का प्रभाव था। बलि के काम मे लाई जाने वाली तलवारे भारी होती थी क्योकि दोनो हाथो से पूरे जोर के साथ पशु पर वार किया जाता था। शिकार की तलवारे कुछ हल्की रहती थी और उनके ऊपर शिकार या पशुओ के दृश्य बने रहते थे।

युद्ध के समय योद्धा के लिए ढाल आवश्यक थी क्योकि वह उससे विपक्षी का वार रोकता था। यो राजस्थान मे तलवार के साथ ढाल लेकर चलने का प्रचलन था और लोग उसे शान्ति के दिनो मे भी लिए दिखलाई देते थे। ढाल अक्सर भैसे या गैडे की खाल बनी हुई रहती थी। राजपूती ढाल गोल होती थी और उसके ऊपर पीतल के उभरे हुए गोल गुल्ले जडे रहते थे। अजमेर मे ढालो के ऊपर चित्रकारी का काम होता था। फारस की ढाले धातु की बनी रहती थी और ढलाई के समय उन पर शिकार आदि के दृश्य बना दिये जाते थे। उनमे सोने के तार से मीनाकारी भी

की जाती थी। इसी प्रकार की ढाले मध्य-भारत मे भी बनती थी। सिक्ख भी लोहे की ढाल को ही अधिक पसन्द करते थे।

योद्धा तलवार के अतिरिक्त फरसा, तेगा, किरच, पेशकब्ज और कटारो का भी प्रयोग किया करते थे। खाडा अथवा खग सीधा रहता था। उसकी धार चौड़ी होती थी जिसमे बीच मे नाली या उभार रहता था। दुधारा खाडा मे दोनो ओर तेज धार रहती थी। बलि के खाडे को महिषाघ्न खग कहा जाता था। गुप्ती देखने मे छडी के समान, उसी के आकार की रहती थी। उसके भीतर दोनो ओर से धारयुक्त नुकीला पतला फल होता था। किरच लम्बी और बिलकुल सीधी होती थी। उसकी मूठ भी तलवार से भिन्न प्रकार की रहती थी। कटार लम्बी, तिकोनी और धारयुक्त रहती थी। मुट्ठी बाँध कर, कटार से वार किया जाता था। दो नोको की कटार, दुधारा, कटारा और तीन फलो की जमधर कहलाती थी। पेशकब्ज़, लम्बी और कटार से बडी होती थी। उसकी एक ओर की धार पतली, तेज और दूसरी ओर की मोटी तथा चौडाई लिए हुये रहती थी। पेशकब्ज की मूठ हाथीदाँत, अस्थि, जैड आदि की रहती थी। उस पर जडाव भी किया जाता था। खजर, छुरी, लम्बा अफरीदी चाकू आदि ऐसे ही शस्त्र थे जिनका वार घातक होता था। नेपाली चौडी कुकरी इस्तेमाल करते थे। वह अब भी उनका राष्ट्रीय आयुध है।

गदा या गुर्ज मूल-रूप से मल्ल-युद्ध के समय का शस्त्र थी। महाभारत में भीम, दुर्योधन और जरासिन्धु आदि ने गदा का प्रयोग किया था। गदा युद्ध मे नाभि के नीचे के भाग मे वार करना नियम के विरुद्ध समझा जाता था। मध्य-कालीन गुर्ज ऊपर से ठोस व भारी होता था और उसका मस्तक पर प्रहार विपक्षी को सज्ञा-हीन कर देता था। इसमे ऊपर की ओर एक नोक निकली रहती थी। जिन गुर्जो का ऊपरी भाग कमरख के फल की तरह कटावदार रहता था, उनको 'कमरखी गुर्ज' कहा जाता था। भाला मुख्य-रूप से अश्वारोहियो और गजारोहियों का शस्त्र था। इसकी फल की नोक बहुत तीखी होती थी और गहरा घाव करती थी। भेदक शूल और त्रिशूल भाले के ही प्रकार है। त्रिशूल में तीन फल रहते है।

ब्रिटिश काल मे बन्दूको का प्रयोग अधिक होने लगा था। तोड़ेदार बन्दूक, पथर कला, धमाका, टोपीदार और जंजोल आदि बन्दूको का इसी सदी के प्रारम्भ तक रिवाज रहा है। जजोल या जजेल इतनी बडी बन्दूक थी कि उसे लेकर साडनी (ऊँटनी) का सवार भी युद्ध कर सकता था। उसकी मार बहुत दूर तक होती थी। सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय के शस्त्रागार मे ऐसी ही एक जंजोल बन्दूक है।

युद्ध के समय आग उगलने वाली तोप ही सम्भवत' सबसे भयकर अस्त्र समझी जाती थी। तोपें बडी होती थी और छोटी भी। बडी तोपो को घोडे और खच्चर लेकर चलते थे। छोटी तोप को अकेला सैनिक भी चला लेता था।

युद्ध के समय योद्धा अपनी शरीर-रक्षा की ओर से उदासीन नही होता था वरन् सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करके लडता था। योद्धा सिर पर काचन या लौह कवच, शरीर पर लौह वर्म या जिरह बख्तर और लोहे की कडियो का पाजामा पहनता था। वह अपने हाथों मे चमडे के बने हुए अंगुलि-त्राण और पैरो मे लोहे के मौजे पहनता था। सिरस्त्राण मे पीछे की ओर इस्पात की कडियों से बनी हुई झालर रहती थी। जिरह बख्तर लोहे की कड़ियो से बना रहता था, जिसमे एक कडी दूसरी से फसाई जाती थी। वह बहुत भारी भी होता था। छाती पर लोहे की मज़बूत प्लेटे रहती थी। सूती या रेशमी जिरह बख्तरो मे भी छाती के ऊपर धातु की प्लेटे रहती थी। इसे 'चार आइना' कहते थे। सिरस्त्राण या मुकुट मे एक पतली पट्टी लगी रहती थी जिससे नाक ढक जाती थी। योद्धाओं के अश्वों और गजो को भी चमडे के कवच पहनाये जाते थे, जिनसे उनकी पीठ, गर्दन और मुख का भाग ढक जाता था। भारतीय अस्त्र-शस्त्रो को गिनना सम्भव नही है। बहुत से शस्त्र जिनका वर्णन ग्रन्थो मे मिलता है, अब लोप हो चुके है।

कक्ष के शस्त्रास्त्र : विवरण

१. तलवारे

फ १—तलवार, सर्व धातु, सादा, टेढी मूंठ, चौडा फल जिस पर अरबी भाषा मे अलकृत लेख है। नोक के निकट जिह्वा खोले हुये सर्पिणी, भारत, बगाल, समय १८वी शताब्दी, बिना म्यान की, ३३"

फ ५—तलवार, इस्पात, मूंठ पर फारसी मे लेख, सम्भवत कुरान की आयते। सादा फल, मखमली म्यान, भारत, ३३", १८वी शताब्दी।

फ ६—तलवार, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी का काम, फल पर दोनो ओर फारसी मे लेख जिसको अधिकारी विद्वानो द्वारा पढवाने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत, ३६", समय अनिश्चित।

फ ८—तलवार, इस्पात, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, भारत, पजाब, सिक्ख-शस्त्र, ३८½", १८वी शताब्दी।

फ १३—तलवार, इस्पात, पतला फल, मखमली म्यान, भारत, पजाब, सिक्ख-शस्त्र, १८वी शताब्दी, ३६"

फ २५—तलवार, इस्पात मूंठ पर मीनाकारी का सुनहला काम, फुलो की तरह, जो सुनारो के शिल्प का एक सुन्दर नमूना है, भारत, राजस्थान, १७वी शताब्दी, २७½", पीले मखमल की म्यान जिस पर कसीदा किया गया है।

फ २७—तलवार, इस्पात, सर्पाकार लहराता हुआ सा फल, मूंठ पर सोने की मीनाकारी भारत, राजस्थान, १७वी शताब्दी, ३३¾"

फ २८—तलवार, इस्पात, मूंठ पर सोने की मीनाकारी का काम, मखमल का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वी शताब्दी, ३६"

फ २९—तलवार, इस्पात, किनारे पर सुनहला काम, काली मूंठ, चमडे का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वी शताब्दी, ३९"

फ. ३०—तलवार, फल के ऊपर चाँदी का काम, पीली मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वी शताब्दी, ३३".

फ. ३१—तलवार, इस्पात, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, १८वी सदी राजस्थान, काले चमडे का म्यान, ३४"

फ ३२—तलवार, सुनहली मूंठ, राजस्थान, १८वी सदी, मखमल का पीले रग का म्यान, ३९".

फ ३३—तलवार, मूंठ पर सोने की मीनाकारी, राजस्थान, मखमल का पीले रग का म्यान जिस पर कसीदा है। ३८"

फ. ३४—तलवार, मूंठ पर सोने की .मीनाकारी, म्यान चमडे से ढका हुआ। राजस्थान, १८वी शताब्दी, २८".

फ. ३५—तलवार, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, जो कुछ उखड गई है, मखमली म्यान, राजस्थान, १८वी शताब्दा, २७½"

फ. ८८—९९ १–४ तलवारे, सर्व धातु, सादी मूँठें, १८वी शताब्दी, राजस्थान, आकार ३६½", ३६", ३६½", ३७"

फ १०३—तलवार, मूँठ पर सोने का काम, म्यान पर लाल मखमल चढी हुई। १८वी शताब्दी ३५½" हैदराबाद (दक्षिण)

फ. ८१—उदर विदारक तलवार, आगे के भाग पर दाते की यह एक विचित्र प्रकार की तलवार है, जिससे पेट फाड कर आँते निकाली जा सकती है। तलवार का यह प्रकार दुर्लभ है। राजस्थान, १८वीं या १९वी सदी, ३०½".

२. कटारें

फ ३—कटार, मूँठ पर फारसी मे लिखे हुए स्वर्णाक्षर, अब कुछ मिटे से, ईरान, प्राचीन ११"

फ ४—कटार मूँठ पर सुनहली और रुपहली मीनाकारी, फल के ऊपर शिकार का दृश्य, ईरान, समय अनिश्चित, २१½"

फ १०—कटार, सादा, म्यान सहित, भारत, १८वी शताब्दी, १९"

फ २७—कटार, मूँठ के ऊपर सुनहली मीनाकारी, १७वी सदी, राजस्थान, मखमली म्यान, १३½"

फ. ४० कटार, दुधारी, हरे रग का चमडे का म्यान, भारत, राजस्थान, १२वी सदी १७".

फ ४१ कटार, दुधारी, काले रग के चमडे का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वी सदी, १५"

फ ४२—कटार, मूँठ पर सुनहली काम, मिटी हुई दशा मे, नीली मखमल का म्यान, १८वी सदी, राजस्थान, १४".

फ ४३—कटार, मूँठ पर सुनहली मीनाकारी, पॉलिश छूटी हुई, म्यान लाल मखमल का, राजस्थान, १८वी शताब्दी, १६½"

फ ४४—कटार, मूँठ पर सोने का पानी, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वी शताब्दी, १५".

फ. ४५—कटार, फल के ऊपर सोने का पानी, फीकापन लिये हुए, पीली, मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वी शताब्दी, १४½"

फ ४६—कटार, सोने और चाँदी की मीनाकारी, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान, १२½"

फ ४७—कटार, फल के ऊपर सोने का पानी, राजस्थान, १८वी सदी काले चमडे का म्यान, राजस्थान, १७".

फ ४८—कटार, फल के ऊपर बहुत सुन्दर व कलापूर्ण मीनाकारी, मिटती हुई स्थिति में काले चमडे का म्यान, राजस्थान, २०"

फ ४९—कटार, फल के ऊपर बहुत उम्दा किस्म की मीनाकारी, बिना म्यान का, राजस्थान, १८वी शताब्दी, १५½"

फ. ५०—कटार, फल पर चौडी बेल पत्तियो और फूलो का अलकरण। राजस्थान, १८वी सदी, १८½"

फ ५१—कटार, मूठ के ऊपर सोने की मीनाकारी, कुछ नष्ट होती हुई, राजस्थान १८वी सदी, ११½"

फ ५२—कटार, मूँठ पर सोने और चाँदी का काम, राजस्थान, १८वी सदी ११" लाल मखमली म्यान

फ ८५—कटार, फल पर अत्यन्त सुन्दर सुनहला काम, चमडे का म्यान, १९वी शताब्दी राजस्थान १७¾"

फ. ८६ —कटार, पतला, चमडे का म्यान, राजस्थान, १९वी शताब्दी, १६"

फ ८७—कटार, फल सादा, बिना म्यान की, राजस्थान, १९वी सदी, १४¾"

फ ८८—कटार, सादा, राजस्थान, १९वी सदी, १७½"

फ ८९—कटार, मूँठ पर सोने का पानी कुछ छूटा हुआ राजस्थान १९वी सदी, १५½"

फ ९०—कटार, आकार मे छोटी, ऊपर सोने का पानी, लाल मखमली म्यान,

फ ९५—कटार, छोटा आकार, सरौते के आकार की राजस्थान, २०वी सदी, ८½"

फ. ९६—कटार छोटा आकार, सरौते जैसी, राजस्थान २०वी सदी, ९¼"

३. पेशकब्ज

फ ११—पेशकब्ज, म्यान सहित, सिक्ख-शस्त्र, १८वी सदी, २०"

फ. ३७—पेशकब्ज. हाथी दात की मूठ, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान १८वी सदी, २७½"

फ ३८—पेशकब्ज, हाथीदात की मूठ, लाल मखमली म्यान, राजस्थान, १८वी सदी, २७½"

फ ३९—पेशकब्ज, मूठ पर हाथीदात की पच्चीकारी का काम, राजस्थान १८वी सदी, २५½"

फ ८०—पेशकब्ज, सुनहली मूँठ, पीला मखमली म्यान, सिरोही, राजस्थान, १८वी सदी, ३९"

फ. ९१—पेशकब्ज, हाथीदात की मूँठ, राजस्थान, १९वीं सदी, १७"

४. किरच

फ. १९—किरच, मूँठ के ऊपर सुनहली मीनाकारी, सिक्ख शस्त्र, १८वी या १९वी सदी, ३८"

फ २०—किरच, मखमली म्यान, १८वी या १९वी सदी सिक्ख-शस्त्र, ४०"

फ २२—किरच, म्यान सहित, १९वी सदी, सिक्ख शस्त्र, ४२"

फ. १०२—किरच, मूँठ के ऊपर सुनहला काम, पीला मखमली म्यान, हैदराबाद (दक्षिण) १७वी सदी, ४२"

५. छुरी

फ ५४—छुरी, हाथीदात की मूँठ, बिना म्यान की, राजस्थान १८वी सदी, १३¾"

फ. ५५—छुरी, मूँठ के ऊपर सोने की मीताकारी उखडी हुई सी, बिना म्यान, राजस्थान १२½"

फ. ९२—छुरी हाथी दात की मूँठ, लाल मखमल का म्यान, १९वी शताब्दी, राजस्थान, १३"

फ १०१—खुकरी अथवा भुजाली, नेपाली शस्त्र, टेढापन लिए हुए चौडा फल. १९वी सदी, १९"

६. खांडा, तेगा, आदि

फ. ७—दुधारा तेगा, मूंठ के ऊपर चाँदी की मीनाकारी, चमडे का म्यान, सिक्ख-शस्त्र, १८वी सदी, ३४½"

फ १७—दुधारा तेगा, (दो धारो की तलवार) म्यान छीट का, सिक्ख-शस्त्र, १८वी सदी, ३४"

फ १८—खाँडा, सादा मूंठ, सादा चमडे का म्यान, सिक्ख-शस्त्र, १८वी सदी, ३४"

फ २१—दुधारा तेगा, मूंठ के ऊपर चाँदी का काम, सिक्खं शस्त्र, १९बी सदी, ४१"

७. ढाले

फ २—ढाल, लोहे की, ईरान, ऊपर ठप्पे द्वारा किया गया शिकार का दृश्य, घोडे पर चढे हुए शिकारी धनुष-बाण से हिरन खरगोश आदि वन्य पशुओ को आखेट कर रहे है। वेष-भूषा ईरानी, बीच मे तथा किनारो पर अरबी भाषा मे अलकृत लेख, जिसको पढाने की चेष्टा की जा रही है। ऊपर उठे हुए चार फुल्ले। १७वी शताब्दी, व्यास, १८"

फ ९—ढाल, धातु, सिक्ख-शस्त्र, १८वी शताब्दी, व्यास, १९"

फ १००—१ से ४ ढाले, चमडे की भैंसे व गैडे की खाल, जिनमे से एक ढाल पर एक चित्र बना हुआ और शेष पर फूलो तथा पत्तियो का अलकरण है। चित्र मे एक अश्व दिखलाया गया है जिसका मुख मुस्लिम नारी का है। यह किसी इस्लामी पुराण कथा से सम्बन्धित है। अठारहवी शताब्दी, भारत, आकार (व्यास) १३", १७", व १५"

८. बन्दूकें व तोप

फ १२—गोले—तोप के लोहे के गोले, सख्या मे १६०, विभिन्न छोटे बडे आकार के।

फ २३—जजेल (बन्दूक का एक प्रकार), १९वी शताब्दी, ६०½"

फ २४—मैचलॉक गन या तोडेदार बन्दूक, १९वी सदी राजस्थान ७०"

फ. ५८—रेखला, छोटी बन्दूक, राजस्थान १९वी सदी.

फ १०४—तोप छोटी, पीतल की, राजस्थान १९वी सदी। यह छोटी तोपे अकेले सिपाही चला सकते थे। इसके अतिरिक्त देशी पिस्तौलें व तमचे—

९. अन्य अस्त्रास्त्र

फ. १४—चक्कर, लोहे का गोल चक्र, सिख-शस्त्र, १८वी सदी, १२½" (व्यास)

फ. १६—चकरी, लोहा, सिक्ख-शस्त्र, सिख शस्त्र १८वी सदी, ६½" (व्यास)

फ. १५—जम्बूरा, लोहे का शस्त्र विशेष, सिख-शस्त्र, १८वी शताब्दी, १४"

फ ५३—फरसा, लोहा, फल के ऊपर सोने का काम पक्षियो का अलकरण, राजस्थान, ३७"

फ. ७२—भाला, धातु व काष्ठ राजस्थान, ७३",

फ ८२—तोमर—लोहा, राजस्थान, १९वी २०½"

फ. ८३—गुर्ज-सिरा कमरख के कटाव का राजस्थान, १९वी सदी, ३८½"

फ ८४—गुप्ती छडी के आकार की, पतला, नुकीला फल बाहर धातु के म्यान के ऊपर सुनहली व विविध रगो का मीनाकारी का काम राजस्थान, ३७½"

फ. बघनखा, धातु से मढे हुये, २०वी सदी, ८½"

फ. ९३-९४—धनुष-बाण, बेत का धनुष, बाण के ऊपर लोहे की नोक, भीलो का अस्त्र-शस्त्र, राजस्थान, बीसवी सदी, धनुष का आकार ३५$\frac{1}{2}$" तथा बाण का आकार २७"

फ ९८—हिरण के सीगो का शस्त्र, लोहे से मढी नोकें १४"

१०. लौह वर्म या जिरह बख्तर

फ. ५७—जिरह बख्तर, लोहे की छोटी-छोटी कडियो को आपस मे फसाकर तैयार किया गया लम्बा जिरह बख्तर कड़ियो के सिरे मुडे हुये है। कडियाँ बहुत उम्दा किस्म के इस्पात से बनाई गई है। छाती पर चौडा पतरा।

फ १०४—पाजामा, उपरोक्त प्रकार का ही कडियो से तैयार किया पाजामा जो पिंडलियो तक पहुँचता है। दोनो वस्तुये बहुत भारी है।

फ १०५-१०६—लोहे का सादा नोकदार शिरस्त्राण व लोहे का ईरानी शिरस्त्राण जिसके ऊपर गायको व वादको की आकृतिया उभारी गई है।

पाँचवाँ कक्ष

भारतीय चित्र

(प्राचीन)

वर्तमान समय मे प्राचीन चित्र एक लम्बे विशाल हॉल मे दीवार के सहारे तथा शो-केशो मे लगाये गये है। चित्रो मे मुगल-कलम, राजस्थानी चित्रो की विभिन्न शैलियाँ, दक्खिनी कलम, पहाडी चित्र-शैली, पुरी के पट्ट, सिक्ख-कलम और फिरगी कलम आदि के चित्रो का समावेश है। उनके अतिरिक्त मुगल बादशाह और बेगमो के बडे-बडे चित्र है जो प्राचीन मुगल सूक्ष्म-चित्र (मिनियेचर्स) की प्रतिलिपियाँ हे। इस प्रकार की प्रतिलिपियाँ दिल्ली मे अब भी बनती हे। यह चित्र इस शताब्दी के प्रारम्भ के बने जान पडते है। विद्यालय के छात्रो को सभी मुगल बादशाहो के चित्र देखने को मिल जावे, सम्भवत स्वामी जी द्वारा इस विचार से यह चित्र लिये गये है अन्यथा कला और पुरातत्व की दृष्टि से इन चित्रो का कोई महत्व नही हे। इसी प्रकार के एक चित्र मे शाहजहाँ का दर्बार दिखलाया गया है, जिसके चारो ओर वे भवन है जिन्हे मुगल शाहन्शाहो ने बनवाया था।

इसी कक्ष मे हाथीदाँत के पतरो पर तैयार की गई तस्वीरें, तथा बगाल के चित्र-युक्त गोल गजफे भी रक्खे गये है। प्रकोष्ठ के बीच मे शीशे के शो-केसो मे सस्कृत, अरबी और फारसी की वे पुस्तके रक्खी है जिनको सुन्दर चित्रो व लिखावट से सजाया गया है।

चित्र-कक्ष के लिये यह आवश्यक है कि उसकी खिडकियाँ ऐसी बनाई जावे कि चित्रो पर सीधा प्रकाश न पडने अन्यथा वे धूमिल होते जाते है। इस कक्ष मे ऐसी कोई व्यवस्था नही है।

भारतीय चित्रकला

चित्रों का इतिहास मानव-सस्कृति जितना ही प्राचीन है। आदि-मानव को जबसे सौन्दर्य-बोध हुआ सम्भवतः तभी से वह अपने मनोभावो, चित्रो के माध्यम से व्यक्त करने लगा। प्राक् ऐतिहासिक काल के पाषाणो पर अकित चित्र विश्व के अनेक भू-भागों मे उपलब्ध हुये है। सिन्ध प्रान्त में मोहे जोदडो से ८० मील दूर के आम्री नामक स्थान मे ऐसे बर्तन प्राप्त हुए है जिन पर काले या चाकलेट रंग से बेल-बूटे बनाये गये है। अन्य स्थानो मे भी चित्रित मृत्तिका-पात्र उपलब्ध हुये है।

चित्रकला प्राचीन भारत के नागरिको को प्रिय रही है। वे अपने भवनो को सुन्दर भित्ति-चित्रो आदि से सजाया करते थे। राज-प्रासादो मे अन्य कक्षो के अतिरिक्त चित्रशाला भी होती थी। वाल्मीकि की रामायण और भवभूति के उत्तर रामचरित्र मे अयोद्धा के राज भवन की उस चित्रशाला की चर्चा है, जिसमे राम और सीता के जीवन-प्रसगो का चित्रो के रूप मे आलेखन हुआ था।

चित्रो के अकन के अनेक प्रकार थे। भित्ति-चित्रो को दर्पण के समान स्वच्छ और चिकनी दीवार पर आका जाता था। साहश्य-चित्र, दर्पण मे प्रतिबिम्ब की भाति, आबेहूब बनते थे। उषा ने स्वप्न मे देखे अनिरुद्ध को चित्रलेखा द्वारा बनाये गये साहश्य चित्र मे पहचान लिया था। रस-चित्रो मे शृगार, शात और करुण आदि रसो का परिपाक रहता था। धूलि-चित्र लोक-कला के अग थे। बगाल मे अल्पना और उत्तर प्रदेश मे 'चौक' अब भी बनाये जाते है। अजन्ता, बाग और सितन्नवासल के कला-मण्डपो के चित्र दीवारो पर कोरे गये भित्ति-चित्र है। मुगल कलम के चित्र साहश्य-चित्र माने जा सकते है और राजस्थानी तथा पहाडी शैली के रस-चित्र।

अजन्ता और बाग की गुफाओ के चित्रकारो ने अपने अकन के विषय भगवान् बुद्ध की जीवन-गाथा और जातक-कथाओ से लिए और सितन्नवासल के चित्र मूलतः जैन विषय-वस्तु पर आधारित है फिर भी भारत के गुहा-मन्दिरों के भित्ति-चित्रो की भावाभिव्यक्ति सभी देशो के कला-मर्मज्ञो के अन्तर को समान रूप से छू सकने मे समर्थ है। अजन्ता मे मानो एक सहस्र वर्षो का सास्कृतिक इतिहास बोल उठा है।

इसके बाद की परम्परा बादामी के चालुक्यों के बनवाये मन्दिरो और एलोरा की इन्द्र सभा व कैलाश आदि मे दिखलाई देती है उसके बाद यह धारा विस्मृति के गर्भ मे डूब गई। जिस समय पाल वशीय महाराज धर्मपाल, महीपाल आदि ने बगाल और बिहार पर शासन किया उस समय चित्र-परम्परा ताल-पोथियो के सुशोभन-चित्रो के रूप मे पुनः प्रकट हुई। इनमे बुद्ध, बोधिसत्व, तारा व महायान के अन्य देवी-देवताओं के स्वरूप दिखलाई देते है। पुस्तक चित्रकला या सूक्ष्म चित्रकला की एक धारा गुजरात मे भी बही। इसे कुछ समालोचक 'जैन चित्र-कला' या 'गुजरात चित्र-शैली' कहते है।

कल्प-सूत्र,कालक कथा आदि ग्रन्थो को चित्रो से सजाया गया। धीरे-धीरे इस शैली मे रूढिगत तत्वो ने प्रवेश कर लिया और लावण्य व भाव-गाम्भीर्य ने विदा ले ली।

मुगल शाहन्शाहो के साथ ईरान की कला और सस्कृति ने भी भारत मे प्रवेश किया। इस्लाम मे चित्र-कला के लिये कोई सम्मानित स्थान न था। हदीस के अनुसार सृष्टा केवल एक है। मनुष्य या किसी अन्य प्राणी के रूप बनाने का केवल उसी को अधिकार है इसलिए कयामत के दिन चित्रकार को नरक मिलेगा। इसी विचार-धारा के अनुसार इस्लाम मे चित्रकला वह धार्मिक स्वरूप न ले-सकी जोकि उसे बौद्धो मे मिला था। इस्लामी देशो के चित्रकार पेड-पत्तियो और नक्काशी बनाने लगे। फिर भी बन्धनों मे शिथिलता आई। मुहम्मद गजनवी ने अपने राज-प्रासादो मे युद्धों के दृश्य अकित कराये। दसवी सदी मे ही पचतत्र और हितोपदेश, कलीला दमना के नाम से अनुवादित हुए और उनको चित्रित भी किया गया। अरबी पुस्तके चित्र-विहीन रही किन्तु फारसी की पुस्तको को सुन्दर चित्रो से उसी प्रकार सजाया जाने लगा जैसे पाल-युगीन ताल-पोथियो मे चित्र बनाये जाते थे। अरबी पुस्तके अपनी खुश नवीसी या सुलेखन के लिये प्रख्यात् थी।

तैमूर का वश अपनी कला-प्रियता के लिये प्रसिद्ध है। इन शहन्शाहो के दरबार मे कुशल चित्रकार रहते थे। सुलतान हुसैन मिर्जा के यहां बिहजाद नामक कला-गुरु प्रश्रय पाते थे। वे ईरानी शैली के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार माने जाते है। बाबर और हुमायू चित्रकला के प्रेमी थे किन्तु अकबर के समय मे मानो चित्रकला ने नया जीवन ले लिया। उनका दृष्टिकोण उदार था। आईनये अकबरी के अनुसार उनके दरबार मे दसवंत, बसावन, केशो, मुकुन्द, मिस्कीन, जगन, महेश आदि अनेको चित्रकार थे जिनसे उन्होने "अनवार-इ-सुहेली, रम्जानामा, चगेजनामा, रज़्मनामा (महाभारत) आदि चित्रित कराये। ईरान कलम की अलकारिता, पृष्ठ-भूमि पर प्रकृति-सौन्दर्य, अंग-अग की बारीकी और भारतीय चित्रो की भावमयता का सम्मिलन कला की इन श्रेष्ठ कृतियों मे हुआ है।

जहाँगीर के समय मे उस्ताद मसूर ने पशु-पक्षियो के बड़े प्राणवान चित्र बनाये। राय कृष्णदास जी ने जहाँगीर शैली के सम्बन्ध में लिखा है—"जहाँगीर कालीन मुगल शैली ने नया रास्ता लिया है। उसमे रूढि न रहकर असलियत आ गई है। यही कारण है कि वह ईरानी प्रभाव से भी मुक्त हो गई है। बारीकी और तैयारी मे वह अकबरी चित्रों से कही आगे बढ गई है।"

शाहजहाँ के काल मे भी चित्रकला की धारा निर्बाध गति से बहती रही।

राजस्थानी चित्र, भारतीय चित्रकला के एक प्रमुख अंग समझे जाते हैं। भारतीय लोक-मानस से खिले हुए पद्म अनुपम श्रीयुक्त है। हृदयग्राही रूप-सृष्टि, विषय-वस्तु का चयन, साहश्य की अपेक्षा भाव की प्रधानता, सीधी-सादी रेखाओं द्वारा दिव्य

लावण्य का सृजन राजपूत शैली के चित्रो की लाक्षणिकताये है। राग-रागिनी, ऋतु चित्रण, कृष्ण-लीला और व्यक्ति-चित्रो से राजस्थानी चित्र-शैली सत्रहवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी तक समृद्ध होती रही। विशाल वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओ की भाति जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूदी और कोटा आदि की चित्र-शैलियाँ राजपूत चित्रकला के अग है।

जयपुर के नृपतियो का दिल्ली के शाहन्शाहो से सदैव मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रहा सम्भवतः इसीलिये मुगल सल्तनत के प्रभाव के पश्चात् उसके आश्रित शिल्पियो व चितेरो ने जयपुर के राजदरबार मे ही आश्रय लिया। प्रारम्भ मे जयपुर मे मुगल चित्रों की प्रतिकृतिया तैयार की गई और फिर स्वतत्र चित्रो का अंकन भी किया गया। धीरे-धीरे उसका भाव और सौन्दर्य-पक्ष सबल होता गया। महाराज जयसिह, ईश्वरी सिह और प्रताप सिह आदि रस-मर्मज्ञ नृपतियो से प्रोत्साहन प्राप्तकर साहब-राम, हुकमचन्द, मुरली, गगा बक्श, मुन्ना लाल और रामचन्द्र आदि चित्रकारो ने अनेको चित्र तैयार किये। साहब राम के बहुत से चित्र जयपुर के पोथी खाने मे व एक चित्र बोस्टन सग्रहालय मे सरक्षित है। यो मुगल दरबारो के चितेरो ने भी रागमालाओ की तस्वीरे बनाई है किन्तु कोमलता, भावमयता और लुनाई मे वे राजपूत चित्रो के आगे ठहरती नही। सामान्य कद, मीन जैसे नेत्र, गोल मुखाकृति, सुर्ख (कुछ मोटाई लिये हुए) होठ, छोटी गर्दन, रगो की प्रखरता और अलकारो मे सोने की छपाई आदि लक्षणो से कला-समीक्षक जयपुर शैली की पहचान कर लेते है। जयपुर शैली मे रीति कालीन कवियो की कृतियो के अतिरिक्त गीत गोविन्द को भी चित्रो मे आका गया है।

उदयपुर का दिल्ली से जयपुर जैसा सम्बन्ध नही रहा। राणा प्रताप का यह राज्य मुगलो का विरोधी शत्रु रहा। उदयपुर के चित्रकारो मे कृपाराम, भैंरोराम, शिव बक्श. रामप्रताप और नयनचद्र के नाम अधिक प्रसिद्ध है। कृष्ण लीला के बालचरित्र-के जितने चित्र उदयपुर मे बने उतने किसी अन्य स्थान मे नही बने। भागवत् यहाँ के चितेरों का प्रिय ग्रन्थ रहा। उसके अतिरिक्त रामायण, पृथ्वीराज रासो, बिहारी सतसई, पचतत्र और गीत-गोविन्द आदि के चित्र भी बनाये गये। इस शैली मे देह कुछ भारी, मुख के नीचे का भाग गोल, कद मझोल और नेत्र कमल की आकृति के रहते है। हाथी, चकोर, कदम्ब का वृक्ष आदि इन चित्रो मे विशेषतया रहते है।

बीकानेर की अपनी निजी चित्र-शैली थी जिसका समय सत्रहवी सदी से लेकर अठारहवी सदी तक माना जाता है। महाराज अनूपसिह, रामसिंह और महाराज कर्णसिह के नाम चित्रकारो के प्रश्रयदाता के नाते भी लिए जाते है। बीकानेर का दिल्ली से सम्पर्क रहा इसलिए कुछ मुस्लिम कलाकार भी यहा आकर बस गए। रुक्नुद्दीन, रहीम, नाथू, शाह मुहम्मद और मुराद आदि बीकानेर शैली के प्रसिद्ध चित्रकार थे

जिनके चित्रो पर कही-कही मुगल चित्रकला का प्रभाव दिखलाई देता है किन्तु जिनके अकन के विषय सर्वथा भारतीय है। उन्होने राजाओ और उनके दरबारो के चित्रो के अतिरिक्त राग-रागनियो आदि के सुन्दर चित्र भी बनाए है। बीकानेर के चित्रो का सबसे बडे सग्रह श्री मोतीलाल खजाची तथा कुवर श्री संग्रामसिह के पास है, जिनमे ललित रागिनी, असावरी रागिनी, केदारा रागिनी, भैरवी रागिनी व श्री राग आदि के सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी के भावपूर्ण चित्र है। मेघो मे श्वेत झालरें और पगडियो के पेचो से यह शैली पहचानी जाती है।

जैसलमेर की चित्र-शैली पर किसी का प्रभाव नही पाया जाता। वेगवती, लावण्ययुक्त रेखाए इन चित्रो की प्राण-भावना है। पुरुष तथा स्त्रियो के शरीर लम्बे और छरछरे दिखलाए जाते है। नायकाये सुकुमार और सौन्दर्यवती आकी जाती है। जैसलमेर शैली के प्रश्रयदाता महाराज बुधसिह माने जाते है और चित्रों का अकन-काल अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी। इस शैली के चित्रो में हरे व लालरग की प्रधानता रहती है किन्तु स्वर्ण और रजत का प्रयोग भी मिलता है। आकाश मे विविध पक्षी उड़ते हुए दिखलाए जाते है। चित्रकारो ने राजाओ और उनके दरबारो के दृश्यो के अतिरिक्त रागिनी चित्र भी बनाए है।

अलवर की शैली का विकास काल अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। अलवर के सस्थापक राजा प्रताप सिह और उनके उत्तराधिकारी बख्तावर सिह के समय मे डालचन्द, बलदेव और सालिगराम आदि कारीगर हुए किन्तु महाराज विनय सिह के शासन काल मे यह कलम कमल सी खिल उठी। श्री एन. सी. मेहता ने यह लिखा है·

"अलवर रियासत मे, जो जयपुर से अठारहवी शताब्दी के अन्त मे पृथक् हुई, एक चित्र-प्रणाली का जन्म हुआ। महाराज बन्नू सिह (१८२४-१८५७) ने चित्रकारो को आश्रय दिया।" अलवर की चित्र-शैली से अलवर की शैली का निकट का नाता है फिर भी उसकी कुछ लाक्षणिकताए है। उस पर मुगल शैली का भी प्रभाव है। वहा के चित्रकारो के प्रिय विषय शिकार दृश्य, राजाओ के चित्र और राग-रागनिया है। ओकारनाथ, रामप्रसाद, छाजाराम, विष्णुप्रसाद और जगन्नाथ आदि यहां के प्रसिद्ध चित्रकार थे। शिवदान सिह के समय मे गणिकाओ के चित्र बने।

स्त्रियो की वेणी, पुरुषो की पगड़ी के पेंच जयपुर से भिन्न है। अलवर के चितेरों को भी जयपुर के चित्रकारो की भाति ही हरा रग विशेष प्रिय है। जयपुर के चित्रो मे जहा नीले बादल या शुभ्र आकाश दिखलाया जाता है वहा अलवर मे श्वेत बादल या शुभ्र आकाश चित्रित होता है। अलवर के चित्रो मे मुगल चित्रों जैसे ही बारीक रेखाए बनती थी और हाशियो पर बेल-बूटे व सोने का काम रहता था।

जोधपुर की चित्र-शैली का समय १७वीं सदी से १९वी सदी तक का मानो जाता है। महाराजा जसवत सिह, गज सिह और अभय सिह आदि नृपतियो का प्रश्रय पाकर यह शैली विकसित हुई। जोधपुर के चित्रकारो को बारहमासा और राग-रागिनी के अतिरिक्त ढोला-मारू, लैला-मजनू, मधुमालती, सदावृक्ष सावलिग आदि के प्रेमाख्यान विशेष प्रिय रहे है। उनके अतिरिक्त व्यक्ति-चित्र और राज दरबारो के दृश्य भी आके गए है। पुरुष चित्रो मे ओज और मार्दव की भावना प्रधान है। भारी देह, मोटी गर्दन, कानो के पास जुल्फे, सिर पर ऊँचो शिखराकार पाग, जिसमे मुक्ता-वलियाँ और फुदने लटकते रहते है, जोधपुर शैली की लाक्षणिकताये है। नारी-चित्र मुगल चित्रो के समान रहते है किन्तु नेत्र खजन जैसे होते है। आकाश मे काले बादल और उनमे बिजली के प्रकाश की रेखाये दिखलाई जाती है। जोधपुर शैली के प्रसिद्ध चित्रकार भाटी वश के कृष्णदास, शिवदास और देवदास समझे जाते है। जोधपुर शैली मे मतिराम, केशवदास और सूर आदि कवियो के ग्रन्थ चित्रो से सजाए गए है।

बूदी की छोटी सी रियासत राजस्थानी चित्रो के लिए सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कर चुकी है। यो इस चित्र-शैली मे राजा, दरबार और शिकार के दृश्य आदि भी बने है किन्तु इसका मुख्य विषय राग-रागिनिया और बारहमासे है। टोढी, माल श्री, कुकुम, कुमुद, गुणकली, वसत आसावरी, तात्पर्य यह कि शायद ही कोई ऐसी रागिनी हो जिसका कल्पना-चित्र बूदी के चित्रकार ने न खीचा हो। इस शैली के मुख्य चित्र-कार सुर्जन, अहमद अली व रामलाल आदि है जिन्होने अठारहवी और उन्नीसवी शता-ब्दी मे अनेक चित्रो का सृजन किया। झीने वस्त्र पहने नायकाये जिनके अधरो पर एक मन्द हास रहता है और जो एक काली क्षीण रेखा से अलग-अलग दिखलाए जाते है, इन चित्रो की शोभा है। पुरुष नीचे की ओर झुकी पगडिया और नीचा जामा पहनते है।

कोटा की चित्र-शैली बूदी के समकालीन है। इस शैली के प्रसिद्ध चित्रकार लच्छीराम, रघुनाथ, गोबिन्दराम और नूर मुहम्मद माने जाते है। इन सभी ने लाज-वर्दी, सीलू और पीले रग का अधिक प्रयोग किया है। कोटा-शैली की नायकाओ की देह तनिक मोटाई लिए, वक्ष चौडा और कटि पतली रहती है। इस शैली मे कथाओ का चित्रण, कृष्ण-लीला और राजाओ के चित्र आदि मिलते है।

मेवाड के नाथद्वारा नामक स्थान मे राजस्थानी कला की एक विशेष शैली पनपी जिसे 'नाथ द्वारा की चित्रशैली' के नाम से जाना जाता है। नाथद्वारा विगत कई शताब्दियो से वल्लभ कुल सम्प्रदाय के गुसाइयो का प्रधान पीठ रहा है इसीलिए वहा के चितेरो ने भी राधा और कृष्ण के विविध रूपों का अकन किया किया है। नाथद्वारा के चित्रों की यह परम्परा अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होती है। यो नाथद्वारा मे अब भी चित्र बनते है पर पहले की सजीवता विदा ले चुकी है।

रेखाएं अब गतिहीन हो चुकी है और भाव की दृष्टि से चित्र निकृष्ट कोटि के हो चुके है। उन्नीसवी सदी के नाथद्वारा के चित्रकारो ने अपने चित्रो के कथानक श्री मद्-भागवत् से लिए। कदम्ब के नीचे मुरली बजाते त्रिभग कृष्ण और उनकी प्रिया राधा इन कलाकारो के आराध्य थे। इस मुगल छबि के अतिरिक्त नाथद्वारा मे कृष्ण की बाल-लीला के असख्य चित्र बने। यहा के चितेरे लाल, नीले और हरे आदि रगों का प्रयोग करते है। रग तेज और चटकीले रहते है। किसी-किसी चित्र मे चादी का रग भी दिखलाई देता है। आकाश मे काले मेघ छाये दिखलाए जाते हे जिनमे बिजली की चमक एक विरोधाभास पैदा करती है।

राजस्थानी चित्रो मे किशनगढ के चित्र लावण्य और रसमयता के कारण विश्व भर के कला-रसिको का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने मे समर्थ है। श्री रामगोपाल विजयवर्गीय ने किशनगढ के इन चित्रो के सम्बन्ध मे लिखा है :

"राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न प्रान्तीय शैलियो मे किशनगढ शैली का जो स्थान है, वह कलात्मक दृष्टि से इतना रसमय और माधुर्यपूर्ण है कि दर्शक की आखें स्वर्गीय कल्पनाओ के स्वप्न देखने लगती है। रेखाओं का लावण्य और रगों का चमत्कार साहित्य के ऐसे रूपक लिपि बद्ध करता है जिनमे कविता और कला दोनो का आनन्द मिल जाता है।"

नाथद्वारा की भाति किशनगढ शैली मे भी कृष्ण चरित्र सम्बन्धी चित्रो का अकन हुआ है। राधा-कृष्ण की प्रथम-लीलाए और गीत-गोविन्द के प्रसग इस शैली के चितेरो के प्रिय विषय रहे है। किशनगढ के राजा रूपसिंह, वल्लभ कुल सम्प्रदाय के अनुयायी थे। राजा रूपसिह, राजा रामसिह और राजा सावन्तसिह चित्रकारों के प्रश्रयदाता रहे है। हिन्दी जगत राजा सावन्तसिह को नागरी दास कवि के रूप मे भली-भाति जानता है। इन नरेशो ने छोटू, अमीर चन्द, निहाल चन्द, भवरलाल और धन्ना आदि चितेरो से अनेक भक्तिरस पूर्ण चित्र बनवाए।

नागरीदास की प्रेरणा का स्रोत बनीठनी जी थी जिनका चित्र भी उपलब्ध है। पुरुषों के लम्बे शरीर, मुक्तावलियो से अलकृत पागे और नायकाओं की लम्बी देह-यष्टि, पतली कटि, खजन से नेत्र, कमान सी उठी हुई भोहे, लम्बी नासिका, आगे निकली ठोढी और गालो पर लहराती लम्बी अलके किशनगढ की शैली की लाक्षणिकताए है।

पहाड़ी चित्रो की परम्परा भी राजस्थानी चित्रो की भाँति ही गरिमामयी है। काश्मीर और पजाब मे अनेक छोटी-छोटो रियासते थी जिनमे अपनी विशेष-शैली लेकर चित्रकला पनपी। इन शैलियो मे जम्मू, बसौली, गढवाली और कागडा प्रमुख है। बसौली चित्रकला और कागडा चित्रकला पर अभी कुछ दिनो पूर्व श्री एम० एस० रन्धावा के सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। कांगड़ा के चित्रों मे जो मृदुता व

लावण्य है, उसके दर्शन बसौली के चित्रों मे नही होते फिर भी वे चित्र मन को अपनी ओर आकृष्ट करते है । वे लोक-कला के परिष्कृत रूप प्रतीत होते है, जिनमे बल और ओज के भाव का प्रदर्शन अच्छे प्रकार से हुआ है । बसौली के चित्रकारो को राग-माला का चित्राकन विशेष प्रिय है । चित्रो पर ताकरी लिपि मे लेख भी मिलता है । बडी-बडी खिले कमल-सी आखे, भरे हुए गाल और पीछे की ओर जाता हुआ ललाट इस चित्र शैली के प्रमुख लक्षण है ।

कागडा चित्र-शैली के सम्बन्ध मे श्री राय कृष्णदास जी ने ठीक ही लिखा है . ''अजता युग के पश्चात् पहाडी शैली मे ही भारतीय कला एक ऐसी ऊचान तक उठी है, जहा तक पहुँचना खिलबाड नही है ।'' कागडा-शैली के चित्रकार के आदर्श राधा-कृष्ण है, जिनका अनुपम रूप उन्होने आंका है । महाभारत, रामायण आदि महाकाव्यो और हिन्दी रीति-कालीन काव्य मे से उन्होने अपनी विषय-वस्तु चुनी है । नायिका की लम्बी छरछरी देह दृष्टि, गौर वर्ण, लम्बी गर्दन और चौडा माथा, पतले ओठ और खजन सी आखे उसे सौन्दर्यवती बना देते है । पुरुष का आदर्श सावले, सलोने कृष्ण है ।

सिक्ख कलम के नाम से महाराज रणजीतसिह के समय मे एक विशेष चित्र-शैली पनपी । पजाब मे षिक्खो का आधिपत्य बढ रहा था और छोटी-छोटी रियासतो का स्वतन्त्र अस्तित्व विलीन होता जा रहा था । कागडे के हिन्दू चित्रकारो ने लाहौर मे आश्रय लिया । रणजीतसिह ने उनसे लाहौर के किले, महल और दीवारो पर बहुत से दृश्य अकित कराये । इस युग मे सिक्ख गुरुओ के व्यक्ति-चित्र भी बने पर उनमे खूबिया न थी जो मुगलकाल की शबीहों मे मिलती है । यह चित्र प्राणहीन है और उनसे कला की ह्रासोन्मुखी दशा झलकती है ।

फिरगी अथवा कम्पनी कलम मे अग्रेजो के चित्र बने । भारतीय चित्रकारो अग्रेजो के मनोरजक दृश्य खोचे, जिनमे ऊँचे-ऊंचे पाश्चात्य डिजायन के भवन, चौड़ी सड़को पर घोड़ो की टमटमे और उन्नीसवी शताब्दी की वेश-भूषा पहने साहब-मेम दिखलाई देते है । कही अग्रेज मद्य-पान करते दिखाये गये है । इस कलम मे फिरगी अफसरो के व्यक्ति-चित्र (पोर्ट्रेट) भी बनाये गए है ।

कक्ष की चित्र-निधि : विवरण

सर छोटूराम स्मारक सग्रहालय की चित्रविधि मे मुगल-कलम, राजस्थानी चित्र-शैली, पहाडी कलम, उडीग्गा की लोक-कला, सिख-कलम और फिरगी कलम के २३० चित्र है। मुगल चित्रो की कुछ प्रतिलिपिया भी है। मूल मुगल चित्र निम्नाकित है

ज १—जहाँगीर बादशाह

मुगल चित्र, १७वी शताब्दी, उत्तरार्ध इस चित्र मे मुगल शाहन्शाह जहागीर एक पीले रग का जामा और चुस्त पाजामा पहने हुए खडे है। जामा या अगरखा के ऊपर हरा पटका बधा हुआ है जिसके छोरो पर कलाबत्तू का काम है। उनके फैंटे मे तलवार बधी है, जिसकी मूठ वे अपने हाथ मे पकडे हुए है। दूसरे हाथ मे गुलाब का फूल है। जामा या अगरखा फूलदार है और उसमे तनी लगी है। शाहन्शाह के गले मे रत्नो की माला और भुजा मे बाजूबन्द है। सिर की पगडी पर मुक्ता माल लिपटी हुई है और तुर्रा लगा है। चित्र मे मुगल कलम की बारीकी और पकड है जो कि जहाँगीर काल के चित्रो की विशेषता है।

ज. २—शाहजहा बादशाह

मुगल चित्र, १७वी सदी, इस चित्र मे सम्राट शाहजहा अपने दरबार मे बैठे हे तथा दरबारी लोग खडे है। इस चित्र मे भी मुगल कलम की समस्त लाक्षणिकता मे दृष्टिगोचर होती है।

ज ३—हसन और हुसेन

मुगल चित्र, समय अनिश्चित, चित्र मे हसन और हुसैन बैठे दिखलाए गए है। पीछे प्रकृति दृश्य है। आकृतियो के चित्रण मे चित्रकार ने जान डाल दी है। इस्लाम मे पैगम्बरो के चित्र उपलब्ध नही होते क्योकि हदीस मे व्यक्ति-चित्र बनाने का निपेध है। केवल अल्लाह ही प्राणधारियो का सृजन कर सकता है, यह किसी मनुष्य के हाथ की बात नही है।

अकबर के राज्य-काल मे बन्धनो मे कुछ शिथिलता आ गई थी और व्यक्ति-चित्र बनने लगे थे फिर भी पैगम्बरो के चित्र दुर्लभ है।

राजस्थानी चित्र

ज. ४—महाराज अनूपसिंह का दर्बार, बीकानेर चित्र-शैली, अठारहवी शताब्दी। चित्र मे कुँअर अनूपसिह अपने राज दर्बारियो के साथ बैठे हुए है। उनके आगे वादको का समूह है। पुरुप अलाप ले रहे है और स्त्रियाँ ताल दे रही है। अनूपसिह जी के आगे हुक्का रक्खा है और नाई उनके हाथ मे मधु पात्र देता हुआ दिखाई दे रहा है। चित्र मे लाल रग की प्रधानता है चित्र का हाशिया लाल और काला खत है सम्भवत इसीलिये कुछ कला समीक्षक इसे उदयपुर शैली का चित्र भी बतलाते है किन्तु चितेरा नाथू बीकानेर शैली का कलाकार है।

ज. ५—महाराजा शम्भूसिंह—जिसका नाम नीचे अकित है।

बीकानेर, १८वी शताब्दी, इस चित्र मे महाराणा शम्भूसिह अपने घोडे पर बैठे हुये जा रहे है। चित्र मे होली का दृश्य दिखलाया गया है। एक ही चित्र मे महाराणा शम्भूसिह का दो स्थानों पर समान चित्रण करके चितेरे ने चमत्कार दिखलाया है।

ज. ६—महाराजा प्रतापसिंह—जयपुर, १६वी सदी पूर्वार्ध, इस चित्र मे कुँअर प्रतापसिह अपने अश्व पर बैठकर विवाह करने के लिये जाते हुए दिखलाये गये है। यह चित्र के पीछे के लेख से प्रकट होता है। वे घेरदार जामा पहने है और सिर की पगडी मे कलगी और तुर्रा है। कद सामान्य है।

ज. ७—बिट्ठलदास जी, अठारहवी सदी, वल्लभ कुल सम्प्रदाय के गुरु बिट्ठलदास जी एक आसन पर बैठे हुए है। उनके दर्शन का वर्ण नीलम है और मुख पर तेजयुक्त मण्डल है। उनके पीछे कोई राज पुरुष मयूर-पख का चवर डुला रहा है। सामने हाथ जोडे हुये राजा खडा है। वे लम्बा घेरदार अगरखा पहने है। कद लम्बा, दाढो और मूंछे ऊपर चढी हुई है। जोधपुर।

ज. ८—चन्द्रहास की कथा, १८वी शताब्दी, इस चित्र मे चन्द्रहास और विषया की कथा तीन दृश्यो मे आँकी गई है।

ज. ९—नायिका—जयपुर शैली १६वी शताब्दी। इस चित्र मे कोई राजपूत ललना कटि पर हाथ रक्खे हुये खडी है। वह लहगा पहने हुये है और ऊपर दुपट्टा पडा है, जो कि इतना झीना है कि बालो का जूरा और बाहो की गोराई झलक रही है। रूप सौन्दर्य लावण्य और भाव सभी दृष्टियो से यह चित्र अनूठा है।

ज. १०—जयपुर की गद्दियाँ—इस एक ही चित्र मे चित्रकार ने जयपुर के राजाओ की पीढियाँ दिखलाई हैं। इसमे महाराज मानसिंह बीच मे बैठे दिखलाई देते है और ईश्वरी सिह, प्रताप सिंह, जय सिंह आदि भी बैठे है। अठारहवी सदी, जयपुर।

ज. ११—नायिका—बूँदी, १८ वी सदी, इस चित्र मे नायिका खडी है और एक दासी उसके उठे हुये चरण का स्पर्श कर रही है, मानो काटा निकाल रही है। नायिका का कद मझोवत है, और लाल अधर एक हलकी काली रेखा से विभक्त है। हाशिया लाल, सुनहली खत लिए है।

ज. १२—दर्पण—जयपुर शैली, १६ वी सदी इसमे एक नायिका दर्पण मे अपना मुख देख रही है। चित्रकार ने मुख और प्रतिबिम्ब की समान आक कर कला को कसौटी पर रक्खा है।

इन चित्रो के अतिरिक्त इस सग्रह मे राजस्थानी कलम की विविध शैलियो मे बारह मासा और राग-रागिनियो के अनेक चित्र है। रागो मे रागिनी ललित, रागिनी वसन्तिका, रागिनी आसावरी आदि के चित्र बहुत सुन्दर हैं।

राजपूत चित्रो मे व्यक्ति-चित्र अधिक हैं और उनमे से अधिकाश १६ वी शताब्दी के हैं इसलिये इनमे वह ओज और मार्दव नही दिखलाई देता जो कि अठारहवी शताब्दी के चित्रो मे मिलता है। इन चित्रो मे राजस्थान के राजाओ के अतिरिक्त मुगल शाहजादो की तस्वीरे भी है। अलाउद्दीन खिलजी और शाहजादा दीदार बक्श व अकबर शाह के चित्र इसी श्रेणी मे आते है। राजपूत राजाओ मे राव नागा जी, जोग जी, राव चूडा जी, राव बीरम जी, श्री गुमान सिंह, राव श्री सिंह, कुँअर बख्तावर सिह जी, महाराज तेजकरन जी, राव ऊदा जी आदि के चित्र जोधपुर, बीकानेर और जयपुर आदि शैलियो के है। विभिन्न शैलियो की लाक्षणिकताये और विशेषताये जिनकी चर्चा हम सम्बन्धित लेख मे कर चुके है, इन चित्रो मे परिलक्षित होती है। यहाँ स्थानाभाव के कारण कक्ष के समस्त चित्रो का पृथक् विवरण देना सम्भव नही है।

पहाड़ी चित्र

ज. ७२—रुक्मिणी परिणय—कागडा चित्र शैली १८वी शताब्दी । इस चित्र मे कृष्ण और रुक्मिणी के परिणय का प्रसग कई चित्रो मे दिखलाया गया है, कृष्ण का गज पर आगमन, विवाह वेदी के आगे बैठे हुए वर और वधू । नन्द का भवन—कृष्ण का वर्ण नील और शरीर सुकुमार । उनके सिर पर पत्तियोंदार मुकट और देह पर पीताम्बर है । रुक्मिणी गौर वर्ण, लम्बे व छर-देह की आकी गई है ।

ज ७३—गोपी लीला

कागडा, १९वी शताब्दी, इस चित्र मे कृष्ण की बाल-लीला का बडा मनोहारी चित्रण गया है । चित्र को देख कर आनन्द की एक अनुभूति जागृत हो उठती है । लावण्य और माधुर्य ऐसा मिलन कागडा शैली मे ही सम्भव हुआ है ।

तांत्रिक चित्र

ज. २३—हनुमान का यह तान्त्रिक चित्र राजस्थान का बना हुआ प्रतीत होता है । चित्र कपडे के ऊपर है जिसमे महावीर का विशाल रूप अकित है और चित्र पर मत्र लिखे हुए है ।

गंजफा चित्र

ज ७६-७७—पिछली सदी तक गजाफा के खेल का प्रचलन रहा है । इन गोल चि मे अनेक देवताओ के चित्रण किए गए है और अको को पद्म, शख या खग के रूप मे चि. किया है । उडीसा, १९ वी सदी ।

पुरी के पट

ज ७५—१-३ पुरी के यह पट्ट वस्तुत उडीसा की लोक-कला है । इनमे जगन्नाथ जी मूर्तियो के साथ उडीसा के मन्दिरो की वास्तु-शैली का भी अकन हुआ है ।

सिख-कलम

सुखमनी का पाठ, सिक्ख कलम, १९वी शताब्दी । इस चित्र मे सुखमनी का पाठ दिखला है । वस्तुत यह सिक्ख गुरु का व्यक्ति चित्र है ।

फिरंगी चित्र

सग्रहालय मे फिरगी कलम के चार चित्र है जिनमे साहब तथा मेम घूमने या बग्घियो जाते हुए दिखलाई देते है ।